हम सभ्य औरतें

मनीषा नारी विमर्श के उन युवा विचारकों मे से है जो भाषा के जरिए आख में अंगुली डाल कर अपनी बात समझाने की सामर्थ्य रखती है। यह पुस्तक अपनी तरफ से प्रश्न ही उठाकर नही रह जाती, पाठकों की सक्रिय भागीदारी की माग भी करती है।

'दुनिया में पहले आई पर दोयम हो गई' ही नही कहती मनीषा, पति के इर्द-गिर्द सिमटती स्त्री की दुनिया की कमजोरियों का खुलासा भी करती हैं। दैनिक पारिवारिक जीवन से ही नहीं, सामाजिक जीवन मे भी औरत की हैसियत को आइना दिखाती वह औरतों के दर्द पर खामोश संस्थाओ को बाकायदा झकझोरती है। एक ओर वह 'औरत की दुश्मन औरत हो नहीं सकती' कहते हुए पुरातन विचार का खोखलापन उजागर करती है तो दूसरी ओर मर्दो से अपने भीतर झाकने की गुजारिश भी करती हैं।

उनकी भाँषा में जहां उत्सवमग्न मर्दो को होश में आने के लिए चेतावनी मौजूद है, वहीं यह प्रश्न भी हाजिर है कि 'अशुद्ध' मानसिकता है या औरत? उनके चितन मे देश की परिधि के बाहर की स्त्री-दुनिया भी है और विश्व भर मे पसरे मर्दवादी सोच की मुखालफ़त भी।

यह पुस्तक औरत को उसके हक से न सिर्फ परिचित कराती है बल्कि लड़ने की हिम्मत भी देती है। वर्तमान धुधलके मे विचार की सामाजिक सार्थकता का प्रस्थान बिंदु है मनीषा की सामयिक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह पहली किताब।

मनीषा नारी वि

जो भाषा के ज

बात समझाने की

तरफ से प्रश्न ह

सक्रिय भागीदारी

'दुनिया में पहले

मनीषा, पति के

कमजोरियों का

जीवन से ही न

हैसियत को आ

खामोश संस्थाओं

वह 'औरत की

हुए पुरातन वि

तो दूसरी ओर म

भी करती हैं।

उनकी भाषा में

के लिए चेतावन

है कि 'अशुद्ध'

में देश की परि

विश्व भर में प

यह पुस्तक औ

कराती है बल्कि

धुंधलके में

विद् है मनीषा

हम सभ्य औरतें

(नारी-विमर्श)

मनीषा
जो भाप
बात सम
तरफ से
सक्रिय

'दुनिया
मनीषा,
कमजोरि
जीवन
हैसियत
खामोश
वह 'अ
हुए पुर
तो दूसर
भी कर

उनकी
के लिए
है कि
में देश
विश्व

यह पुस
कराती
धुंधलके
बिंदु है
यह पर



सामयिक प्रकाशन

3320-21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,

दरियागंज, नई दिल्ली-110002 (भारत)

फोन : (011) 3282733 ● 3270715 ● 3270716

हम सभ्य औरतें

मनीषा

ISBN : 81-7138-023-9

मूल्य	:	दो सौ पचास रुपये
प्रकाशक	:	जगदीश भारद्वाज **सामयिक प्रकाशन** 3320–21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 (भारत)
संस्करण	:	प्रथम, 2002
सर्वाधिकार	:	मनीषा, नई दिल्ली
कला-पक्ष	:	संगम कुशवाहा
शब्द-संयोजक	:	कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज़ जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-2
मुद्रक	:	अजीत प्रिंटर्स मौजपुर, दिल्ली–110053

HUM SABHYA AURATEIN by MANISHA
Price Rs 250 00

Published By : **SAMAYIK PRAKASHAN**
3320-21 Jatwara, Netaji Subhash Marg, Daryaganj,
New Delhi - 110002 (INDIA)
Tel (011) 328 2733, 327 0715, 327 0716

मेरी बात

लिखना मेरे लिए कभी मनोरंजन या टाइम पास का काम नही रहा, औरतों के प्रति जारी उपेक्षाओं, व्यवहार और रवैये से मैं खुद को कभी सतुष्ट नहीं कर पाई। दादी–नानी की उस बूढ़ी बीमार पीढी से लेकर अपने उभारो को भरसक उचकाने मे जुटी आज की पीढ़ी तक की स्थिति मुझे जब–न–तब झकझोरती है, बल्कि कई दफा सदमे की स्थिति में ला पटकती है। बिना किन्हीं आंदोलनों या वैचारिक बहस के आधुनिकीकरण की दौड़ में भागती–फिरती हम औरतों की भीड़ अभी तक अपना मुकाम नहीं तय कर पाई है। मेरी लेखनी का मतलब यह न लगाया जाए कि मैं औरतों को 'मर्द' बनाने की पक्षधर हूं। मर्द होना या मर्दो के बराबर खड़ा होना तो पहला चरण है, जिसकी हमारी कौम को खास जरूरत नहीं। मर्दो को उतनी ही तवज्जो दी जानी चाहिए, जितनी किसी विपरीत लिंगी के लिए प्राकृतिक रूप से जरूरी है। 'काया' की इस पारंपरिक–प्रचलित गाथा को तोड़ना और 'काया–कंट–कोख' के चक्र को पछाडना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। अपनी सुविधानुसार मर्दजात ने औरत को केवल लिंग के आधार पर इतना धकियाया और उपेक्षित किया है कि वह खुद को मानसिक रूप से बधिया मान बैठी। शीर्षक पर आपत्ति करने वाले विद्वानो से मैं बता देना चाहती हूं, चूंकि मैं कोई विद्वान या भाषाई खिलंदड नही, इसलिए जो मैने या मेरी इस पूरी कौम की एक भी औरत ने महसूसा उसे 'जो है, जैसा है' रखने की कोशिश की। औरतों को धर्म, वर्ग, क्षेत्र या देश मे बांटने वाले नही जानते कि हम तीन अरब औरतों की पीड़ा, दुःख, क्षोभ, उपेक्षाएं, त्रासदियां सब एक हैं, बस औसत कम या ज्यादा हो सकता है।

औरतो को 'काया' की कैद में कसने की वाहियात मर्दाना कोशिशों का नतीजा है कि पढ़ी–लिखी समझदार औरतें भी इसके मकड़जाल से खुद को छुड़ा नही पाती, बल्कि उदारीकरण और वैश्वीकरण की चकाचौंध ने उसे इस दल–दल में और धसाया ही है। यह तय है कि सिर्फ कागज और कलम क्रांति नही कर सकते, न ही आक्रामक विचारों से स्थितियां बदल जाएंगी मगर लिंगाभिमानी

पुरुषों को आईना दिखाने के लिए पश्चिमी तर्ज में 'ब्राबर्निंग' से भी उन पर कोई असर नहीं पडने वाला, यह तय है। सवेदनशील, भावुक, बुद्धिमान और तर्कक्षमता में अतिकुशल मानी जाने वाली औरतों की क्षमता वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों द्वारा देख-परख लिए जाने के बाद अब 'ठस मर्दाना विचारों' की कही कोई जगह नही रह जाती है। लेकिन सत्ता सरकने से भयभीत मर्दो की फौज आखिर कब तक जिस्मानी ताकत के बल पर टिकी रह पाएगी। गहनों की लकदक और सुहाग व बच्चों की दुहाइयां देकर औरतो को बरगलाने वालों को एहसास कराया जाना बेहद जरूरी है कि वे अपनी निकम्मी-ओछी, दकियानूसी विचारधारा से पिंड छुडाने और औरतों को बराबरी का ओहदा दे सकने की मानसिकता अख्तियार कर लें वरना सारी वंश बेलें सूखकर मुरझा जाएंगी, जब शुक्राणु रोपने के लिए एक सुराख भी न मिलेगा। यह विचार निहायत फिजूल और बचकाना है कि चूंकि हम मादाए है इसलिए हमें सदियों से तयशुदा साचों में अटे रहने के सिवा कुछ भी सोचने-समझने या बोलने का अधिकार नहीं है। जनाना अंगों को गाली के तौर पर इस्तेमाल करने वाले तमाम प्रबुद्ध मर्दो से मेरा एक सवाल यह भी है— कभी सोचकर देखिए जिस 'कोख' से आप उपजे हैं उसे जलील करने का अधिकार किसने दिया आपको!!

औरतों के पास क्योंकि लिंग नाम का हथियार नहीं, सिर्फ इसलिए वह दोयम नहीं हो सकतीं। संस्कृति-परंपराओं और मर्यादा के नाम पर औरतों के भावनात्मक शोषण की जड़ें इस कदर गहरी हैं कि वे इन्हीं संकीर्णताओं और कायदे-कानूनो के बीच अपनी 'स्वतंत्रता' के छोटे-मोटे जश्न मना लेती हैं। औरत के अभाव में परिवार नहीं बसता पर इस परिवार नाम की संस्था का मुखिया मर्द ही होता है, चाहे वह उम्र में सबसे छोटा ही क्यों न हो। परंतु इस पारंपरिक लद्दधड विचार को कंडम कर सकने वाली औरतों को परिवार तोड, घर उजाड, यौन स्वच्छंदता की हिमायती टाइप की परिभाषाएं दी जाती हैं। क्योंकि मर्दो में इतना नैतिक साहस ही नही है कि औरतों को भी ससम्मान वही अधिकार दें, जो अपनी जांघ के नीचे वे दबाए चले आ रहे हैं। औरत की कोख में पलने वाला यह भ्रूण मर्दानगी का एहसास होते ही 84 हजार योनियों में से सिर्फ इस एक योनि को ऐसे आंखें तरेरता है मानो उसके जीवन में कोई जनाना योगदान ही न रहा हो। मादाओं को हँसने, चलने, बोलने, खाने और पहनने-ओढ़ने का शऊर वह कौम सिखाती है, जिसे खुद ढंग से यह नहीं पता होता कि वह किस 'पराक्रमी' के

शुक्राणु का नतीजा है। तमाम मर्दाना जलालत बरदाश्त करने के बावजूद भी औरतें यदि उनके नाम के व्रत, त्यौहार, पूजन किया करती हैं तो यह उनका 'कमिटमेंट' है, सादा भाषा मे इसे वे ममत्व-अपनत्व और न जाने क्या-क्या कहती हैं। लानत तो उन पुरुष शरीरों को है जिनके मगज में साधारण-सी बातें नहीं घुसतीं। बच्चियों का तिरस्कार, मादा भ्रूण को गिरवाना, बिटिया जन्मते ही उसका टेटुआ दबा देना, दहेज के नाम पर उसे जिंदा भून देना या विधवा का ठप्पा लगाकर मथुरा-वृंदावन ढकेल आना, कौन-सी मर्दानगी है? पुरुष चाहे शारीरिक रूप से कमजोर हो, मंदबुद्धि हो या नपुंसक हो औरतों पर धाक जमाना उसे आता ही है। 'मर्दों वाली बात', 'पुरुषार्थी होना', 'मर्दानगी को चुनौती देना' जैसे मुहावरे ताकत, शक्ति और सत्ता का प्रभाव देते है, जबकि 'जनानियों-सी हरकतें', 'औरतों की तरह रोना', 'चूडियां पहनना', उपहास के लिए इस्तेमाल होने वाले प्रचलित मुहावरें हैं। औरत होना क्यों कमजोरी की निशानी है? क्यों औरत से 'योनि' की पवित्रता के प्रमाण मांगे जाते हैं? क्यों औरत को वेश्यावृत्ति मे ढकेल पाने का साहस मर्दजात को मिल जाता है? औरत-औरत छुछुआता घूमता मर्द किसी लाल-पीली-नीली बत्ती वाले इलाके में नहीं समाता तो देह सुख के लिए औरतों का बाजार क्यों? ऐसे हजारों सवाल हैं जिनके तार्किक जवाब देना मुश्किल ही नहीं असंभव भी है। यूं भी हम औरतों को वो बचकाने जवाब कतई नहीं चाहिए जिन्हें सुनकर उबकाई आती हो। सिंदूर-चूड़ी-बिंदी और पति-भाई-बेटा की चमकीली ओढ़े हमें लुभाकर-फुसलाकर अब तक जो खेल खेला जाता रहा उससे तंग आकर, उसकी असलियत भांपकर, उसके उथलेपन से ऊबकर, दो-चार-दस ही सही, अपने भीतर की ऊर्जा पहचानने का कमाल दिखा चुकी औरतों को गरियाने और उन्हें हाशिये पर ढकेलने की मर्दाना साजिश और नहीं चलने वाली। बजरिए योनि औरत की कोख तक पहुंचने वाले हर शख्स को याद रखना होगा कि वह उसका जननांग चीरते-फाड़ते ही इस दुनिया में आया है, फिर इसी के खिलाफ यह मोर्चाबंदी क्यों? साफ और खुले शब्दों में बिना कहे इसे कोई माई का लाल समझता नहीं, इसलिए शालीनता का ढोंग न कर सकी। जब हम मादाएं लिंग शुचिता की उम्मीद नहीं करतीं तो आप भी भूल जाइए योनि शुचिता की वाहियात बातें। यदि 'मर्दाना समझ' की ऊपरी धूल झड जाए, उनमें बराबरी में खड़े हो सकने लायक साहस आ जाए, वे औरत और जूते मे फर्क करने लायक बन सकें तो तमाम दिक्कतें खुद ही दूर हो जाएंगी। औरत एकमर्दी रहे इसके लिए मर्दों

को अपना पायजामा कसना होगा। सडी हुई मान्यताएं और वे परपराए जो लिग भेद जन्मती है, सबल उखाड फेंकी जानी चाहिए। औरत-मर्द को एक-दूसरे की बराबर जरूरत है, जिसे बिना दमन-शोषण या खौफ के, आपसी सहमति से स्वीकार कर लेना चाहिए। 'लिग' कोई हथियार नहीं, जिसे औरतो के खिलाफ इस्तेमाल किए जाने का बेहूदा पारपरिक रवैया ढोते चला जाए, जाघो से ऊपर उठकर देखने पर ही 'दिमाग' दिखेगा, जिसकी मर्दजात को बेहद जरूरत है। जनानियों को क्या शोभा देता है, क्या नही, उन्हें किस भाषा-शैली का इस्तेमाल करना चाहिए, कहां चुप्पी साधे रखनी चाहिए और कहां मर्दाना ढर्रे को, बिना हील-हुज्जत किए 'कॉपी' करते चलना चाहिए, सब कुछ बताने वाला मर्दाना विचार इतनी आसानी से पछाड़ खाने वाला नहीं।

चलताऊ भाषा पढ़कर, उबासियां लेने की आदत छोड़िए। शालीनता का ढोग कर बहुत रिरिया चुकीं हम औरतें। आपको तो सिर्फ शब्द चुभेगा, हमारी कौम को तो पूरा का पूरा उधेला गया है मगर तरस खाकर हमें दुलराइए मत, न तो महानता का चोला ओढाकर हमें हाशिए पर डालिए। हिंसा को हिंसक तरीके से नही खत्म किया जा सकता पर 'रीढदार' होने के बावजूद हम रेंगे क्यों? जबरन ही सही, अपने हिस्से की हर चीज चाहिए हमें। अपनी ताकत, हिम्मत और वजूद को भुला बैठी औरतों को सिर्फ झकझोर कर याद दिलाने की जरूरत को निभा रही हूं मैं, ताकि वैचारिक रूप से हमारी कौम को बधिया किए जाने की प्रवृत्ति रुक सके। यह स्वीकारने में किसी तरह की कश्मकश नहीं होनी चाहिए कि मर्दों की तुलना मे औरतें कहीं ज्यादा सभ्य है। देह के अलावा कुछ नहीं बचा है उसके पास, जिसे भी पुरुषों द्वारा बरगलाकर बेचा जा रहा है, नचाया जा रहा है और हर वह इस्तेमाल किया जा रहा है जहां तक पुरुष का दिमाग पहुच रहा है। फिर भी तमाम भयानक स्थितियो के बावजूद औरत जी रही है—अपने लिए जगह बना रही है। झुठलाया तो यह भी नहीं जा सकता कि कुछ संवेदनशील विद्वान-खुले दिमाग वाले मर्द प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से औरतों की प्रगति को हाथों-हाथ लेते हैं, जबकि मर्दवादी विचारधारा से ठुंसे दिमागों वाली कुछ औरतें विचार से, जबान से और आचार से टंगडी लगाने में महारथी हैं। उनमें साहस नहीं बचा कि रूढियो, दकियानूसियों और खोखली परंपराओं का खंडन करें। संकीर्ण, कुंठित और मानसिक रूप से पुरातन पड़ चुकी विचारधारा ढोने वालों से ऐसे खुलेपन की ख्वाहिश रखना यूं तो फिजूल है, पर हम अपनी बात रखते हैं तो आपकी सुनने

के लिए अपने कान भी खुले रखते हैं।

अलग-अलग समय पर लिखे गए ये लेख पुराने इसलिए नहीं पड़े क्योंकि घटनाएं बदल जाती हैं पर स्थितियां वही है। मुझमें ऊर्जा भरने वाले वे सब मेरे 'अपने' तो हैं ही, जिन्होंने मुझे सब्र के साथ पढ़ा पर वे भद्र (पुरुष) पाठक भी है जिन्होंने मुझे गरियाया, मेरे संस्कार-परिवार और औकात को लेकर जली-कटी सुनाई। हो सकता है गोविंद के सहयोग के बिना मेरी लेखनी इतनी धारदार न हो पाती, उन्होंने एक सच्चे दोस्त की तरह हर बार प्रोत्साहित करने के साथ आलोचक की दृष्टि से भी परखा। कहने को तो बहुत कुछ है, पर आगे फिर।

पाठकों की प्रतिक्रिया और गुस्से का हमेशा की तरह स्वागत करूंगी और इंतजार भी।

अनुक्रम

दुनिया में पहले आई पर दोयम हो गई
अगर यह आधा भी सच है तो...
'जेबकतरनी नहीं उठाईगीर हैं हम'
धन्य हैं पत्नी की कुटाई करने वाले
पति के इर्द-गिर्द सिमटी दुनिया
औरत का निजी कुछ नहीं होता!
पत्नी के साथ बलात्कार
पाकीजगी परेशान है पाकिस्तान में
'जख्मी औरत' से जख्मी नर्सों तक
महिला आयोग के ठोस कागजी सुझाव
महिला आयोग की दिखावटी चिंताएं
ऐसे समाजसेवियों से सावधान!
देवदासी प्रथा के वकील
विश्व महिला सम्मेलन मे असमानता
दोहरी और बचकाना दलीले
पहले जीने का हक दो
'5 हजार लगाओ, 50 हजार बचाओ'
यह विज्ञापित शोषण ही है
सत्ता मे औरतों की हैसियत
करंजिया और विकी भार्गव में क्या फर्क है?
महिला मस्तिष्क पुरुष मस्तिष्क से श्रेष्ठ है
शेखों की मर्दानगी
औरत धर्माचार्य क्यों न हो?
तवलीन सिंह के (कु)तर्क
रास्ता न्याय और अन्याय का

जरूरत कुछ शुरू करने की 85
सरकारी दहेज है यह 89
कॉलमबाजों का जायका 92
'अशुद्ध' मानसिकता या औरत? 95
आत्मविश्वास बढ़ाना या तोड़ना? 98
नंगेपन से दूर सौंदर्य प्रतियोगिता 100
नहीं चाहिए लवलेटर 102
इज्जत लौटाने का शार्टकट 104
'औरत के बारे में' धारावाहिक कुंठा 106
रेप सीन को रायल्टी 109
हम सब इसके कायर गवाह हैं 111
औरतों के दर्द पर खामोश संस्थाएं 114
औरतों को बंदूकें थमाएंगे क्या? 117
बलात्कारी को बचाते सांसद 120
सैवी और मधु सप्रे 123
क्यों 'जायज' है यह सजा? 126
कानून की आड़ में घुलती जमात 129
अवर्णों से कुछ सीखें सवर्ण 133
चर्चित होने का फूहड़ तरीका 137
गाली नहीं है खांटी घरेलू औरत 140
हिम्मती मर्द को दाद दो 143
ताकि मर्दानगी का गुमान न रह पाए 146
हिंदूवादियों का तालिबान बनने का शौक 149
प्रेम में भी मर्दवादी रवैया 152
अपने भीतर झांकें मर्द 155
कट्टरवादी पाकिस्तानी मर्दों की घटिया करतूतें 159
विश्व-मंच पर स्यापा 163
उत्सवमग्न मर्दो होश में आओ 167
बीना रमानियों से 'लड़कियां' बचाइए 170
संवेदनशील लड़कियां कहां जाएं? 174
औरत की दुश्मन औरत हो ही नहीं सकती 178

हिंदू धर्म की बेचारी देविया 181
मुसलमान क्यो हुई कमलादास? 184
नारी देह पर पुलिसिया नजर 188
बिनब्याही औरतों की बढ़ती भीड़ 191
संपति के बटवारे में भी भेदभाव जारी है 194
पाप कैसे है विधवा होना? 197
खुशनसीब मर्दों से पटा समाज 201
उनकी मौत की खबर 204
महामारी बनती घरेलू हिंसा 207
भेड़ें नहीं हैं औरतें 210
मर्द बनने का स्वांग 213
मर्दों के पक्ष में जाता फैसला 216
ऊबे हुए पतियों की मस्ती 219
सहजीवन में भी दुःखी औरते 222
क्यों कुमारी देवी अछूत हो जाती है? 228
तालों में बंद डिग्रियां 231
यात्रा के खतरो से जूझती औरतें 234
औरतो को बधिया बनाने के लिए 237

दुनिया में पहले आई पर दोयम हो गई

स्त्रियों से अधिक पाप की अन्य कोई वस्तु नहीं है, स्त्री सभी बुराइयों की जड़ है, स्त्री प्रज्वलित ज्वाला है, वह माया-रचित भ्रम है, वह उस्तरे की तेज धार है, वह अग्नि है।

—महाभारत

स्त्रियों के मुख पुष्पो की भांति हैं, उनके शब्द मधु की बूंदों की भांति है, किंतु उनके मन तेज उस्तरे की भांति हैं। उनके मन की थाह किसी को नही हो सकती।

—रामायण

पुरुष उत्तराधिकार मे स्त्री से दुगुना पाएगा...

यदि भय हो बेसहारा कन्याओ से उचित व्यवहार में रहने का, जो भली लगे ब्याह लो, इनमें से दो, तीन या चार. .

पुरुष को अधिकार है स्त्रियो पर, एक को बनाया दूसरे से श्रेष्ठ

जिनसे अवज्ञा का भय हो उन्हें अलग पलंग पर भेजो और पीटो...

—कुरान

ये हैं हमारे महान् भारत के धर्मग्रंथ, जो 'औरत' को मात्र इस्तेमाल की चीज बताते हैं। यही कारण है कि हमारे समाज में तमाम विकास और पश्चिमी अंधानुकरण के बावजूद औरत की स्थिति बदतर बनी हुई है। आधुनिक समाज में औरत को हर दिन मौत से जूझने के लिए तैयार रहना पड़ता है। कोख में लिंग-निर्धारण के बाद से जो जंग शुरू होती है, उसे समाप्त करना अभी भी आसान नही लगता। 'औरत' से ऊबे लोग, मादा भ्रूण नष्ट करने पर किस कदर तुले है, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि प्रतिवर्ष हमारे देश में तकरीबन 20 लाख मादा भ्रूण मारे जाते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 315 और 316 के अनुसार, भ्रूण हत्या करना कानूनन अपराध होने के बावजूद गांव-कस्बो तक में जगह-जगह 'गर्भपात केंद्र' के बोर्ड लटके मिल जाएंगे। जिनमें साफ लिखा होता है—अनचाहे गर्भ से छुटकारा पाने के लिए मिलें फलां डॉक्टर मे। यह

अनचाहा गर्भ नहीं, अनचाही संतान यानी लड़की से छुटकारा पाने की सांकेतिक भाषा है। जिसे अशिक्षित, पिछडे सब बखूबी समझते हैं। मादा भ्रूण मारने का एकमात्र कारण है—समाज मे औरत को बराबरी का दर्जा न मिल पाना।

आज की शिक्षित, कामकाजी औरत भी मर्द की बराबरी पर नहीं खड़ी है। इसका सीधा-सा सामाजिक कारण है, उसे उसके हिस्से के अधिकारों से वंचित रखना। औरत को अधिकार देने के नाम पर कानून तो तमाम बनाए गए हैं, परंतु उन पर अमल यदि 50 प्रतिशत भी हो पाता तो आज स्थिति इतनी विषम न होती। लाखो मादा भ्रूण प्रतिमाह गिराए जाने के बावजूद तकरीबन एक करोड बीस लाख लडकिया प्रतिवर्ष जन्मती हैं। परंतु उचित चिकित्सा-सुविधाओं, पौष्टिक आहार आदि के अभाव तथा उपेक्षा के चलते इनमे से 43 प्रतिशत बच्चियां चार वर्ष की उम्र पूरी करने से पहले ही मर जाती है। बाकी बची बच्चियों में भी सब पूरा जीवन जीने को तरसती है, क्योंकि इनमें से 25 प्रतिशत लडकियां किशोरावस्था में ही मौत के मुंह में चली जाती हैं। बाकी बची लडकियों में से कुछ दहेज के नाम पर आग में झोंक दी जाती हैं या प्रसूति के दौरान मरने को अभिशप्त रहती है। हमारे देश की 80 प्रतिशत औरतें, जो इन तमाम व्यवधानो के बावजूद 'जीवन' जीने लायक रह पाती हैं, रक्त-अल्पता अथवा कुपोषण का शिकार हो जाती है। यही सब कारण है कि 1991 में जहां प्रति 1000 पुरुषो की अपेक्षा 972 महिलाए थी, वहीं अब केवल 927 महिलाएं बची हैं। कुछ राज्यों में तो यह अनुपात और भी कम होता जा रहा है। हरियाणा और पंजाब—जहां की औरतें, कर्मठ, हिम्मती और मेहनती होती हैं—वहां प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में कुल 865 और 882 ही औरतें बची हैं। इससे भी खराब स्थिति चंडीगढ़ की है, जिसे खूबसूरत आकर्षक और नियोजित शहर का दर्जा प्राप्त है। वहां प्रति हजार पर केवल 790 औरतें हैं।

औरत को मारने के, उसे जड़ से मिटाने के विज्ञान नित नए तरीके ईजाद करता जा रहा है। चिकित्सकीय सुविधाओं की प्रशंसा में पुल बांधते समय यह तो उदाहरण दिए जाते है कि 1994 में शिशु मृत्यु दर 130 थी, जो अब केवल 39 रह गई है, शिशु-मृत्यु दर में जबरदस्त कमी क्यो और कैसे आई, यह किसी से छिपा नहीं है। यदि 'भ्रूण' को ही मार दिया जाएगा तो 'शिशु' के मरने की नौबत ही कहां आ पाएगी। एक भयानक सच यह भी है कि हमारे संभ्रात समाज में आज भी बेटियो को टेंटुआ दबाकर मार दिया जाता है। बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में बेटी का जन्म होते ही, उसे पैदा करवाने वाली दाई कुछ

अतिरिक्त पैसा लेकर, नवजात का गला दबाकर, उसे आक का दूध पिलाकर, धान की भूसी मुंह में डालकर या सुतली गले में लपेटकर, उसे मरोडकर अथवा सर्दी के दिनों में गीला कपडा लपेटकर बच्ची की जान ले लेती है। इन राज्यो के साथ-साथ तमिलनाडु के कुछ गांवों से भी ऐसी घटनाएं सुनने को मिलती है, वह भी तब जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 135 के तहत, किसी भी शिशु की हत्या करना गैरकानूनी है। मगर आज तक एक भी दाई पकडे जाने की खबर कही से नही आई, जबकि बच्चियों को इन तरीकों से मारने की बात वे स्वय स्वीकारती हैं।

सरकारी दावों को मानें तो प्रतिवर्ष शिक्षा विभाग साक्षरता-दर बढ़ने का दावा करता है। 1991 मे 53 प्रतिशत साक्षर बढ़कर 1999 में 64 प्रतिशत पहुच गए, फिर भी 62 प्रतिशत महिलाएं आज भी अंगूठा-टेक हैं। आजादी के वक्त हमारे स्कूली बच्चों की संख्या 1.92 करोड़ बताई जाती थी, जो अब 14.45 करोड़ हो चुकी है। मगर इसमें कितनी लड़कियां अपनी प्राइमरी शिक्षा भी पूरी कर पाती हैं— यह किसी से छिपा नही है। जब प्राइमरी शिक्षा ही नहीं होगी तो विकास व स्वास्थ्य की बातें आप किससे करेंगे! आरक्षण का गुब्बारा किसे दिखाएंगे, जनसंख्या सीमित रखने का उपदेश किस पर झाड़ेंगे? शिक्षा के अभाव के कारण ही अभी तक सरकारी नौकरियों तथा राजनीति व तकनीकी क्षेत्र मे केवल 12 प्रतिशत महिलाए ही पहुच सकी है, जबकि 88 प्रतिशत जगह पुरुषों ने साधिकार हथिया रखी है।

औरत की शक्ति से डरकर आदमी उसे कितना ही दबाए, कितने ही तरीके ईजाद कर ले उसे बंदिशो में रखने के, मगर अततः उसे हार माननी ही होगी। अब तो विज्ञान ने भी यह साबित कर दिया है कि कुदरत ने पहले औरत बनाई थी बाद में मर्द। आदम और ईव की कल्पना करने वालों ने अब तक यह मंत्र फूका था कि पहले आदम आया फिर ईव, इसीलिए औरत को दोयम दर्जा दिया गया। मगर जाती हुई शताब्दी में औरत के लिए आई एक खुशखबरी—जो लगभग दबा दी गई— कि शुरुआती दौर में 'प्रजनन' जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी और औरत दुनिया मे अकेली थी। औरत की दुनिया में मौजूदगी के लगभग 30 करोड वर्ष बाद आदमी को बना पाई थी कुदरत। अमेरिका की मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी के अध्ययनो ने साबित कर दिया है कि आदमी औरत के बाद जन्मा है। अब तो अपने झूठे अहम को समेटकर उसे औरत के वजूद को स्वीकार लेना चाहिए!

अगर यह आधा सच भी है तो...

कुछ समय पहले अमेरिका में भारतीय डॉक्टरो के एक सम्मेलन में तब के अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने अपने लिखित भाषण से हटकर कहा था कि अगर मुझे दुनिया में किसी चीज से ईर्ष्या है तो अंवाती बंधुओं, सिर्फ आपसे। अमेरिका का सबसे कम उम्र का राष्ट्रपति बनने के बाद भी मुझे इस तरह नोटिस नहीं लिया गया था, जिस तरह आप लोगो का लिया जा रहा है? क्लिंटन की इस बात पर शुरू हुई तालियो का सिलसिला कई मिनट तक थमा नहीं था। निश्चिय ही अंबाती परिवार ने उस क्षण में वह उपलब्धि हासिल कर ली थी, जो बडे-बडे नोबल पुरस्कार विजेताओं को नही मिली। इसी के साथ एक बडा सम्मान भारत के खाते में भी आया था, पर वही अंबाती परिवार सलाखों के पीछे चला गया। देश-विदेश का पूरा मीडिया उस दिन कंगरपेट की छोटी-सी अदालत में इकट्ठा था, जब मजिस्ट्रेट ने अंबाती परिवार की बड़ी बहू अर्चना द्वारा लगाए गए गंभीर आरोपो पर गौर करते हुए अबाती परिवार को जमानत देने से इनकार कर दिया। उनका पासपोर्ट जब्त कर लेने का आदेश भी अदालत ने दिया।

दक्षिण भारत की सारी पत्रिकाओं ने इस मुकदमे की हर सुनवाई पर पूरी नजर रखी। उन्हीं के हवाले से जो आरोप-प्रत्यारोप निकलकर सामने आए है वे स्तब्ध कर देने वाले हैं। न्यूयार्क में पिछले 10 वर्ष से रह रहे अबाती परिवार के पुरोहित का कहना है कि मैं उस परिवार को बहुत अच्छी तरह से जानता हूं, यह सारे आरोप सरासर झूठ हैं। लेकिन आरोप हैं क्या? मोहनराव अंबाती के बड़े पुत्र जयकृष्ण की शादी 23 वर्षीय अर्चना से हुई। एक कपडा व्यापारी की पुत्री अर्चना ने इलेक्ट्रॉनिक्स में डिप्लोमा किया। शादी के बाद एक कच्चे वीसा पर वह अपनी ससुराल न्यूयार्क पहुंची, जहां उसका कहना है, उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योकि अंबाती परिवार के अनुसार, उसके पिता ने उन्हे दहेज में हुए करार के मुताबिक ढाई लाख डालर, एक वातानुकूलित कार और पैतृक संपत्ति का एक-तिहाई हिस्सा नहीं दिया।

अर्चना के पिता नदा, जो होमगार्ड कमांडेंट भी है का कहना है कि उन्होने

बगरापेट में अपने मोहल्लेवालो के सामने तीन लाख रुपये का सोना, 50 हजार रुपये की चांदी और 50 हजार रुपये नकद दिए। इतना ही नहीं, अर्चना ने न्यूयार्क में प्रताडना के जो आरोप लगाए हैं उनका अगर आधा भी सही है तो अंबाती परिवार ने भारत को जितनी इज्जत दिलाई थी, उससे कहीं ज्यादा मिट्टी में मिला दी है। अर्चना बताती है कि उसे किस तरह कमरे मे बंद रखा गया और अपनी 'उलटी' खाने पर मजबूर किया गया। उसका सूटकेस सास ने लात मारकर सीढ़ियों से नीचे फेंक दिया। फोन पर उसकी बातचीत को दूसरे रिसीवर से सुना जाता रहा। इतना ही नहीं, ससुर मोहन राव ने उसके सामान में सास का एक गहना डाल दिया और (दुनिया के सबसे कम उम्र के जीनियस डॉक्टर बाला मुरली) बाला ने पोलराइड कैमरे से सबूत के तौर पर मेरे इस सामान के फोटो खींचे। पूरे परिवार ने कड़े अमेरिकी कानूनो के बारे में बताते हुए धमकाया, 'अगर चुपचाप इंडिया जाने को तैयार नहीं हुईं तो तुम्हें यही जेल में सड़ा देंगे।' और अर्चना अकेले भारत लौट आई। अंबाती परिवार अर्चना और उसके पिता के इन आरोपों को झूठ का पुलिंदा बताता है, लेकिन अर्चना के पति डा. जयकृष्ण ने एक इंटरव्यू मे कहा है कि उसे शादी की पहली रात लग गया कि अर्चना उसकी पत्नी बनने लायक नही है। 'अर्चना ने शारीरिक संबंधो के प्रति मेरे साथ कोई रुचि नहीं जताई।'— डॉ. जयकृष्ण ने कहा है।

अर्चना के पिता नंदा ने भी एक पत्र में इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है। इसको भी छोड़ दें तो एक बड़ा प्रमाण उसके पिता को लिखा गया वह लंबा पत्र है, जिसमें उन्होंने शादी में हुए लेन-देन के प्रति नाराजगी जताई है। पत्र का पहला पैराग्राफ अर्चना के घमंडी होने की शिकायतों से भरा है। जिसका सारांश यह है कि अर्चना नई बहू की तरह पेश नहीं आ रही और अपने को इस परिवार से 'सुपीरियर' समझती है। पत्र के प्वाइंट बनाकर बाकी कुछ शिकायतें इस तरह से हैं :

1 आपने हमें साढ़े बारह बजे की कड़ी दोपहरी में स्टेशन से समारोह-स्थल तक पैदल चलाया।
2 आपने हमें टूटी वैन उपलब्ध कराई, जबकि हम ए.सी. कार से चलने वाले हैं।
3 आपने हमें भाजी और वडा केले के पत्ते पर खिलाया मानो हम कोई भिखारी हों।
4 ढंग की कॉफी भी नहीं थी, जिसके लिए मैंने आपसे कहा भी, आखिरकार

हमे कॉफी के लिए कस्ब मे जाना पड़ा।

5 दूल्हे के साथियों के साथ बरताव सही नहीं था।

6. जनेऊ के समय हमें कोई वाहन नहीं उपलब्ध करवाया गया।

7 आपने मुझे और दूल्हे को सूती धोती दी, जबकि इसके लिए सिल्क के कपडे दिए जाते है, मैंने इसे नहीं होने दिया।

8 काशी-यात्रा के लिए स्लीपर नहीं दिए गए।

9. फूलो से बिछे कार्पेट पर सिर्फ लडकी को चलाया गया, लड़के को नहीं पूछा गया।

10. मेरे भाई बिना खाना खाए रहे।

11. शादी की पहली रात की रस्म में पहनी जाने वाली धोती और शर्ट लडके को नहीं दी।

12. कृष्ण (मेरा लडका) की पहली रात, तो हुई ही नहीं, तुम्हारी लडकी ने कोई सहयोग नही किया। ऐसे में लड़की की वफादारी संदेह के घेरे में आ जाती है। मै ऐसी कई शादियों को जानता हूं जो पहली रात मे इस तरह की घटनाओं के कारण टूट गई।

13. दो जून की रात मेरे और तुम्हारे बीच लडका-लडकी की जरूरतों के लिए, मॉनिटरी-ट्राजिक्शन (आर्थिक लेन-देन) पर बात हो रही थी तो तुम बेहूदगी से पेश आए थे।

14. तुम और तुम्हारी पत्नी ऐसी कॉफी लाए कि उससे अच्छा तो नाले का गदा पानी था, हममें से किसी ने नहीं पी।

15. हमारे ठहरने का इंतजाम तुमने जहां किया था, वह जगह काक्रोच और गंदगी भरी थी, तुम्हें इस पर शर्म आनी चाहिए।

16 शौचालयों का कोई इंतजाम नहीं था, मुझे नीचे जाकर यह व्यवस्था खुद देखनी पड़ी।

17. जब हम बंगलौर जाने लगे तो तुमने खर्चे के लिए पैसा देना चाहा, यह भद्दी बात थी।

18. जिस टूटी वैन में तुमने हमे बैठाया था, हम जैसे-तैसे उसमें बैठ गए तो पता चला कि तुम्हारी अक्खड और लापरवाह लडकी ज्वैलरी बॉक्स की चाभी भूल आई है, इसमें हमारा आधा घंटा खराब हुआ।

19. वैन रास्ते में टूट गई, हमें दूसरी गाड़ी करनी पड़ी, हमारी जो दुर्गति हुई हम ही जानते हैं।

20. मैने तुमसे लडकी का बर्थ सर्टिफिकेट मांगा, तुमने नहीं दिया।
21. तुमने जो बर्थ सर्टिफिकेट दिया, तुम्हारी लडकी के अनुसार, इसमें तारीख सही नही थी।
22 हमने बाला का (सबसे कम उम्र का डॉक्टर) के सम्मान समारोह अटेंड किए, तुम्हारी लडकी गब्बर जैसी आगे की कुरसी पर बैठी रही। हाल तालियां बजा रहा था पर उसने एक भी बार ताली नही बजाई। यहां आते ही तुम्हारी लडकी अजीब तरह से व्यवहार करने लगी और उसने इंडिया जाने की रट पकड ली। मै पहले ही कह चुका हूं कि वह कितनी अक्खड और गब्बर है कि तुम्हें सब बता दिया। हम भुक्तभोगी नहीं होना चाहते। तुम्ही सोचो, तुम्हें क्या करना चाहिए। हमारे पास समय नहीं है, इस चिट्ठी को और लंबा कर सकता हू।

तुम्हारा

डॉक्टर मोहनराव अंबाती

और सोचो कि तुमने हवाई अड्डे पर किस तरह फेअरवेल दिया। कोई लड्डू नहीं, कोई फल नही।

अंबाती परिवार का कहना है कि उनके घर मे चार लाख रुपये महीने तनख्वाह आती है, पैसे की उनके पास कोई कमी नहीं है। वे पारंपरिक विवाह चाहते थे, इसलिए उन्होंने अखबारो में '94 में विज्ञापन दिया। था। सवाल फिर वही बुनियादी है कि तमाम ऊंचाइयां अर्जित कर लेने के बाद भी अबाती परिवार लड़की पक्ष को अपना संबधी क्यों नही स्वीकार कर पाया? डॉक्टर मोहनराव अंबाती का शिकायती पत्र अकेले उनका पत्र नही है। यह दरअसल भारतीय समाज के हर लडकेवाले के पक्ष को आइना दिखाता है। बारात का स्वागत उनके नियम-कानूनों की तरह नहीं हो सकता। यह उत्साह और सामर्थ्य की बात है, जिसमें दोनों पक्षो की प्रतिष्ठा एक साथ लगती है। लेकिन समाज में लडकी का पक्ष हेय माना गया है और उसकी ड्यूटी है कि वह होटल के बेयरो की तरह पेश आए। निश्चय ही दोनों पक्षो ने आरोपों को बढा-चढ़ाकर पेश किया है, जो देखना अदालत का काम है।

यह बरताव केवल अमेरिका में बसे चर्चित डॉक्टर ही नहीं करते, पढ़े-लिखे, ऊंचे ओहदों पर बिराजे तमाम परिवारों की स्थिति यही है। ऐसे लोग दहेज के नाम पर उगाही करने पर उतारू हो जाते हैं। लड़कियो के जीवन से खिलवाड करने वाले इस अस्त्र को मिटाना ही होगा।

'जेबकतरनी नहीं उठाईगीर हैं हम'

किसी के माथे पर उसकी जाति नही लिखी होती। एक बहुत पुरानी कहावत है। जिसे हम दादा-नाना के मुंह से सुनते आ रहे हैं। मगर सरकारी राज में कुछ भी असंभव नहीं है। यहां जातिया भी चोर-उचक्कों की श्रेणी में रखी जाती हैं। कुछ समय पहले तक 'क्रिमिनल' का पहचान-पत्र देकर सरकार एक खास समूह को शका की नजर से देखती रही है। आज इस जाति को पहचान-पत्र दिया जाना तो बंद हो गया है, मगर सरकारी मुलाजिमों ने अपनी शक की आदत अभी तक नहीं छोडी है। एक पूरी जाति को ही यदि बार-बार शंका के घेरे में लिया जाए तो उनकी मानसिक स्थिति का अंदाजा लगाना शायद आम आदमी के बस से बाहर की बात है। कुछ समय पहले जब हरियाणा टूरिज्म की तरफ से 'सूरजकुंड' मेला लगा। आज भी तथाकथित सुसभ्य और पढ़े-लिखे लोग मेलों-ठेलों का आनंद लेने मे कहां चूकते हैं। पूर्वी दिल्ली के शाहदरा से करीब 8-10 महिलाएं भी इस मेले में मजा लेने पहुचीं। एक व्यक्ति ने कुछ देर तक उन पर निगाह रखी और पीछा किया। कुछ खाने-पीने के विचार से वे सब घेरा बनाकर जमीन में बैठ गई। अभी पहला कौर भी मुंह में नहीं गया था कि पुलिस फोर्स ने आ घेरा। महिलाओं को थाने ला पटका गया। पुलिस का मानना था कि महिलाएं 'जेबकतरनी' हैं। महिलाओं की तलाशी ली गई। उनके पास से कुछ सौ रुपये बरामद हुए, बस।

एन.आई टी थाना (फरीदाबाद) की पुलिस का कहना है कि यदि इन महिलाओं को पकड़ा न गया होता तो मेला घूमने आने वालों का बहुत नुकसान होता, साथ ही हरियाणा सरकार की बदनामी भी होती। जबकि अपराधी ठहराई गई महिलाएं कहती है कि वे जेब काटने के लिए मेले में नहीं गई थी। वे खुद को आम दर्शक बताती हैं। मजे की बात यह है कि थाना अधिकारियों ने कहा है कि सभी महिलाओं के पास से धारदार ब्लेड पाए गए। महिलाएं कहती हैं कि वे ब्लेड का प्रयोग कभी करती ही नहीं। महिलाओं ने इसे सिर्फ झूठा आरोप माना। उनका कहना है कि उन्हें जबरदस्ती फंसाया गया। वे जेब काटने का धंधा न कभी पहले करती थीं और न अब करती हैं।

मगर पुलिसवालों ने उनकी एक न सुनी और उन्हें थाने में पूरे दिन बिठाए रखा। शाम को यह कहकर सबको छोड दिया गया कि आगामी 21 मार्च को अदालत में जज के सामने मुकद्दमे की सुनवाई की जाएगी।

दर्ज रिपोर्ट के मुताबिक, पुलिस ने कुल 12 महिलाओ को पकडा। ये महिलाए 30 से 40 के बीच की उम्र की दिखती हैं और दिखने में निम्न मध्यम वर्गीय परिवार से लगती हैं। सुनीता, गंगा, कृष्णा, सुरजीत कौर, संतोष, प्रीतो, हरदयाल कौर, जागीरो, प्रेमवती, अमरजीत कौर, शारदा और सुरजीत कौर क्रमशः इनके नाम हैं। इनमे से अधिकांश महिलाएं तो कस्तूरबानगर में आस-पडोस में रहने वाली हैं। बाकी पुरानी सीमापुरी, नंदनगरी और विश्वासनगर की है। दो महिलाएं गंगा और सुनीता मराठी झुग्गी, पटेलनगर, की थीं। इन दोनों महिलाओ का शेष दसों महिलाओं का संबंध नहीं है—ऐसा उन्होंने माना। पुलिस का कहना था कि उसने सबको एक साथ पकड़ा। जबकि पूर्वी दिल्ली से पकडी गई महिलाओ का मानना था कि पटेलनगर वाली महिलाओं को वे नहीं जानतीं और वे दोनों तो पहले से थाने में मौजूद थी। सुनीता और गंगा पिछले साल भी इसी इलजाम मे पकड़ी जा चुकी है।

पूर्वी दिल्ली की पकड़ी गई महिलाओं ने बताया कि उन दोनों के पास धारदार ब्लेड मौजूद थे। तलाशी के दौरान कोई डेढ हजार रुपये और कई छोटे-छोटे लेडीज पर्स भी उनके पास से बरामद किए गए हैं। वे दोनों महिलाएं दिखने में साउथ इंडियन थीं और किसी अपरिचित भाषा मे आपस में बतिया रही थीं। पूर्वी दिल्ली की महिलाओं के अनुसार, वही दोनों असली जेबकतरनी थीं, जबकि उन सबको पुलिस ने मात्र शक की बिना पर पकड़ लिया। गंगा और सुनीता के साथ दो पुरुष भी थे, ऐसा बताया जाता है। जो बाद में उनकी जमानत करवाने अपना वकील लेकर आए। इससे लगता है कि उनका कोई पूरा संगठन जेब काटने के जुर्म में लिप्त है, जिसने पहले से पूरी तैयारी कर रखी है।

पुलिस का कहना है कि प्रायः महिलाओ की गोद में छोटे बच्चे थे, जबकि महिलाओं ने बताया कि उनमें से किसी के भी पास बच्चा नही था! हां, सुनीता और गंगा के पास एक बच्चा जरूर था। एन आई टी. थानाध्यक्ष राजसिंह ने बताया—'ये महिलाएं सीधा निशाना नहीं बनातीं। अपने शिकार पर सबसे पहले ये बच्चे की मार्फत टक्कर मारती हैं, जब तक सामने वाला संभले-संभले, तब तक ये अपना काम बना लेती हैं।' जैसा कि महिलाओं ने माना कि उनकी गोद मे बच्चे ही नहीं थे, उस हिसाब से तो ऐसा करना जरा मुश्किल काम है।

पुलिस के अनुसार, महिलाओ के पास से 4,600 रुपये जब्त किए गए। जबकि महिलाओं का मानना था कि उनमें से कुछ के पास 100-150 कुछ के पास 200 रुपये ही थे, जो वे सामान खरीदने के लिए ले गई थीं। महिला पुलिस ने उन्हें थाने ले जाकर पूछताछ की और दो-चार चांटे भी जमा दिए। इंडियन पेनल कोड की धारा 109 के अंतर्गत इन्हे रखा गया।

जेबकतरनी कही जाने वाली कुछ महिलाओं ने तो कोई भी सफाई देने या बात करने से मना कर दिया। कुछ महिलाए मिली, उन्होंने जो कुछ बताया वह हमारे पूरे समाज के लिए चिंतनीय विषय है। एक महिला ने माना कि वह उठाईगीर है। मेले-ठेलों या साप्ताहिक बाजारों में जाकर वह छिट-पुट सामान उठा लेती है। वही नही, बल्कि कस्तूरबानगर की उस बदनाम बस्ती की अधिकांश महिलाए इन्ही कामो मे लगी हैं। वे छोटी-छोटी चोरियां जरूर करती है, परंतु जेब काटने के नाम पर कान पकड़ लेती है। एक प्रौढ महिला ने कहा कि वह अपनी जरूरत की चीजे जैसे नेलपालिश, बिंदी, कुमकुम या चप्पलें उठाने का काम करती है। चूंकि उसका घरवाला साधारण-सा ड्राइवर है, उसकी कमाई से पूरा नहीं पड़ता, इसलिए लालचवश पिछले एक साल से वह यह काम करने लगी है। दिखने मे किसी भले घर की यह गोरी-चिट्टी महिला पहली नजर में किसी मध्यमवर्गीय परिवार की खाती-पीती, गोल-मटोल औरत है। अपनी इस दशा पर उसे खुद दुःख होता है। कहती है, मजबूरी है। मैं बरतन तो मांज नहीं सकती क्योंकि लड़कियों की शादियां करनी है। 'क्या चोरनी मा की बेटी की शादी आसानी से हो सकेगी?' यह पूछने पर वह चुप हो जाती है। सिर झुका लेती है।

एक अन्य महिला लोगों के घरों में बरतन माजती है। उसने पिछले 2-4 महीनों से उठाईगीरी शुरू की है। एक बार पुलिस के पल्ले पडने से वह इतनी घबरा गई है कि उसने तौबा कर ली। 'अब मैं कभी न करूंगी, यह काम।' क्योंकि उसे डर है कि कहीं कोठियों वाली मालकिनों को पता चल गया तो वे काम से निकाल देंगी। उसका पति अच्छी सरकारी नौकरी करता है। महीने मे 12-14 सौ रुपये घर में देता है। ऐसे में जब उसने इस रास्ते पर चलना शुरू किया जो शायद मात्र 'संगत' का फल कहलाएगा। शायद बिना मेहनत के कुछ पा लेने की उसकी इच्छा जाग उठी होगी या शायद वह बाकियों के बहकावे मे आ गई हो।

इनमें से कुछ महिलाए तो अपने घर में मौजूद ही नहीं थीं। परंतु उनके मर्द दारू या स्मैक चढ़ाए किसी कोने-अंतरे में जरूर लुढके दिखे। स्थानीय लोगो ने

माना कि बस्ती के अमूमन पुरुष दारू, चरस, गांजा या स्मैक के आदी है। वे या तो कोई काम करते ही नही या फिर रिक्शा या ऑटो चलाकर कुछ पैसा कमाते भी हैं तो नशे में फूक आते हैं। इनमें से ज्यादातर महिलाओं के 4 या 6 बच्चे हैं। वे अच्छे स्कूलो मे पढते भी हैं। मलिन-सी दिखने वाली इस बस्ती की हालत दयनीय लगती है—इधर-उधर कचरा फैला हुआ, बीच-बीच में गदे नाले, गलियो के इर्द-गिर्द घूमते बच्चे। पुलिस की नजर का शिकार यह बस्ती पूरे इलाके मे बदनाम है।

पुलिस के अनुसार, इन महिलाओं का झुंड बंबई, इदौर से लेकर हरिद्वार के कुंभ तक में हाथ साफ करने जाता है। खासतौर पर ये ट्रेनों, भीडवाली बसों व स्टेशनों पर अपने शिकार तलाशती हैं। जबकि महिलाओं से हमने यह पूछा तो उन्होने बेहद मासूमियत से स्वीकारा कि उनके पास कभी इतने पैसे ही नहीं रहे कि वे दिल्ली से बाहर भी निकलें। अपने इलाके यानी शाहदरा में ही वे छोटी-मोटी चोरियां या हाथ की सफाई करके अपना काम चला लेती हैं। एक महिला ने दु:खी होकर कहा, 'यदि हमें जेब काटनी या बड़ी चोरी करनी आती तो क्या हम इस गंदी बस्ती में रह रही होती।'

इन महिलाओं ने बातचीत में बताया—'अभी कुछ साल पहले तक उसके घर में व्यापार होता था। अपने चार ट्रक थे। गाड़ी थी। सब कुछ बरबाद हो गया। इसलिए मुझे यह बेशर्मी का धंधा अपनाना पडा।'

पति से पिटती और अपने ही बच्चों के ताने सुनती ये महिलाए निश्चित रूप से पछतावा कर रही हैं। इन पर मुकदमा भी ठुक गया है। ये इस धंधे से उबरना चाहती हैं। अपना सामाजिक स्तर सुधारना चाहती हैं।

परंतु न तो ये स्वय काम तलाश रही हैं और न किन्हीं समाजसेवी संस्थाओ या महिला सगठनो की इनके लिए कुछ काम करने की इच्छा ही है। अपने नसीब को रोती, मुफ्त में बैठे-बैठे सब कुछ पा लेने की लालसा लिए ये छोटी-मोटी चोरी-चकारी यूं आसानी मे तो छोडने से रहीं। इनके मुंह में खून लग चुका है। जिस वातावरण मे ये रह रही हैं, वहां सब कुछ खुल्लमखुल्ला है। सामाजिक भय, मर्यादा, प्रतिष्ठा जैसे शब्द इन्होने किसी कोने-अंतरे में उठाकर रख दिए हैं। जब तक इनके अंदर चेतना या अपराध-बोध की भावना नहीं जाग उठती, तब तक बहुत मुश्किल है इनका इस अंधे कुएं से निकल पाने का रास्ता ढूंढ़ना।

धन्य हैं पत्नी की कुटाई करने वाले

उत्तर प्रदेश रणजी क्रिकेट टीम के कप्तान और अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट खेल चुके ज्ञानेंद्र पांडेय की पूरे लखनऊ शहर में अपनी पत्नी के पीटने और तरह-तरह से प्रताडित करने की खूब चर्चा हुई। अंग्रेजी के कई पत्र-पत्रिकाओ ने इसे जमकर छापा। ऊंची सामाजिक हैसियत रखने वाले इस तरह के हजारों मर्दो से दुनिया पटी पडी है जो बंद कमरो में अपनी पत्नियों की जमकर धुनाई करते हैं। पत्नी की पिटाई करना पुरुष का स्वप्रदत्त अधिकार है। हालांकि यह भी सौ प्रतिशत सच है कि मर्दो द्वारा हथियाए गए लगभग सभी अधिकार स्वप्रदत्त ही हैं। यूं तो पति-पत्नी का संबंध पुराणों व कथाओं में बराबरी का माना जाता है। परंतु पति स्त्री- देह को शक्ति प्रदर्शन का 'सुलभ क्षेत्र' मानता है। दुनिया के हर देश, संप्रदाय, भाषा एवं जाति के मर्द अपनी पत्नियों को पीटने में अव्वल हैं, इसीलिए पढ़ी-लिखी संपन्न औरत हो या गरीब श्रमिक—सबके पति जूते-लात चलाने के मौके तलाशते रहते हैं।

दुनिया की 75 प्रतिशत औरतें अपने पति के हाथों कभी न कभी पिटी अवश्य है। इनमें से 40 प्रतिशत वे हैं जो सप्ताह में कई बार लात-घूसे खाती है—शेष कभी-कभार। अमेरिकी समाज से बेहद प्रभावित लोगों को आश्चर्य होगा कि वहां भी 30 प्रतिशत औरतें मार-पीट की शिकायतें करती है। 11 प्रतिशत अमेरिकी औरतें तो गर्भावस्था के दौरान पति द्वारा तब सताई जाती हैं, जब उन्हें पूरे आराम की जरूरत होती है। हमारे यहां भी तकरीबन 16 प्रतिशत औरतें गर्भावस्था के दौरान पिटाई होने के कारण मर जाती हैं, क्योंकि उनके पेट पर लातो-घूसों से प्रहार किए जाते हैं या धक्का-मुक्की की जाती है।

'इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च ऑन वूमेन' नाम की संस्था का मानना है कि घरेलू हिंसा से जितनी औरतें दुनिया-भर मे मरती हैं, उतनी तो कैंसर के कारण भी नहीं मरतीं। यह सच है कि इन हिंसक पतियों की मारपीट करने की 'स्टाइल' और कारण अलग-अलग होते हैं। कुछ पति लातों-घूसों के अलावा डंडे, बेल्ट या हॉकी, बैट आदि का प्रयोग करते हैं तो कुछ केवल थप्पड मारते, धक्का-

मुक्की करते है, कुछ पति गाली-गलौज और घटिया दर्जे की बातें सुनाकर अपनी कुंठा दूर करते हैं। तो कुछ जानलेवा हमला तक कर डालते है। कुछ पति दफ्तर या अधिकारियों का गुस्सा निकालने के लिए तो कुछ कुंठित या चिड़चिडे होने के कारण, कुछ आदतन और कुछ नशे के कारण अपनी पत्नियों को मारपीट-हाथापाई का शिकार बनाते हैं। अभी तक हमारे देश में इस घरेलू हिसा से निपटने के लिए कोई खास तैयारी नहीं की गई है, क्योंकि हमारे यहां पति-पत्नी की पिटाई का मामला आपसी कहकर हाथ झाड लिए जाते हैं।

अपने देश के अलावा अमेरिका, हैती, मिस्र, फिलीपींस, जापान, रवांडा, युगाडा, पाकिस्तान व दक्षिण अफ्रीका तक की औरते पति द्वारा पिटने को मजबूर है। हमारी सामाजिक स्थितियां, परंपराएं आदि भी ऐसी है, जिनके चलते औरतों का पिटने से बचना मुमकिन नहीं है। अपने देश की लगभग 40 प्रतिशत औरतें पतियों के हाथों लगातार और बुरी तरह मारी-पीटी जाती हैं। ये वे औरते हैं जो समाज के सामने अपने पति की लंबी उम्र के लिए व्रत-उपवास करने को मजबूर हे, और सिंदूर आदि विवाह-प्रतीक पहनने के प्रति प्रतिबद्ध हैं, परतु इनकी गुहार सुनने वाला कोई नहीं है। यदि कोई लडकी अपने मा-बाप से बताती भी है कि उसका पति उसे पीटता है तो मां-बाप उसे सब कुछ चुपचाप बरदाश्त करने की सलाह देते हैं। पति को परमेश्वर बताने वाली हमारी संस्कृति लगातार औरत पर दबाव बनाती है कि वह परिवार की इज्जत ढापने के लिए मुंह सिए, सब सहती रहे।

कुछ लोगो द्वारा तर्क दिया जा सकता है कि चूंकि औरतो में बरदाश्त करने की क्षमताएं घटती जा हैं, वे अपने अधिकारो के प्रति सचेत हो रही हैं या औरतो मे पति की अनुयायी बने रहने की-- समर्पण की— कमी आई है, इसलिए पति उद्दड हो रहे हैं। मगर यह मात्र कुतर्क होगा, क्योंकि पत्नियां केवल आज नहीं पिट रही हैं, दादी-नानी के जमाने से पिटती आई हैं। फर्क इतना है कि तब भीड़-भरे परिवारों में पीटने के मौके कम थे, औरत तर्क करना नहीं जानती थी, उसके मुंह में जबान कैद थी, उसके अपने सपने नही थे। जबकि आज की औरत थोडी चेती है, उसमें गरदन घुमाकर देखने का साहस जागा है, अब वह मूक नही है, अब वह केवल अनुयायी बनकर जीवन--भर बच्चे नहीं जनना चाहती, वह पति के कदम से कदम मिलाकर सहगामी बनना चाहती है।

अभी ज्यादा पुरानी बात नहीं हुई है जब अपने समय की जानी-मानी अभिनेत्री जीनत अमान ने अपने पति मजहर खान (जो अब इस दुनिया में नही है) पर मार-कूट करने और घर से निकाल देने का आरोप लगाया था। उसके

कुछ दिन बाद कपूर खानदान की बहू नीतू सिंह ने अपने पति ऋषि कपूर के खिलाफ मार-पीट करने की शिकायत पुलिस में दर्ज कराई थी। नतीजतन, जीनत अमान को मजहर का घर छोडना पडा और नीतू सिंह को पारिवारिक दबाव में बयान देना पड़ा कि वह मामूली झगडा था। बहरहाल, सोचने वाली बात यह है कि सामाजिक हैसियत रखने वाली, ये तेज-तर्रार औरतें अगर अपने पति के हाथों इतनी बेरहमी से पीटी जा सकती हैं तो आम औरत का क्या हाल होगा।

कुछ समय पहले तक घरेलू हिंसा को औरतो की आर्थिक निर्भरता से जोड़ा जाता था, मगर अध्ययनों ने स्पष्ट कर दिया है कि आर्थिक रूप से मजबूत तमाम औरतें पति की पिटाई का शिकार सिर्फ इसलिए बनती हैं क्योंकि वे औरत हैं और एक छत के नीचे रहती हैं। इसका सबसे बडा उदाहरण अमेरिका और जापान हैं, जहां 75 और 61 प्रतिशत औरतें आत्मनिर्भर हैं, फिर भी वहां इस तरह की शिकायतें आम है। हममें और उनमें फर्क इतना है कि हमारी औरतें मरते दम तक मुंह सिए पिटती रहती हैं, जबकि पश्चिमी देशों में पति के खिलाफ वे मोर्चाबंदी कर सकती हैं, सरकारी तंत्र, संस्थाएं, मनोचिकित्सक, सामाजिक विश्लेषक आदि उनकी मदद के लिए तत्पर रहते हैं। वहा पति 'सहयोगी', 'सहयात्री' है, पर हमारे यहां 'देवता' है। देवताओं से लड़ा नहीं जा सकता, वे अजेय होते हैं, उन्हें सौ खून माफ होते हैं, वे परम स्वतंत्र होते हैं। जब तक पति इस 'देवतापन' के खोल को तोडेगा नहीं, तब तक औरत त्रस्त रहेगी ऐसे बरतावों से।

पति के इर्द-गिर्द सिमटी दुनिया

विश्व शतरज चैंपियनशिप जीतने के बाद से विश्वनाथ आनंद और उनकी पत्नी अरुणा मीडिया में छाये रहे। इसी दौरान अरुणा से की गई कुछ बातों मे औरत के 'अंदर' की कुछ भावनाएं भी पकड में आई। यह जानकर अच्छा लगा कि 'बुद्धिमानो का बादशाह' अपनी पत्नी के साथ खाना बनाने से लेकर कपडे धोने तक में मदद करता है। आनद को मिली कामयाबी को वह पारंपरिक भारतीय पत्नी की तरह बडा झिझकते हुए मेहनत का फल बताती हैं और स्वीकारती है कि शतरज की बारीकियां उनकी समझ से परे हैं पर वह उन्हें समझने की कोशिश करती हैं।

बातचीत के दौरान उन्होंने स्वीकारा कि कभी-कभी आनंद उनके साथ अपना दबाव बांटना पसंद करते है, जबकि कई दफा वह अकेला रहना चाहते है और वह एक प्यारी बीवी की तरह उन्हें अकेला छोड़ देती हैं। उदासी और तनाव के पलों में अरुणा आनंद की बातें ध्यान से सुनती है और उनके मन की उलझन बांटती हैं। तमाम तसवीरों मे आनंद के बगल मे खड़ी, दिल खोल मुसकुराती, संतुष्टि से सराबोर अरुणा की इन बातों से 'औरत' की पीड़ा समझी जा सकती है। एक आम भारतीय औरत हो या सचिन तेंदुलकर से लेकर विश्वनाथ आनंद की पत्नी सबकी स्थिति लगभग एक-सी है। पति के सुखों से ज्यादा उसके दु:खों को भोगने वाली यह 'महान भारतीय पत्नी' किन स्थितियो, मन:स्थितियो, समस्याओं और तनावों से गुजरती है, प्राय: इसे दुनिया का कोई मीडिया नहीं समझ पाता। पति की मरजी पर हंसने-रोने वाली इन औरतों की पूरी दुनिया सिर्फ और सिर्फ अपने पति के इर्द-गिर्द सिमटी होती है। पति रूपी संसार से संतुष्ट ये पत्नियां पति के सुखों से सराबोर अपने दु:खों पर सवार हो जाती हैं और अंतत. वह समय आता है जब अपने दु:खों को गलीचे के नीचे दबाए संतुष्टि की मुसकराहट लपेटे कैमरों के सामने होती है।

पत्नी चाहे दिहाडी मजदूर की हो या किसी खरबपति की या दुनिया-भर को रिझानेवाले नामी-गिरामी पुरुष की, उसकी भावनाएं, इच्छाएं, सपने, अपनत्व

से सराबोर ये तमाम औरतें जानतीं ही नहीं कि जीवन 'अपने लिए-अपने सुखो के लिए' भी होता है। पति के सुख मे सुखी और दु:ख में दु:खी ये तमाम पत्निया पीढियों से अपना 'धर्म' निभाते-निभाते इन सब चीजों की इतनी आदी हो चुकी है कि इस 'सीमा' को तोडने या उससे बाहर जाने के बारे में सोच भी नही सकती। बैंक का बाबू हो या कोई बड़ा अभिनेता, सभी की पत्नियों को अपने पति की 'मानसिक अवस्था' का खयाल रखना होता है। पति खुश तभी परिवार खुश वाली पद्धति आज की कामकाजी औरत को भी निभानी होती है। औरत यदि दफ्तर की समस्याओं के चलते अपसेट हो तो उसके 'कैरिअर' की किसी को चिंता नहीं होती, पर यदि पति महोदय के मिजाज को एक सेकंड में न परखा तो पत्नी की खैर नहीं।

किसी भी अस्पताल के आईसीयू से लेकर जनरल वार्ड तक में देखिए तो पति की शुश्रूषा में जुटी पत्नियों की 'असली स्थिति' सामने आ जाएगी। कुछ दिनों पहले जब अजय देवगन अपनी होम प्रोडक्शन 'राजू चाचा' बनाने में व्यस्त थे तो उसी बीच काजोल का एक इंटरव्यू छपा था जिसमे फिल्म-निर्माण के दौरान अजय द्वारा काजोल को तेज आवाज में धमकाए जाने पर एक सवाल पूछा गया था। सीधी-सादी, पलकें झुकाए, अपने स्वामी की हां में हां मिलाने वाली तमाम पत्नियों की तरह ही फिल्म सिटी की शीर्ष हीरोइन काजोल का जवाब था—'जब मैं कुछ गलत करूंगी तो अजय डांटेंगे ही।' अजय देवगन से कही ज्यादा होनहार, ज्यादा मेहनताना लेने वाली और ज्यादा प्रतिभावान काजोल की यह सफाई बराबरी के पद वाली बात तो कतई नही कही जा सकती। क्या अजय की गलती पर काजोल उसे पूरी टीम के सामने तेज आवाज में डांट लगाने को स्वतंत्र है? पत्नी भले ही पति से ज्यादा पैसा कमाती हो, विद्वान् हो या करोड़ों की जमीन-जायदाद की मालिक हो, पर उसका पति हमेशा खुद को उसका मालिक समझता है। औरत पर शारीरिक, मानसिक और नैतिक अधिकार जताने वाले पतियों को अपने अंदर झांककर यह स्वीकारना होगा कि आज स्थितियां बिलकुल बदल चुकी है, औरत यदि उससे दो कदम आगे नहीं हुई है तो पीछे भी नहीं है। सिर्फ कुरसी या सोफे पर बराबरी में बिठाकर औरत को सम्मानित करने वालों को अब मानसिक रूप से बराबरी के लिए तैयार हो जाना चाहिए। लैंगिक विभेदों के चलते यह व्यावहारिक विभेद इतने गहरे पैठ चुके हैं कि रोजमर्रा के व्यवहार में औरतो के इस अपमान को आसानी से पचा लिया जाता है। पति चूंकि घर का मुखिया होता है, इसलिए उसे तमाम अनकही सामाजिक व नैतिक छूटे दिए जाने की यह

परंपरा अब अझेल हो चुकी है। इसे कोई स्त्रीवादी तर्क नहीं कहा जाना चाहिए, क्योंकि यह वही समाज है जहां औरत पूजनीय भी है। औरतो के प्रति श्रद्धा मे जब देश का प्रधानमंत्री सार्वजनिक रूप से एक औरत के पांव छूने में भी झिझकता न हो, वहां औरत को सम्मान देना कहीं से भी अस्वाभाविक नहीं है। मगर ताज्जुब है कि इसी महान देश में जब जिंदा औरतें दहेज या डायन बताकर जलाई जाती हैं तब हलकी सुगबुगाहटो के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता।

पति चाहे शराबी, झगड़ालू, शक्की, अकड़ू कुछ भी हो, पत्नी उसकी खामियां छिपाने में ही जुटी रहती है, यहां तक कि मरकहे पतियों के लिए भी पत्नियां व्रत और तीज-त्योहारो मे आस्था के साथ भाग लेती हैं। कुछ समय पहले टीवी पर हेमा मालिनी ने अपना इंटरव्यू देते समय कहा था कि धरमजी के विषय में मैं न कुछ बोलूंगी और न आप कुछ पूछेंगे। यह सवाल पूछा तो नहीं गया था। लेकिन यह जवाब देते वक्त हेमा की मनःस्थिति उनके चेहरे से एकदम स्पष्ट थी। हेमा धर्मेंद्र से छोटी हीरोइन कभी नहीं रहीं पर पत्नी बनकर वह वहीं आ गई जहा पत्नी हाती है। पति के सम्मान के लिए मर मिटने वाली पत्नियो के प्रति यह उपेक्षा व उदासीनता उन्हें मानसिक रूप से सताती है। जब वे अपना विरोध दर्ज नहीं कर पातीं तो चिडचिडी और झगड़ालू हो जाती हैं, ऐसे में महान् पतियों को बहाना मिल जाता है कि वे इस लायक नहीं हैं वरना तो उन्हें सिर पर बिठा लेते। पति का चेहरा देखकर यदि पत्नी उसकी मानसिक स्थिति-स्वास्थ्य भांप सकती है तो पति क्यों इसमें फेल है? अति व्यस्त, चर्चित व अपने क्षेत्र में अव्वल पति के लिए पत्नी मुंह सिए जो कुछ बरदाश्त करती है, यदि पति उसका 50 प्रतिशत भी बरदाश्त करने की आदत डाल लें तो तमाम प्रतिभावान औरतों को घरघुस्सू बनकर चौका-बरतन में दिन-रात जुटे रहने की बजाए कुछ कर दिखाने का अवसर खुद-ब-खुद मिल जाए।

औरत का निजी कुछ नहीं होता!

अजित जोगी कांग्रेस पार्टी के प्रवक्ता, प्रखर राजनेता, पूर्व प्रशासनिक अधिकारी और सोनिया गांधी के करीबी होने के साथ ही एक अडियल हिंदुस्तानी बाप भी हैं। इसमे नया कुछ नहीं है, परंतु दहला देने वाला वाकया कुछ दिन पहले बीता, जब जोगी की युवा बेटी ने अपने गले में फदा डालकर आत्महत्या कर ली। ठेठ हिदुस्तानी शैली के बाप— जिनके लिए बच्चियां निजी संपत्ति होती हैं, जो रोज उन पर बंदिशे लादते है, नियम तय करते हैं और लगाम अपनी मुट्ठी में बांधे रहते है— की तरह जोगी ने अपनी युवा बच्ची के सपनों को रौंदा और उसे मौत की तरफ जाने दिया। खबरो के अनुसार, अनुशा जोगी किसी अन्य संप्रदाय के युवक से प्रेम करती थी, जो जोगी को पसंद नही था, क्योकि अपने समाज में 'प्रेम' भी 'परमिशन' के बाद करने का रिवाज है। जोगी के लगातार दबाव के कारण बच्ची को यह कठोर निर्णय लेना पडा और अपने असफल होते प्रेम के एवज में उसने जान दे दी।

दूसरी घटना हे एसजीपीसी की मुखिया बीबी जागीर कोर की बेटी की सदिग्ध मौत की। घर-परिवार के लगातार दबाव के बावजूद हरप्रीत ने छिपकर शादी की थी। उसका पति आरोप लगाते हुए कहता है कि जागीर कौर शुरू से हमारी शादी के खिलाफ थीं सो उन्होंने अपनी गर्भवती बेटी को मरवाने जैसी गभीर साजिश रची। यहा भी मुद्दा सिर्फ प्रेम का है। प्रेम करना, प्रेम विवाह करना अपने इस तथाकथित सभ्य समाज में अस्वीकार्य है। खासकर बेटी का प्रेम, क्योकि वह सीधे परिवार की इज्जत से जुडता है।

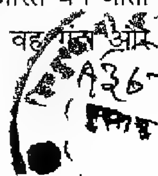
दिल्ली के राजौरी गार्डेन क्षेत्र में इसी बीच राजू नामक एक कथित प्रेमी ने अपनी प्रेमिका पर तेजाब फेंककर उसे 25 प्रतिशत घायल कर दिया। प्रेमी का आरोप है कि वह उसके साथ शादी नहीं कर रही थी। अभी ज्यादा दिन नहीं हुए है, जब स्टार प्लस ने कानपुर के एक लडके को दिखाया था, जिसने प्रेमानुभूति में अपनी प्रेमिका पर तेजाब डालकर उसे 80 प्रतिशत जला दिया था। कोई दस साल पहले की घटना है गोरखपुर के एक मध्यवर्गीय परिवार की खूबसूरत

लडकी के पीछे एक लफगा टाइप का युवक लग गया था। वह लडका से शादी करना चाहता था। बचते-बचाते लडकी की शादी किसी दूसरी जगह कर दी गई, मगर उस युवक ने उसकी ससुराल और पति को अपने प्रेम का वास्ता देकर लडकी को छोड़ने की जिद की। शक की बिना पर लडकी का तलाक हो गया और उसके परिवार को भयाक्रांत होकर गोरखपुर छोडना पडा।

ये पुरुष-प्रेम के बीहड नमूने हैं, जहां लुटती अंततः लड़की ही है। तमाम ऐसी घटनाएं है, जब औरत को प्रेम के लिए तबाह होना पड़ता है। एकतरफा प्रेम करने वाले लड़के बडी आसानी से लडकी को बदनाम कर देते हैं। उसके बारे मे आस-पास के लोगो मे वाहियात बाते फैलाते है, उसे बदचलन, आवारा जैसे घिनौने लफ्जों से प्रचारित करवाते हैं। वर पक्ष अथवा लडकी के होने वाले पति को पत्रादि लिखकर अनर्गल प्रचार करते हैं। चाहे जोगी जैसे समझदार बाप की बेटी हो या किसी अनपढ टाइप के सज्जन की बच्ची हो, प्रेम की कीमत अतत. उसे ही चुकानी होती है।

जोगी या जागीर कौर ने अपनी बच्चियों के जिन सपनो को रौदकर कफन लपेट दिया, उसके लिए उत्तरदायी कौन माना जाए? यह सच है कि अपने बच्चे को खोने की पीडा उन्हे जीवन-भर सालेगी, मगर उतना ही बडा सच यह भी है कि पीढ़ियो से चली आ रही सामाजिक संरचना को बदलने के प्रति ये 'समझदार' लोग भी आगे नही आना चाहते। प्रियंका गांधी ने जब राबर्ट से शादी की जिद ठानी थी तो सोनिया यू ही नहीं तैयार हुई होगी, खुद प्रेमविवाह करने वाली सोनिया ने कुछ महसूसा होगा तभी अपनी इच्छा के विरुद्ध इतना कड़ा निर्णय लिया, वरना वे चाहतीं तो प्रियंका आज अजीम प्रेमजी या धीरूभाई अंबानी जैसे परिवार की बहू होती।

हमारे समाज में औरतों पर लगी पाबंदियां आज भी ज्यो की त्यो है। पुरुष चार जगह प्रेम करे या तीन शादियां करे, वह स्वतंत्र है। उसे समाज बहिष्कृत नही करता। उसे कुलटा और करमजली नहीं कहा जाता। औरत यदि अपना जीवन अपने अनुसार बिताना चाहे तो सारे नियम बदल जाते हैं। औरत और आदमी को अलग-अलग नजरियों से देखने की यह परपरा हमें त्यागनी होगी, वरना यू ही हमारी लडकिया मरती रहेगी, तड़पती रहेगी। प्रेम स्वाभाविक भावना होने के बावजूद बंदिशों के दौर से हमेशा गुजरता रहा है। कोई शादीशुदा औरत किसी दूसरे मर्द से प्रेम करती है तो वह बदचलन, घटिया और बेहया औरत बन जाती है पर जब शादीशुदा चार बच्चों का बाप प्रेमजाल फेकता है तो वह रंगीन और



घृणित नहीं कहलाता! यह दो तरह का रवैया अद्भुत है। एक युवती किशोर बच्चो के अधेड़ उम्र वाले बाप के प्रेम के चक्कर में आ गई। युवती के घरवालो ने उसे घर से निकाल दिया और उसके साथ सबंध खत्म कर लिए, जबकि अपनी बेटी की उम्र की लडकी को फुसलाने वाले सज्जन अपने परिवार के साथ समाज मे उसी प्रतिष्ठा के साथ रह रहे हैं साथ ही लडकी के पास भी राते गुजारते रहते हैं।

आज के तकनीकी युग मे भी लड़कियों के मां-बाप यही उम्मीद रखते है कि वे परिवार की इज्जत को बट्टा न लगाए और उनके द्वारा चुने लडके को ही वर माने। हमारे यहां प्रेम-विवाह इसीलिए असफल हैं, क्योकि परिवार कभी इन्हे मन से स्वीकारता नहीं। खासकर यदि बहू किसी दूसरी जाति या धर्म की तो हो उसे ताउम्र ताने-उलाहने सुनने पड़ते हैं। समय के साथ हमें जिन चीजों के प्रति स्वयं को वदलना चाहिए, वह करने में सकुचाते क्यों हैं हम? फिल्मी सितारों की बातें तो किसी से छिपती नहीं, ऐश्वर्य राय दुनिया-भर का परिचित नाम है, मगर उसे भी तमाम आम लडकियों की तरह अपने घरवालो से झगडना पड़ा और अंततः सलमान खान के लिए अपनी मां का घर छोड अलग रहने का निर्णय लेना पडा। लड़कियो पर जबरन थोपी जाने वाली ये बंदिशे क्या आज भी लडकियों के दोयम दरजे के जीवन का संकेत नहीं करतीं? यह सच है कि मा-बाप बच्चियों का बुरा नही चाहते, मगर यह भी उतना ही बडा सत्य है कि अब लडकियां 10-12 साल की नही ब्याही जातीं, कि जब जहां चाहा, बाध आए।

अजित जोगी और जागीर कौर की बच्चियो के साथ जो कुछ भी हुआ वह किसी गांव-कस्बे में पंचायती निर्णय के बाद मार-मार के जान लिए जाने या बियाबान खेत के किसी पेड पर लटकाकर मार दिए जाने वाले प्रेमी सरीखा ही सुलूक है। बच्चियों के भविष्य के प्रति सचेत रहना तो जरूरी है, मगर उनके जीने के अधिकार को कब तक अतिक्रमित करते रहेंगे?

भावना में बहकर औरत से हुई गलती नैतिकता के पैरोकारों को हमेशा कचोटती है, जबकि मर्द स्वतत्र है। वह मनबहलाव के लिए अड्डेबाजी करे या रंडीखाने जाए, यह उसका अपना व्यक्तिगत मसला है! पर औरत का व्यक्तिगत कुछ नहीं होता?

पत्नी के साथ बलात्कार

शीर्षक पढने मे भले ही अटपटा लगा हो, परंतु यह शत-प्रतिशत सच ही है। बलात्कार यानी जबरदस्ती यौन संबंध बनाना। यह संबंध भले ही किसी भी महिला से हो। यदि यौनाचार करते समय दूसरे पक्ष की सहमति या इच्छा नहीं है तो वह जवरदस्ती ही है। जबरदस्ती किया जाने वाला यौनाचार ही हमारे यहां बलात्कार माना जाता है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जहां शादी के बाद पत्नी की अनिच्छा के बावजूद पति द्वारा जबरदस्ती की जाती है।

चूकि हमारे समाज में इस तरह की घटनाए प्रकाश में आ ही नहीं पाती, यहा तो पति परमेश्वर की सारी इच्छाएं-अपेक्षाए पत्नी के लिए शिरोधार्य होती है। शारीरिक संबंधो के प्रति भी प्राय: भारतीय पत्नियां संकोची होती हैं। वे अपनी इच्छा या उत्साह, कम से कम सेक्स के प्रति दर्शाना अपना अपमान समझती है। नैतिकता और मर्यादा की ओढनी ओढे ये महिलाएं सेक्स को पति की इच्छा पर छोड देती है। पति अपनी इच्छा जब चाहे, जैसे चाहे पूरी करने के लिए स्वतत्र होता है। इस सबके बावजूद, पति द्वारा सेक्स को लेकर की जाने वाली ज्यादतिया महिलाओं को तमाम मनोरोगों में जकड देती हैं।

संतोषी, सहनशील और लजीली पत्नियां आखिर कब तक पति द्वारा शारीरिक रूप से निचोड़ी जाती रहेंगी? पिछले कुछ समय से एकाध मामले सामने आने शुरू हुए हैं, जब पत्नी ने पति पर 'बलात्कार' करने का अरोप लगाया। हमारी सामाजिक व्यवस्था के अनुसार, पति का पत्नी और उसके शरीर पर पूरा अधिकार है। परंतु कानून इसकी इजाजत बिलकुल नहीं देता। कानून पति-पत्नी को बराबरी का दर्जा देता है। सेक्स जैसी आधारभूत आवश्यकताओं मे दोनों की बराबर सहमति नि:संदेह जरूरी होती है।

पति अपनी इच्छा से जब मरजी शारीरिक संबंध बनाने को स्वतत्र है, पर औरत ने यदि इच्छा जाहिर कर दी तो उसे कामुक-कुलटा और न जाने किन-किन आरोपो को झेलन के लिए तैयार रहना पडता है।

बिटेन, जर्मनी जैसे तमाम विकसित देशों मे भी इस नरह के केस तेजी से

सामने आ रहे हैं। ब्रिटेन की एक महिला ने अपने पति पर उसकी इच्छा के बगैर किए गए शारीरिक संबंधों के कारण उसे न सिर्फ हर्जाना भरने के लिए मजबूर किया, बल्कि काफी समय तक जेल की सलाखों के पीछे जीवन गुजारने पर भी मजबूर कर दिया।

हमारे समाज मे आज भी शादियां मां-बाप या घरवालों की इच्छा से की जाने का प्रचलन है। ऐसे में कई बार लडके-लडकियों के विरोध के बावजूद परिवारवाले अपनी इच्छा उन पर लादने से बाज नही आते। सामाजिक रीतियों की आड मे इस तरह की शादियां एक प्रकार से एक-दूसरे पर थोपने का काम करती हैं। बगैर मरजी के की गई इन शादियों में लड़के-लडकियां एक-दूसरे को को मानसिक रूप से स्वीकार नहीं कर पाते। उनके दिमाग मे एक खास तरह की उदासीनता घर कर जाती है। ऐसे मे सेक्स के प्रति अरुचि हो जाना असंभव नहीं है।

दूसरे, हमारे सामाजिक ताने-बाने में 'सेक्स' इतना गोपनीय और चर्चा से परे का विषय है कि इस पर जुबान खोलना भी अश्लीलता के दायरे में आता है। इसलिए सेक्स को लेकर तमाम भ्रांतियां फैली रहती हैं, जिनके चलते वे कभी सेक्स को सामान्य रूप मे नहीं ले पाते।

बूढे आदमी से षोडशी की शादी जैसी घटनाएं आज भी आम हैं। दहेज आदि कुछ ऐसी समस्याएं मुंह बाए हमारे सिर पर इस तरह खडी हैं, जिनके कारण कुछ मा-बाप बच्चियों की शादी बूढों से कर देते हैं। ऐसे सबधों मे लड़कियों की रुचि सेक्स से उचट जाती है। जब सुहागरात या प्रथम रात्रि में पति द्वारा यौन संपर्क बनाने की कोशिश की जाती है तो वे घबरा जाती है और खुद को उनके बंधन से छुड़ाकर भागने का प्रयास करती है। सेक्स के प्रति अरुचि और सामने वाले तथाकथित पति का खौफ उनके दिमाग से निकल नहीं पाता। शारीरिक सबंध बनाने से घबराने वाली इन लडकियों से जबरदस्ती यौन सबध बनाए जाते है। इस तरह का यौनाचार बिलकुल बलात्कार वाले माहौल मे संपन्न होता है।

एक घटना में लडकी का प्रेम-संबंध किसी अन्य युवक से था। मां-बाप ने उसकी मरजी के बगैर शादी दूसरे व्यक्ति से कर दी। चूंकि इच्छित पुरुष से उसकी शादी न हो सकी, इसलिए पति के प्रति उसके मन मे घृणा भर गई। लडकी के अपने शब्दों में 'शारीरिक संबंधों के दौरान वह मुझे भयानक लगा।' लेकिन लड़की से उसका पति सबंध कायम करने में अंततः सफल हो गया। इस

तरह के संबंधों को आखिर किम श्रेणी मे रखा जा सकता है?

इतना ही नही, कुछ पुरुष सेक्स के दौरान हिसक रूप अपना लेते हैं, जिसे चुपचाप महन करते जाना एक तरह की मानसिक और शारीरिक प्रताडना है। चिकोटी नोच लेना, दात से इतनी जोर से काट लेना कि खून छलछला आए, खरोच लेना, हाथ-पैर मरोड़ देना या बुरी तरह दबा देना उनकी प्रेम अभिव्यक्ति की परिभाषाए होती है। सहनशीलता की मूर्ति महिलाए उम्र-भर इस तरह की क्रूरतम प्रेमाभिव्यक्ति का शिकार मूक रूप से बनी रहती है। अपना दुःख प्रायः वे किसी के सामने बता भी नही पातीं।

हजारों पुरुष बडे फख्र के साथ स्वीकार भी करते हैं कि यह तो उनका हक है। वे जब, जहां, जैसे चाहें अपनी जरूरत के लिए औरत को इस्तेमाल कर सकते है। पत्नी के बीमार होने, किन्हीं कारणों से जी अच्छा न होने आदि समस्याओ के बावजूद पति द्वारा शारीरिक संबंध बनाये जाने को भी इसी जबरदस्ती के अंतर्गत रखा जाना चाहिए। इस तरह के संबध अमूमन पतियों द्वारा बनाए जरूर जाते है परंतु इनका खुलासा नहीं हो पाने के कारण ये बेड-रूम के अधेरे तक ही रह जाते हैं। महिलाओ मे बढ़ती जागरूकता और सेक्स के प्रति इच्छा जागृत होने के कारण कुछ मामले सामने आए हैं, जिससे पता चलता है कि पति भी लगातार कई-कई वर्षो तक पत्नियों के साथ बलात्कार करते आ रहे हैं। चूंकि कानून में इस तरह के बलात्कारों को गभीरता से नहीं लिया गया है, इसलिए अभी भी इन केसों का उचित निर्णय नहीं हो पाता है। पति द्वारा पत्नी से किए गए बलात्कार को उचित निर्णय का इंतजार आज भी है। शायद कुछ समय बाद सुधार आ सके।

पाकीजगी परेशान है पाकिस्तान में

पाकिस्तानी जेलों में एक वर्ष (1992-93) के दौरान लगभग 20,000 महिलाओ के साथ बलात्कार किया गया। वाशिंगटन स्थित मानवाधिकार संगठन 'एशिया वाच' ने इस विषय पर एक रिपोर्ट पेश की है। संगठन का दावा है कि वहा सुरक्षाकर्मियो द्वारा जेलो में महिलाओ के साथ बलात्कार, छेडछाड़, भद्दी गाली-गलौज के तमाम वाकये होते रहते है। हालांकि पूरे राष्ट्र में महिलाओं के साथ होने वाले व्याभिचार का यह अश मात्र हैं।

पाकिस्तान में महिलाएं जेल या पुलिस थाने के नाम से थर्राती हैं, क्योंकि वहा को पुलिस का उनके साथ व्यवहार बेहूदा, क्रूर व पाशविक है। बलात्कार की शिकार महिला यदि थाने में रपट लिखाने आती है तो उससे अट-शट सवालो के अतिरिक्त पुलिस वाले प्रत्यक्षदर्शी लाने पर मजबूर करते है। पाकिस्तानी कानून के मुताबिक बलात्कार की शिकार महिला को केस दर्ज करवाते समय कम से कम एक प्रत्यक्षदर्शी लाना जरूरी है। प्रत्यक्षदर्शी के अभाव में महिला की रपट दर्ज तक नही की जाती। अमूमन रिपोर्ट दर्ज करवाने आई महिला को ही पुलिसकर्मी दोष मानकर जेल में ठूंस देते हैं।

इतना ही नही, बल्कि बलात्कार या अन्य छेडछाड़ संबधी मामलों मे पुलिसकर्मियों के हाथ लगी महिलाए प्रायः 'हुदूद कानून' के अंतर्गत बंद कर ली जाती हैं। 'हुदूद कानून' पाकिस्तान के राष्ट्रपति स्वर्गीय जनरल जिया उल हक ने लागू किया था। इस कानून के अंतर्गत हद जारी किया जाता है। हद के द्वारा बलात्कार या अनैतिक काम में शामिल औरतों या मर्दों को पत्थरों से मार-मार के अधमरा कर दिया जाता है। कुछ जगहों पर पत्थरों की बजाए, कोड़ों का प्रयोग किया जाता है। इस जानलेवा चौतरफे हमले से प्रायः अपराधी की जान तक चली जाती है, कई बार वह अपाहिज हो जाता है या चुटहिल शरीर लिये किसी अंधेरी कोठरी में तडपता रहता है।

इस कानून की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगातार आलोचना होती रही है इसके बावजूद यह कानून आज भी जारी है और निरीह आम आदमी पर कहर

बरपा रहा है। पुलिसिए एक तरफ तो इसका अमोघ अस्त्र के रूप में प्रयोग कर ही रहे हैं, दूसरे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वहा न्यायिक प्रक्रिया शुरू किये बिना ही, अपराध की पुष्टि होने से पहले पुलिस अधिकारियों द्वारा न्याय मागने आए व्यक्ति पर हुदूद लागू कर उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को भेजी गई एक अन्य रिपोर्ट में कहा गया है कि लाहौर की जेल में दो ईसाई महिलाओं को पुलिस अधिकारियो ने कोड़ो से मारा और थाने मे जबरदस्ती नंगा करके नचवाया। शायद यह अकेली घटना है जिसकी जानकारी अतरराष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग तक पहुंच पाई, वरना वहां इस तरह की घटनाएं प्राय. थानो में घटती ही रहती है। कुछ अन्य वाकये जो खबर बन पाए, उनके अनुसार, गिरफ्तार करने के बाद पाकिस्तानी पुलिस अधिकारी महिलाओं व पुरुषों दोनों को बिना वजह तंग करते है, प्रताडित करते हैं तथा उनके परिवार या संबंधियों के सामने नंगा तक कर देते हैं। शर्म-हया तथा सामाजिक मर्यादा के चलते भुक्तभोगी किसी के सामने इसकी चर्चा करने से हिचकिचाते हैं। न्याय तो उन्हें मिलने से रहा, यह सोचकर चुपचाप खून का घूंट पीकर रह जाते हैं।

कुछ वर्ष पहले पाकिस्तान की मुख्य विपक्षी पार्टी मुस्लिम लीग ने इस दिशा में कुछ कर गुजरने की इच्छा से कदम भी बढाए थे, मगर जल्दी ही वह भी इस मुद्दे पर मुंह-सी के दुबक गई। मुस्लिम लीग ने दावा किया था कि बेनजीर सरकार के सत्तासीन होने के कुल 2 महीनों के भीतर ही 277 से अधिक मामलों में पुलिस द्वारा गिरफ्तार की गई महिलाओं के साथ बदसलूकी की गई और बलात्कार किया गया। चूंकि इस मामले को पूर्णतः राजनीतिक बनाने की मनःस्थिति से तूल दी गई थी, जब उन्होने यह देखा कि वे इसे पूरी तरह नहीं भुना पा रहे हैं तो उन्होंने इस मसले को बीच में ही छोड दिया। जबकि यह एक अहम् मुद्दा है, सामाजिक उत्थान के अतिरिक्त इसे महिलाओं की प्रगति मे अवरोध मानते हुए सरकार कोई मजबूत कदम उठाना तो दूर इस विषय में चर्चा तक नहीं करती। सरकार इस मामले में चुप्पी साधे भले ही बैठी रहे, परतु स्वयं 'ह्यूमन राइट्स कमीशन ऑफ पाकिस्तान' (एच.आर.सी.पी) ने देश मे महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों तथा शोषण के लिए बेनजीर सरकार को दोषी ठहराया है। अपनी ताजा रिपोर्ट में एच.आर.पी.सी ने 'प्रभावशाली व्यक्तियो' द्वारा महिलाओं के मानवाधिकारों को छिन्न-भिन्न करने को प्रमुख कारण मानते हुए गंभीर चिंता व्यक्त की है। रिपोर्ट मे यह भी आरोप लगाया गया है कि 'हुदूद कानून' का

महिलाओ पर जबरदस्ती प्रयोग किया जा रहा है। यही नहीं, रिपोर्ट मे यह भी साफ लिखा है कि पाकिस्तानी जेलों में महिलाओं को समझे–बूझे तरीकों से प्रताड़ित किया जा रहा है, उनका यौन शोषण बाकायदा जारी है।

एमनेस्टी इंटरनेशनल ने अपनी हाल की रिपोर्ट में लिखा है कि पूरी दुनिया में अकेला पाकिस्तान ही ऐसा राष्ट्र है जहां बलात्कार के मामलो मे महिलाओं को गिरफ्तार किया जाता है। पंजाब की लगभग 12 महिलाएं एक साल मे पाकिस्तानी जेलों में कैद की गई और जेल मे उनके साथ सामूहिक बलात्कार किया गया, बार–बार चीख–पुकार, शिकायत और अर्जियां जमा करवाने के बावजूद आज तक ऐसे अपराध करने वाले पुलिस अधिकारियों के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया गया।

तमाम वैज्ञानिक सुविधाओं, डॉक्टरी परीक्षणो तथा यौन विशेषज्ञों की उपस्थिति के बावजूद पाकिस्तानी सरकार इस तरफ कोई ठोस कदम उठाने की तैयारी करती नही दिखती। महिला शासक (बेनजीर भुट्टो) रहने के इतने सालों बाद भी इस विषय पर कभी कोई बहस चर्चा नहीं की गई। जबकि वहां के तमाम डॉक्टर, वकील, अध्यापक तथा अन्य बुद्धिजीवी लगातार इस विषय पर विचार–विमर्श करने की सलाह दे चुके हैं, धरने दे चुके हैं, ज्ञापन दे चुके हैं। तब भी पाकिस्तान में हर तीसरे घटे एक औरत बलात्कार का, और हर चौथे घटे एक औरत सामूहिक बलात्कार का शिकार बन रही है। यही नही, बल्कि हर दूसरे बलात्कार का शिकार एक बच्ची है।

'जख्मी औरत' से जख्मी नर्सों तक

अरसा पहले एक फिल्म आई थी 'जख्मी औरत'। सार्थक सिनेमा के दम तोडते दिनों में यह फिल्म बहस के केंद्र में रही थी। तब इसके निर्माता-निर्देशक लदन रिटर्न अवतार भोगल तमाम राष्ट्रीय पत्रिकाओं की कवर स्टोरी बने थे। फिल्म का विषय आपको मालूम ही होगा, इसमें बलात्कारी कानूनी खामियों का फायदा उठाकर बच निकलते है और नायिका (डिंपल कपाडिया) अपनी महिला डॉक्टर दोस्त (रमा विज) के साथ मिलकर बलात्कारियो को बधिया कर एक खास तरह की सजा देती है। उन्हीं अवतार भोगल ने बाद मे एक टेलीविजन चैनल के लिए 'दिल का डॉक्टर' नाम से एक फिल्म बनाई।

एक महीने मे दिन में दस बार इस फिल्म का ट्रेलर टी.वी. पर दिखाया गया। इसमे अस्पताल की नर्सों के साथ डॉक्टर को मसखरेपन में लगभग अश्लील हरकतें करते दिखाया गया। फिल्म मे यह घटिया रोल गोविंदा ने नही, बल्कि अनुपम खेर जैसे मजे हुए अभिनेता ने निभाया था। फिल्म में नर्सो को मिनी स्कर्ट टाइप की विशेष फिल्मी ड्रेस पहनाई गई थी। इसका विरोध करते हुए दिल्ली नर्सेज आर्गनाइजेशन ने केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री से इस भोंडी फिल्म पर तत्काल रोक लगाने की मांग की। नर्सो के इस आर्गनाइजेशन का आरोप था कि फिल्म मे नर्सो का पहनावा बेहद घटिया ढंग का दिखाया गया है। फिल्म में मिनी स्कर्ट के अलावा नर्सो को हाथो मे चूड़ियां पहने और भडकीले मेकअप के साथ दिखाया गया है, जो नर्सो की सेवाओं का अपमान है। आर्गनाइजेशन की अध्यक्ष (श्रीमती टी.के. चौधरी) ने कहा कि कोई भी नर्स अपने मिशन को इस तरह बदनाम होते नहीं देखना चाहेगी।

यह फिल्म रिलीज नहीं हुई थी, सेंसर बोर्ड ने भी फिल्म के दृश्यो और गाने के द्विअर्थी संवादों पर आपत्ति जताते हुए पहले तो इसे प्रमाणपत्र देने से इनकार भी कर दिया था, लेकिन बाद मे कुछ दृश्यों को काट देने के बाद 'ए' सर्टीफिकेट दे दिया गया। 'ए' सर्टीफिकेट मिलने के कारण यह फिल्म देर रात से पहले नहीं दिखाई जा सकेगी। इसके लिए फिल्म बनाने वालों ने सेंसर बोर्ड

के पिछले दरवाजे से अपील की और सेंसर बोर्ड की रिव्यू कमेटी (?) ने बताते हैं इसे 'यू' सर्टीफिकेट दे दिया।

डॉक्टरों के पेशे को लेकर यह पहली फिल्म नहीं है। अस्पतालों में पेट में कैंचियां छोड़ देने, दाईं की जगह बाईं टांग काट देने, अस्पतालों की दवाइयां बेच देने या फर्जी मेडिकल सर्टीफिकेट आदि विषयों को लेकर डॉक्टरों की खिंचाई करने वाली तमाम हास्य फिल्में बन चुकी हैं। हॉलीवुड की तो यह प्रिय थीम मानी जाती है। इस विषय पर वहां ऐसी फिल्मों की कई सीरीज बन चुकी है। इनमें से किसी फिल्म का संदेश या उद्देश्य सामाजिक सरोकारों से हटकर नहीं दिखाया गया है, लेकिन अवतार भोगल की फिल्म ऐसी नहीं है। यह एक शुद्ध मसाला फिल्म है और ताजा फिल्म मंडी का एक माल रही, जिसमें डॉक्टरी जैसे महत्त्वपूर्ण पेशे का मजाक सिर्फ चटखारे लेने के लिए था। सच बात यह है कि थोक के भाव पतन के बाद भी कुछ ही पेशों में अब ईमानदारी शेष बची है। डॉक्टरी भी इन्हीं में से एक है।

इस पेशे में नर्सों का काम डॉक्टरों की तुलना में कहीं ज्यादा धैर्य और सेवा का होता है। यह ठीक है कि उनकी भी एक निजी जिंदगी होती है, लेकिन नर्सों का वह रूप कहीं भी और शायद कभी भी देखने को नहीं मिला जो अवतार भोगल ने दिखाया है। ड्यूटी और जिम्मेदारी के अनुपात में नर्सों का वेतन भी बहुत कम है। आप करोडों दर्शकों को अगर बंदरों की तरह उछलती-कूदती, कामुक नृत्य करती नर्सें दिखाएंगे तो समाज में क्या संदेश जाएगा! फिल्म विधा की दृष्टि से भी दिल का डॉक्टर एक भोंडी फिल्म ही नजर आई। हास्य या व्यंग्य का विजन कभी यह नहीं कहता कि आप किसी की आत्मा को झकझोरने के बजाए उसमें सूजा भोंक दें।

'जख्मी औरत' फिल्म रिलीज होने के बाद 'रविवार' पत्रिका से इंटरव्यू में अवतार भोगल ने बड़ी-बड़ी बातें की थी। हालांकि उनकी वह फिल्म एक अंग्रेजी फिल्म का रिमेक थी, लेकिन भोगल की बातें सुनकर लगा था कि सार्थक सिनेमा को एक और निहलानी या बेनेगल मिलने जा रहा है। जब 'जख्मी औरत' आई थी, उससे पहले बलात्कार की संख्या में भयावह वृद्धि हुई थी। फिल्म ने दर्शकों पर गहरा असर छोड़ा था, लेकिन अब नर्सों के पेशे के साथ इस तरह का खिलवाड़ दिखाकर स्वयं भोगल ने उनके साथ एक तरह का मानसिक बलात्कार ही किया।

महिला आयोग के ठोस कागजी सुझाव

महिला आयोग ने कामकाजी (दफ्तरी) महिलाओं के हित के लिए अनेक सुझावों-भरी एक रिपोर्ट सरकार को दी थी। 130 पृष्ठों की यह रिपोर्ट इस राष्ट्रीय आयोग ने दिल्ली की महिलाओं को मद्देनजर रखते हुए बनाई थी। पूरे देश मे रोजगार पाने वाली कामकाजी महिलाओं की स्थिति पर एक नजर डाले तो हिंदीभाषी क्षेत्र के शहरी इलाकों में यह 10 प्रतिशत और ग्रामीण इलाको में तकरीबन 30 प्रतिशत है। देश में सरकारी आंकड़ों के मुताबिक सौ में से 39 महिलाएं साक्षर हैं। इनमें से 5 प्रतिशत से भी कम महिलाएं उच्च शिक्षा प्राप्त है। इन 5 प्रतिशत में भी नौकरी कर रही महिलाएं हम अपने आसपास देखें, तो दो प्रतिशत से ज्यादा नहीं हैं। इस हिसाब से ठीक-ठाक स्थायी नौकरी कर रही महिलाएं कितनी हो सकती हैं, इसका हम स्वयं अंदाजा लगा सकते हैं। आयोग ने अपनी इस रिपोर्ट में गांवों, कस्बो में खेती-मजदूरी में खट रही महिलाओं के लिए कुछ नहीं सोचा है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। अधिकांश महिलाएं अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर हैं। घरेलू उद्योग, हस्तशिल्प (पापड़, बीड़ी, स्लेट) बुनाई, दर्जीगीरी, दक्षिण में पेड से रबर, नारियल, सुपारी, जूट आदि निकालने के अलावा छोटे कारखानों जैसे गुड़िया, खिलौने, घड़ी, पटाखों, प्लास्टिक उद्योग, माचिस, चूडी उद्योग, बिंदी बनाने आदि में महिलाओं की खासी तादाद है। महिलाओं का सबसे ज्यादा शोषण इन्हीं क्षेत्रों मे है। वे जितना काम करती हैं उन्हें उसका एक-तिहाई पारिश्रमिक भी नहीं मिलता है। इसकी तुलना में उच्च शिक्षित कामकाजी महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं तो बहुत खराब भी नहीं है। इस रिपोर्ट मे आयोग ने कामकाजी महिलाओं का मातृत्व अवकाश बढाकर छह महीने करने, काम का एक घंटा घटाने, दफ्तरों मे बच्चो के लिए पालनाघर बनाने, हर दफ्तर में महिलाओं के मनोरंजन व आराम के लिए अलग कमरा बनाने, स्पेशल लेडीज बसो की संख्या बढ़ाने के मुख्य सुझाव दिए थे।

कामकाजी महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या हमेशा महिला होस्टलों की रही है, जिस पर आयोग ने कोई टिप्पणी नहीं की। अकेले दिल्ली को लें, तो

125 में से सिर्फ एक महिला को होस्टल मिल पाता है, वह भी तमाम जोड़-तोड़ और सिफारिशो के बाद। व्यावहारिक तौर पर यह पाया गया है कि ज्यादातर सस्थान एक खास संख्या के बाद महिलाओं की भर्ती इसलिए रोक देते है, क्योंकि श्रम कानूनो के अंतर्गत यदि 30 प्रतिशत से अधिक महिलाएं है तो क्रेच आदि की सुविधाएं देनी पडेंगी। इस तरह महिलाओ की सुविधाओं की माग महिलाओं के लिए ही नकारात्मक साबित हो रही हैं। ज्यादातर गैर सरकारी संस्थान महिलाओ को उनके गर्भपात का अवकाश नही देते, जबकि इसके लिए 40 दिन का अवकाश देने की व्यवस्था है। छोटे संस्थान महिलाओं के गर्भवती होने के छठे या सातवें महीने में कोई न कोई आरोप लगाकर उन्हें काम से हटा देते है। सिर्फ इसलिए ताकि उन्हें मातृत्व अवकाश न देना पडे। महिला आयोग को चाहिए कि वह ऐसी घटनाओं पर देशव्यापी विस्तृत सर्वेक्षण करवाए और श्रमायुक्तो से तुलनात्मक विवरण मागे।

यह भी शर्मनाक है कि आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे घरेलू नौकरानियों को प्रशिक्षण देने का सुझाव दिया था, जबकि जरूरत इन्हें अल्प शिक्षित करके, झाड़ू-पोंछा जैसे काम से हटाकर, कुछ ठोस काम दिए जाने की है। अभी तक दलित या निचली जातियों की महिलाएं ही घरेलू कामों में लगी हैं। सरकार भी अब इन घरेलू नौकरियों को बाहर निर्यात करने लगी है। इसी तरह मातृत्व अवकाश को छह महीने तक बढ़ाने के पीछे का तर्क यही है कि शिशु पालन सिर्फ महिलाओ की जिम्मेदारी है, क्यों नहीं पुरुषों को भी पितृत्व अवकाश दिया जाता? संतानोत्पत्ति महिला के लिए दूसरे जन्म के बराबर होती है।

कुछ समय पहले अखबारों में एक खबर छपी थी, जिसके अनुसार महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों पर काबू पाने के लिए खोले गए महिला थानो और महिला पुलिस प्रकोष्ठों की इंचार्ज महिला पुलिस अधिकारी अपने पुरुष अधिकारियों द्वारा किए गए भेदभाव व शोषण की शिकार थीं। उन्हें वह अधिकार और कार्यस्थल नहीं दिया गया, जो उसी कैडर के पुरुष अधिकारी को प्राप्त था। इससे हम कामकाजी महिलाओं की हालत का अनुमान लगा सकते हैं। जब तक मानसिकता नहीं बदलेगी, सिर्फ कानून बनाने और बदलने से क्या होगा?

मजदूरी कर रही महिलाओं की स्थिति यह है कि बुंदेलखंड के पाठा के जंगलों में ठेकेदारों को ठेका देते वक्त तेदू के पेड़ों और मजदूर आदिवासी लडकियों को एक साथ गिनाए जाने का चलन आज भी जारी है। भोले-भाले आदिवासी एक कटोरा अनाज के लिए दिन-भर ठेकेदारों के दारुओं (लठैतों) की

गोलिया सुनते हैं और उनकी बहू-बेटिया ठेकेदारो द्वारा शारीरिक शोषण की मजबूरी झेलने को मजबूर की जाती हैं।

निष्कर्ष यह कि महिला आयोग यदि सचमुच कामकाजी महिलाओं के लिए कुछ सार्थक सुझाव रखना चाहता है, तो वह विज्ञापनो के जरिये एक जागरूकता अभियान चलाए और सभी संस्थाओ को साथ लेकर देश-भर मे कामकाजी महिलाओ की स्थिति के बारे मे तथ्यगत और व्यावहारिक आंकड़े इकट्ठे करे, उनका विश्लेषण करे और इन सबके लिए एक निश्चित कार्ययोजना तैयार करे। तब सरकार को सुझाव देने की जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योकि तब यह हक की बात होगी। सदन की सभी महिला सासद इस मामले को लेकर गभीरता से सरकार पर दबाव बनाएंगी। अकेले दिल्ली के बारे मे या इस तरह के हवाई सुझावो से कुछ नही होने वाला।

महिला आयोग की दिखावटी चिंताएं

तमाम अंतर्विरोधो के बावजूद कोई आयोग यदि जिम्मेदारी से अपनी भूमिका निभाना चाहे तो वह कितना कुछ कर सकता है, यह टी.एन. शेषन ने हमें दिखा दिया है। संदर्भ राष्ट्रीय महिला आयोग का है। अध्यक्ष मोहिनी गिरि के तमाम इंटरव्यू मीडिया के केंद्र में रहे हैं। इनकी नियुक्ति के पीछे की राजनीति को थोडी देर के लिए भुला दिया जाए तो जो जोशो-खरोश उनमें दिखाई पड़ता रहा है, वह महिला आयोग की पिछली अध्यक्षों की तुलना में बहुत बेहतर है।

यह दु:खद ही था कि जयंती पटनायक की अध्यक्षता वाले महिला आयोग ने काम के नाम पर ज्यादातर सिफारिशें ही कीं, उनके कार्यान्वयन के बारे में कोई चिंता नहीं की। मोहिनी गिरि इस मामले मे थोडा सतर्क दिखाई पड़ती है। यह भी सही है कि इतने कम समय में किसी का आकलन या मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन पहला कदम ही लक्ष्य की दिशा को निर्धारित करता है और इस दृष्टि से मोहिनी गिरि के यह कहने का मतलब समझ के बाहर है कि राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन देश का दुर्भाग्य है। इस तरह तो कहने को यह भी कहा जा सकता है कि न्यायालयों का गठन देश का दुर्भाग्य है, क्योंकि एक स्वस्थ समाज में अन्याय होना ही नहीं चाहिए। लेकिन यह सब कल्पना की बातें हैं, सारे संविधान, नियम-कानून बनाने ही इसलिए पडते हैं कि भविष्य के लिए हम एक बेहतर समाज का ढांचा खड़ा कर सकें, जो अपने रास्ते से भटके नहीं और कोई स्वार्थी सद्इच्छाओं की नीयत से बनी संस्थाओ का दुरुपयोग न कर सके।

स्वीडन आज महिलाओं का स्वर्ग है तो सिर्फ इसलिए कि समय के साथ वहां की राजनीति में यह मुद्दा अपनी जगह बनाता चला गया कि महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार नहीं होना चाहिए और राजनीति में उन्हे बराबरी की जगह मिलनी चाहिए। आज स्वीडन में आधे से ज्यादा महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर महिलाए ही हैं। समाज का उत्थान द्वंद्ववाद के नियम के आधार पर ही चलता है। अभी हमारे यहां राज्यो में महिला आयोग के गठन की बात चल रही है, अगर ऐसे में हम राष्ट्रीय महिला आयोग को दुर्भाग्य मानकर चलेंगे तो इस दुर्भाग्य के विस्तार

के बारे में क्यों सोचेंगे? इसी तरह महिला आयोग की अध्यक्ष का मानना है कि बीजिंग में होने वाला सयुक्त राष्ट्र का चौथा अतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन निरर्थक है और उससे कुछ खास हासिल नहीं होने वाला। उनका कहना है, हर देश की अपनी अलग स्थिति होती है और अधिकतर दिक्कते उन्ही स्थितियो से उभरती है। उनका निदान भी उसी परिप्रेक्ष्य में ढूंढ़ा जाना चाहिए। पहले तो बीजिग महिला सम्मेलन को निरर्थक बताना नकारात्मक सोच है, बल्कि यह एक आहत करने वाली बात भी है। बीजिंग महिला सम्मेलन के आयोजन के पीछे बुनियादी परिकल्पना यही है कि महिलाओं की दुर्दशा के रूप मे भले ही पूरी दुनिया मे अलग-अलग हो, पर उनका मूल एक ही है।

उदाहरण के लिए—सबसे विकसित और धनाढ्य देश अमेरिका मे महिलाओ की स्थिति एक गरीब और अविकसित देश से भी बदतर है। अमेरिकी महिलाओ को अत्यत अमानवीय और डरावनी स्थितियों मे जीना पड रहा है। आर्थिक समस्याओ पर काबू पा लेने के बाद ऐसे कौन-से कारण है जिनके चलते महिलाओ का शोषण होना नहीं रुकता। क्या इसके पीछे सदियो से चली आ रही औरतों के दमन की इच्छा नहीं है? 180 देशों की 25 हजार महिलाएं बीजिंग में मार्केटिंग करने नही आ रही है। वे एक झडे के नीचे जुट रही है। वे भले ही कोई घोषणा-पत्र न जारी कर पाएं, लेकिन यह एकजुटता क्या सबसे बड़ा संदेश नही है। गाधीवादी सोच की मोहिनी गिरि को सामाजिक कार्यों का खासा अनुभव है। वे 1971 में 'वार विडो एसोसिएशन' की सस्थापक अध्यक्षता भी रही हैं। निश्चय ही वे महिलाओं की समस्याओं को नजदीक से समझती हैं। उन्हे यह भी पता होगा कि सिर्फ भावनात्मक सहानुभूति से स्थायी निष्कर्ष नहीं निकलते, जैसे उन्होने कहा कि नैना के हत्यारे को इंडिया गेट पर फांसी दी जाए। लेकिन यहां क्या यह प्रश्न हमारे दिल को नहीं सालता कि क्यो उस महिला को जन्म देने वाली मा उसके शव को पहचानने से इनकार करती रही। नेना की मां क्या यह सब अपनी इच्छा से कर रही है? क्या कोई मां ऐसा कर सकती है? क्या उस पर यह कहने के लिए कोई दबाव नही है? निश्चय ही है और जबरदस्त है। बस, संक्षेप में यही वह बिंदु है जहां से महिला आयोग की जरूरत खड़ी होती है। राजस्थान में साथिन सगठन ने नाममात्र के पैसे मे सैकडो किलोमीटर रेगिस्तान मे पैदल चलकर थोडे समय में अपनी जगह बनाई, तो सिर्फ इसलिए क्योकि वहा महिला को समझने और समझाने वाली एक महिला ही थी—तमाम दाव-पेच न जानने वाली अनपढ।

ऐसे समाजसेवियों से सावधान!

हेमा मालिनी ने भारत की कालजयी नारियों पर एक सीरियल बनाया था। यह दूरदर्शन पर दिखाया गया था। सीरियल का प्रसारण शुरू होने से पहले हेमा मालिनी ने कहा था कि इसे व्यावसायिक लाभ के लिए नहीं बना रही हैं, बल्कि वे इसके माध्यम से देश की स्त्रियों मे प्रेरणा और चेतना का संचार करना चाहती हैं। हेमा मालिनी एक महिला पत्रिका की संपादक भी हैं, जिसकी संपादकीय नीति है महिलाओ को जागरूक करने के बारे में अधिकाधिक सामग्री देना। यह अलग बात है कि यह पत्रिका ऐसी सामग्री ज्यादा देती रही है जो महिलाओं को वस्तु बनाती है। बहरहाल, एक साक्षात्कार में हेमा मालिनी ने कहा है कि उन्होंने देश-भर का दौरा करने (शूटिंग, लोकेशन तलाशने आदि के दौरान) के बाद पाया कि महिलाएं ज्यादातर उनसे उनके रूप-रंग के बारे मे सवाल करती हैं। महिलाओं की जिज्ञासा होती है कि उनके गाल चिकने कैसे हैं या उनकी आखें इतनी बड़ी-बडी कैसे हैं, उनके बाल इतने लबे कैसे हैं, आदि-आदि।

इस बात को आगे पढते हुए आप यह न भूले कि हेमाजी ने यह दावा पूरे देश की महिलाओं के बारे मे किया। हां तो, हेमा मालिनी को महिलाओं की यह एकमात्र समस्या इतनी चुभी कि उन्होने तय किया है कि वे सौंदर्य-प्रसाधन बनाने का कारखाना लगाएंगी और देश-भर की महिलाओं की इस महती जरूरत को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए पूरा करेंगी। हेमा मालिनी महिलाओं की क्या, व्यक्तिगत स्तर पर भी कभी वैचारिक बेचैनी के लिए नहीं जानी गईं। हां, इधर भारत की नारियों वाले सीरियल को लेकर उनकी एक ऐसी छवि जरूर बनी थी, जिससे लगा था कि वह सचमुच महिलाओ के लिए कुछ करना चाहती हैं, लेकिन सौंदर्य-प्रसाधन के कारखाने वाली योजना ने अकल का पल्ला खोल दिया और बता दिया कि वह हैं वही, जो थीं। हेमा मालिनी एक तरफ से हमारे यहां नारी को नेतृत्व देने की दिशा में हो रहे प्रयासो का एक प्रतीक हैं जो बडी-बड़ी प्रेस कॉन्फ्रेंस करके लंबी-लंबी योजनाएं तो बनाते है, लेकिन उनकी आड़ में अपने व्यावसायिक हित ही सोचते हैं।

मध्य प्रदेश में बस्तर के जंगलो मे अकेले दम पर पेड न काटे जाने के

लिए सरकार और पुलिस से भिड़ने वाली महिला को कोई नही जानता, जिसने महिलाओ की एक जुझारू टुकडी बनाकर पेड़ काटने वाले सरकारी दस्तों पर हमला करके उन्हें भागने पर मजबूर कर दिया। उस अनपढ महिला से राज्य के बड़े-बडे मेधावी अधिकारी भी तर्क में हार गए। हां, ऐश्वर्या राय को हर कोई जानता है, जिन्होने मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता के मच पर महिलाओं, बच्चो और मानवता के लिए बडी-बड़ी बातें कीं, या सुष्मिता सेन को ले लोजिए। इन दोनो से पूछा जाना चाहिए कि विश्व महिला सम्मेलन में वे अपने देश की तरफ से क्यों नहीं शामिल हुईं—जैसे भी हो इन दोनों की एक अतरराष्ट्रीय पहचान तो है ही! लेकिन यहां बात सरोकार की आती है, प्रतिबद्धता की आती है। एक तरफ तो सुष्मिता सेन राष्ट्रीय प्रेस क्लब में बैठकर समाजसेवा शुरू करने की कार्ययोजना पर बोलती है और उसी महीने 'सोसाइटी' पत्रिका के कवर के लिए भद्दे ढंग का अश्लील पोज देते हुए फोटो भी छपवाती हैं। इसी तरह एक महिला और हैं—नाम है माधुरी दीक्षित। पाच-दस करोड़ रुपया कमा लेने के बाद इन्हे भी समाजसेवा की सूझी और इन्होने अपनी बहन के नाम से एक हाउसिग कंपनी बनाई है। हेमा मालिनी की तरह माधुरी दीक्षित ने भी पाया कि घर लोगों का सपना है और लोगों को घर मिलना चाहिए। लोगों को घर मुहैया कराना माधुरी की नजर में समाजसेवा है, लेकिन बिहार के लोगों के लिए नहीं, सिर्फ मुंबई के लोगो के लिए! किसे नही पता कि मुंबई में घर से जुडे धंधों में कितनी समाजसेवा होती है और कितना मुनाफा? यह दुःखद है कि मुक्त अर्थव्यवस्था के इस दौर में समाजसेवा भी एक बिकाऊ ब्रांड बन चला है।

इसकी आड में सरकारी टैक्स-फैक्स जो बचते हैं, सो तो है ही, अखबारो-पत्रिकाओं मे जगह भी खूब मिलती है। आरिफ मोहम्मद खान का उदाहरण सामने है। एक समय पूरी दुनिया मे वे महिलाओं के हक की लडाई के पुरोध बन गए थे और अब जब विकलांगो के लिए अपनी बनाई सस्था के टूरिस्टों से जब करोड़ों के लॉकर मिले तो वह ऐसे तर्क देते फिरते रहे जो हास्यास्पद थे। अभी थोड़े दिनों पहले खबर आई थी कि सरकारी क्षेत्र की एक महिला सस्था महिलाओं के कल्याण के नाम पर करोड़ों रुपये डकार गई। इसका परदाफाश तब हुआ जब सरकार ने ही इस संस्था का ऑडिट किया। इस सस्था को तत्काल भंग कर दिया जाना चाहिए था और जांच बैठाई जानी चाहिए थी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। संस्था धडल्ले से चल रही है और खुलेआम वही सब कर रही है।

देवदासी प्रथा के वकील

उडीसा के मुख्यमंत्री रहे जानकी वल्लभ पटनायक ने अपने कार्यकाल के दौरान देवदासी प्रथा को चालू रखने की वकालत की थी। पटनायक का कहना था कि 'देवदासी प्रथा में किसी तरह की कोई कंट्रोवर्सी नहीं है। यह सब अखबारवालों का खडा किया बखेडा है। देवदासियां भगवान को सुलाने के लिए मंदिर के अंदर गाना गाती है तो इसमें क्या गलत है! ईसाइयों के यहां यही सब करने के लिए ननें होती हैं। उन पर रोक की मांग क्यों नहीं उठाई जाती।'

कुछ वर्षों पहले एक 'वैदिककालीन' संपादक ने पटनायक की ही तरह रूपकंवर को जिंदा जलाए जाने को 'पवित्र सती प्रथा' कहकर उसकी तरफदारी की थी, लेकिन जब सैकडो लोगो ने प्रत्यक्ष और पत्र लिखकर इस पर आपत्ति उठाई तो उनकी बोलती बंद हो गई। पटनायक को या तो नन प्रथा के बारे मे ठीक से मालूम नही होगा या उनका कोई पूर्वद्वेष रहा होगा। ईसाई समाज मे ननो की स्थिति हमारे यहां की देवदासी जैसी कतई नहीं है। उनका कार्यक्षेत्र व्यापक होता है और वह चर्च के निर्देश पर समाजसेवा करती है। ननें आपको मिशनरी अस्पतालों में भी मिल जाएंगी, स्कूलों में पढाती मिल जाएंगी, मानसिक विकलागो या अनाथालयों में पूरी जिम्मेदारी संभाले हुए मिल जाएंगी। नन बनने की तमाम कड़ी शर्तें होती हैं, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि कोई नन अपना घर नहीं बसा सकती। पादरी की इजाजत लेकर कोई भी नन जब मरजी अपनी ड्यूटी से हट सकती है। लेकिन प्रायः ऐसा नही होता, क्योंकि इसे ईसाई समाज में अच्छी नजर से नही देखा जाता।

अब हम अपने यहां की देवदासी प्रथा को लें। इस अभिशाप के बारे मे इतना कुछ छप चुका है कि बच्चा-बच्चा इस नरक को समझता है। देवदासियो की शादी नहीं होती। उन्हें मंदिर के भगवान के साथ ही विवाह के बंधन में बांध दिया जाता है। मंदिर के देवता ही आजीवन उसके पति होते है। उनका भोग लगाना, उन्हें रिझाना, उनको सुलाना, उसके आगे नाचना, गाना-बजाना—यह सब देवदासी आजीवन करती है। इसके लिए उसे हर समय सोलहों शृंगार मे रहना

पड़ता है। इस प्रथा के चलते मंदिर के पंडित-पुरोहित देवदासियों का जमकर शारीरिक शोषण करते है। धीरे-धीरे इस शोषण को एक तरह से धार्मिक मान्यता भी दे दी गई और पंडित-पुरोहित को खुश रखना देवदासियों की नियति ही बन गई। आर्थिक कठिनाइयो के चलते देवदासियों की अवैध संतानें भी इन्हीं मंदिरो के शोषण-चक्र का शिकार होती गई—यह एक अलग दर्दनाक कहानी है।

उडीसा के भुवनेश्वर मंदिर, जगन्नाथ मंदिर और कोणार्क मंदिर में यह कुप्रथा ग्यारहवीं सदी से शुरू हुई, जबकि दक्षिण के मंदिरों में यह प्रथा तीसरी सदी मे ही पैर पसार चुकी थी। इतिहासकार प्रोफेसर करुणासागर बेहरा के अनुसार, आदिकाल से देवदासियों के कई वर्ग थे—विक्रीता, भरौत्या, भक्ता, हरुत्ता, अलंकारा। इनमें से पहली विक्रीता वे देवदासियां थीं, जिसके गरीब मां-बाप लडकियों को मंदिर में बेच देते थे। दूसरे नंबर की भरौत्या को मंदिर मे झाड़-पोंछा आदि के लिए रखा जाता था। वे मंदिर में देवता के सामने नाच-गा नहीं सकती थीं। भक्ता वे खूबसूरत लड़कियां होती थी जो शौक मे अपने-आप मंदिर मे नाचने गाने के लिए राजी होती थीं। चौथी हरुत्ता वर्ग की वे लडकिया होती थी, जिनको अपहरण करके जबरदस्ती देवदासी बनाकर रखा जाता था। खास बात यह है कि अपहरण हमेशा बहुत सुंदर लड़कियों का होता था। अलकारा वे देवदासिया थी जो नृत्य और संगीत मे निपुण होती थीं। अलंकारा का अभिप्राय अलंकरण से है—इन्हे मंदिर का आभूषण भी माना जाता था। मंदिर की ख्याति देवता से कम देवदासियो से ज्यादा होती थी।

उडीसा के पुरी मंदिर की देवदासियां भक्त श्रेणी में आती हैं। इनकी एक खास समारोह 'साड़ीबध' के जरिये देवता से शादी कर दी जाती थी। जगन्नाथ मदिर मे इस भक्त श्रेणी में भी तीन तरह की देवदासियों की व्यवस्था है—भीतरगहनी यानी जो गर्भगृह में गाती है, बाहरगहनी यानी जो बाहर के हाल मे गाती हैं, नचनी जो नृत्य करती हैं। जगन्नाथ मंदिर की (कु)व्यवस्था के अनुसार नई देवदासी वही लडकी बन सकती है जिसको पुरानी देवदासी गोद ले। जगन्नाथ मंदिर से रिटायर हुई बूढ़ी देवदासियों पारसमणि और शशिमणि ने किसी नई लड़की को इस प्रथा के लिए गोद लेने से इनकार कर दिया, क्योंकि वह जो नरक स्वयं भुगत चुकी थीं वह नहीं चाहती थीं कि कोई दूसरी लड़की उसका शिकार बने।

दसवीं शताब्दी में जगन्नाथ मंदिर को बनाने वाले राजा जाजाति ने उसमे इस गदी प्रथा को नहीं घुसने दिया। लेकिन बारहवीं सदी में किसी राजा ने देवदासी प्रथा को स्वीकृति दे दी, उसी तरह जैसे आज उडीसा के मुख्यमत्री (राजा ही

समझो) इसको जारी रखने की वकालत कर रहे है।

लेकिन केवल आंसू बहाने से इन सड़ी-गली मान्यताओ के बांध नही टूटने वाले है। कोई पटनायक या राजनीतिक पार्टी इन समस्याओ के प्रति अपना वक्त बरबाद नहीं करना चाहेगा। इसके विरोध के लिए हम औरतों को ही कमर कसनी होगी। 'देवताओ की दासी' बनाकर 'वेश्यावृत्ति' को प्रश्रय देने वाले इस समाज की वहशी हरकतों को उघाड़ने के लिए हमें उठ खडा होना चाहिए। दासी बनाकर मजा लूटने वाला वर्ग स्वयं क्यों चाहेगा कि उसके भोग की वस्तु आसानी से हाथ से निकल जाए!

पटनायक ने पत्रकारों से कहा 'आप जगन्नाथ मदिर की देवदासी का भजन सुन लें तो आपकी आंखों में आंसू आ जाएगे।'

मेरा यह कहना है कि अगर मि पटनायक किसी देवदासी के साथ हुए बलात्कारों की कहानी सुन लेते तो बिना भजन सुने ही आखों में आसृ आ जाएंगे।

विश्व महिला सम्मेलन में असमानता

ओलंपिक खेलों के शपथ पत्र मे लिखा है—'हम दुनिया-भर के खिलाडी जाति-नस्ल-वर्ण से ऊपर उठकर शपथ लेते हैं. .' इसके आगे चुने हुए शब्दो का एक पूरा पैराग्राफ है, जिसमे विश्व-शांति, आपसी सद्भाव, मैत्री भावना आदि को बढाते रहने की बात है।

अब इसकी सच्चाई देखिए कि इतने ओलपिक हो जाने के बाद भी आज चार दर्जन से ज्यादा इस्लामिक देशों की करोडों महिलाएं इन खेलों मे शिरकत नही कर सकतीं, क्योंकि इस्लाम धर्म महिला खिलाडी को वे कपड़े पहनने की इजाजत नहीं देता जो किसी एथलीट के लिए जरूरी हैं। सैकड़ो बार इस प्रसंग को लेकर प्रदर्शन किए गए, लेकिन ओलंपिक सघ ने इसको हर बार नकार दिया और आज तक नकार रखा है। सोचिए, जाति-नस्ल या वर्ण से ऊपर उठकर सैकडों बार शाब्दिक शपथ दोहराने का क्या मतलब है, जब हर बार हजारो प्रतिभाशाली महिला एथलीट अपने साथ हो रहे लगातार भेदभाव से छटपटाकर रह जाती हैं।

ओलपिक संघ के अध्यक्ष रह चुके समाराच मानते हैं कि सिर्फ इसलिए तमाम महिलाओं को ओलपिक से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि वे कट्टर इस्लामिक देशों से हैं। लेकिन अपने समय में व्यावहारिक रूप से कोई कदम समारांच ने भी नहीं उठाया, क्योंकि अमेरिका सहित तमाम पश्चिमी देशो के इस्लामिक तेल निर्यातक देशों से व्यावसायिक हित सधते है और वह उन्हें नाराज नही करना चाहते।

इसी संदर्भ में चीन की उस दादागिरी को भी देखा जाना चाहिए, जिसने तिब्बती महिलाओं को विश्व महिला सम्मेलन में भाग लेने से रोक दिया। संयुक्त राष्ट्र की देखरेख मे हो रहे इस सम्मेलन के तमाम घोषणापत्रों में बडी-बड़ी बाते होंगी, लेकिन क्या वे इस एक अन्याय से लड सकेंगी। तमाम बड़े देशों की महिला प्रवक्ताओं ने तिब्बती महिलाओं को चीन द्वारा वीजा जारी न किए जाने के इस विवादास्पद (?) मुद्दे पर टिप्पणी करने से इनकार कर दिया, वहीं कई

ने इसे राजनीतिक मामला माना है, जिसका महिलाओं के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन की सफलता पर खास फर्क नही पड़ेगा।

बीजिंग मे दुनिया-भर से जुड़ी महिलाओं ने अपनी एकता के प्रतीक स्वरूप 20 किलोमीटर लंबा बैनर बनाया। यह बैनर चीन की दीवार पर लगाया जाएगा। इसमें संदेश लिखा जाएगा—'नारी ने इस दुनिया को एक सूत्र में पिरोया है।' लेकिन हजारों निर्वासित जीवन बिता रही तिब्बती महिलाएं इस सूत्र से गायब रहेंगी। कोई उनकी बात नहीं करेगा, उनके हक के लिए कोई पर्चा नहीं पढा जाएगा, क्योकि चीनी सरकार ने साफ धमकी दी है कि वह अपने खिलाफ कोई विरोध-प्रदर्शन बरदाश्त नहीं करेगी। अकेले तिब्बत ही नहीं, चीन ने ताइवान की महिलाओ को भी वीजा देने से साफ इनकार कर दिया है। इतनी ही नही, नाइजीरिया की महिला प्रतिनिधि सिर्फ इसलिए इसमें भाग नहीं ले सकेंगी, क्योकि नाइजीरिया ने ताइवान को मान्यता दी। यही कारण था कि उनका वीजा भी चीन ने रद्द कर दिया।

विश्व महिला सम्मेलन नारियों के अधिकार तथा संसार-भर में अन्याय के खिलाफ उनकी एकजुटता को लेकर है, लेकिन ओलंपिक आयोजन की तरह इसमें भी शर्मनाक भेदभाव हो रहा है और सारी दुनिया चुप है। काहिरा का विश्व जनसख्या सम्मेलन, कोपनहेगेन का विश्व सामाजिक सम्मेलन या रियो-जेनेरियो के विश्व पर्यावरण सम्मेलन ने भले ही कोई खास उम्मीद न बांधी हो, लेकिन ऐसा भेदभाव हुआ हो— याद नहीं पडता। यहा तक कि इन तीनों सम्मेलनो में इराक आमंत्रित था (उसने भाग नहीं लिया यह अलग बात है)। प्रश्न उठता है, यदि चीन की शर्तों पर ही विश्व सम्मेलन होना है तो हम उससे किस खुलेपन या न्याय की आशा करें?

क्यों नहीं संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व सम्मेलनों को दो देशों की आपसी राजनीति से बचा पाता? वह पहले से ऐसी कोई व्यवस्था क्यों नहीं सोचता जो ऐसे सम्मेलनों को इन छोटे-छोटे धब्बों से बचा सके। सुना जा रहा है कि पाकिस्तानी प्रधानमंत्री चार तारीख को पाकिस्तान की महिलाओं की दुर्दशा पर नही, कश्मीर के बारे में कुछ कहेंगी। भारत ने अगले दिन मुहतोड जवाब देने की तैयारी भी कर रखी है, लेकिन क्या यह सब इसका मच है? विश्व मे महिलाओं की दुर्दशा और उस पर हुए अत्याचारो के आंकडो से पोथन्ने के पोथन्ने भरे पड़े हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की तटस्थ रिपोर्ट भी महिलाओं के आंसुओं से तर है। हालत यह है कि इस चौथे विश्व महिला सम्मेलन का एक-एक मिनट भी

महिलाओं की लडाई के लिए कम है और ऐसे में विषय से हटकर मुद्दे बिखरना कितना दुःखद है, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। देखना है कि क्लिंटन तिब्बत, ताइवान और नाइजीरिया की महिलाओं के लिए क्या कहती

दृष्टव्य है कि ताइवान को अलग देश की मान्यता सबसे पहले अमेरि ने दी है, लेकिन उनका वीजा नही रद्द हुआ। उनका वीजा कौन रद्द करेगा?

दोहरी और बचकाना दलीलें

उत्तर प्रदेश की महिला मामलों की एक मंत्री ने जनवरी महीने के अपने एक भाषण में काफी तेजी से एक तर्क रखा कि औरतों में बरदाश्त करने की क्षमता कम होने के कारण ही आत्महत्याओं में बढ़ोतरी आ रही है। सीबी-सीआईडी के महिला प्रभाग व यूनीसेफ द्वारा आयोजित एक विशेष सेमीनार 'औरतों व बच्चों के खिलाफ हिंसा व पुलिस की भूमिका' पर उन्होंने आगे कहा—'सभी आत्महत्याए दहेज के कारण नहीं होती, केवल 10 प्रतिशत हत्याएं ही दहेज से संबंधित होती है।'

उनके इस वाहियात तर्क का तात्पर्य शायद यह रहा होगा कि 90 प्रतिशत आरोप मनगढ़त होते है, जबकि पुलिसिया आंकड़े स्वीकारते हैं कि दहेज हत्याओं के मामले में यह प्रदेश नंबर वन है। देश के उत्तरी इलाकों मे दहेज के लिए मारी जाने वाली औरतों की तादाद को देखते हुए शायद कहा जा सकता है कि यह औरतों का दुर्भाग्य है कि देश के जिस प्रदेश का व्यक्ति प्रधानमंत्री जैसे जिम्मेदार पद पर सुशोभित है, वहां औरतों को 2348.6 प्रतिशत सेक्सुअली सताया जाता है। क्या ऐसा भी इसीलिए होता है कि औरतों की बरदाश्त करने की क्षमता कम हो चुकी है! औरतों को कितना और कैसा दुर्व्यवहार सहना चाहिए क्या अब इसकी सीमा खींची जाने की जरूरत है?

मंत्री महोदया की समझ पर शक होना इसलिए लाजमी है क्योंकि असलियत उनके बयान से एकदम उलट है। असल में तो बहू को जलाकर मार चुके ससुराली प्रायः इसीलिए बच जाते है कि कन्यापक्ष अपनी बच्ची की मौत पर इतना आहत और दुखी होता है कि वह पुलिस-कानून आदि के चक्कर में पड़ना ही नहीं चाहता। दूसरे शहर के निवासी होने पर, आर्थिक रूप से अक्षम होने पर भी परिवार बदले की भावना से कुछ न करने का निर्णय ले लेता है। एक तो लंबी कानूनी प्रक्रिया उस पर भी कई दफा न्याय न मिल पाने का भय उन्हें इतना सालता है कि वे चुप्पी मारकर घर बैठना ही बेहतर समझते हैं।

औरतों को दहेज के लिए जिस बर्बरता से जिंदा जला दिया जाता है, वह

किसी सभ्य समाज की निशानी नहीं है। हमारी सामाजिक व्यवस्था मे दहेज लेना-देना इतना रच-बस चुका है कि इसके विरोध के स्वर दबे ही रह जाते हैं। कर्ज लेकर, जमीन-जायदाद बेचकर और अपनी सारी जमा-पूंजी बेटी के दहेज मे चुकाकर भी उसके भविष्य के प्रति मां-बाप प्रायः अनिश्चित ही रहते है। मुह फाड-फाडकर दहेज निगलने में माहिर ससुराली प्रायः इतने पर भी अपनी दरिद्रता दर्शाते रहते है और वे घर आई नई-नवेली दुल्हन को तानों, मार-कूट और उलाहनों से इतना सताते हैं कि वह अपने मायके पर दबाव बनाने लगती है। कुछ मायकेवाले यह भूख भी मिटाते है पर कुछ आर्थिक रूप से इतने लाचार होते हैं कि अपनी बेटी की जान जोखिम में समझते हुए भी मूक रह जाते हैं। अंततः शेरदिल ससुराली बिना किसी डर या झिझक के एक नई-नवेली दुल्हन को जिंदा मार डालते हैं। कुछ चालू टाइप के ससुराली इस मारने की प्रक्रिया से दूर रहकर ऐसे हथकंडे अपनाते हैं कि नवविवाहिता खुद को असहाय मान लेती है। अकेलेपन, असुरक्षा और भविष्य के प्रति आशंकित संवेदनशील लडकियां नए घर नए माहौल में इस तरह के तानो और दुर्व्यवहार से मानसिक अवसाद का शिकार हो जाती है। चूंकि नए घर में वह एकदम अकेली होती है, इसलिए पलायनवादी होकर कई दफा वह घबराहट में अपनी जान खुद दे देती है।

लडकी की शादी के लिए प्रायः मां-बाप को इतनी जूतियां चटखानी पडती है कि एक बार लड़की विदा करके वे गंगा नहाने चले जाया करते हैं। ऐसे मे यदि लड़की लौट आए तो सामाजिक, पारिवारिक दुर्दशा होने के अलावा भारी आर्थिक क्षति बरदाश्त करनी पडती है। चाहते हुए भी तमाम लड़कियां अपने असुरक्षित भविष्य के भय से ससुरालियों की मार-प्रताड़ना बरदाश्त करने को मजबूर हो जाती है। जब बरदाश्त की यह हद गुजर जाती है तब वे आत्महत्या कर समस्या की जड ही खत्म कर लेती हैं। उस पर भी हजारों ऐसे लोग हैं जो अपनी बेटी खोने के बाद किसी तरह के लफडे मे नहीं पड़ना चाहते। वे कहते है कि कानून मेरी बिटिया तो वापस नही कर देगा। जान-माल दोनों की क्षति बरदाश्त करके ये लोग मुंह सिए क्यो रह जाते हैं? क्योंकि ये पुलिस के पचड़े में नही पडना चाहते। इस पर भी मंत्री का यह कहना कितना बचकाना और गैरजिम्मेदाराना है कि केवल 10 प्रतिशत औरतें ही दहेज के कारण आत्महत्याएं करती हैं। क्या केवल शारीरिक प्रताडना ही काफी है, मानसिक प्रताड़ना का आत्महत्या से कोई सबध नहीं होता? क्या यह समझने वाली बात नही कि पुलिस के सामने जाने से पहले कितनी औरते यौन प्रताड़ना पर विचारती होंगी? हमारे इस समाज मे आज

भी औरतों का एक वर्ग ऐसा है जो अपने पति तक से यौन चर्चा करने में कतराता है, फिर पुलिस के सामने, उनके जायज-नाजायज सवालों का जवाब देना कितना कष्टकारी होता है— यह सोचने वाली बात है।

समाज की गदगी को साफ करने की बजाए उस पर फूलदार चादर डालने के इन प्रयासो से बचना इसलिए जरूरी होता जा रहा है कि इसी प्रदेश में होने वाला हर चौथा बलात्कार हवालात मे होता है। जब पुलिस की नाक के नीचे यह हाल है तो बाकी इलाकों की स्थिति का अंदाजा खुद ही लग जाता है। अपनी गलतियां छिपाने या उन्हें मानने की बजाए यदि इसी तरह के तर्क चालू रहे तो एक दिन औरतों के लिए असुरक्षित हो चला यह प्रदेश औरतो के लिए तरसेगा, क्योंकि कब तक लुटती-पिटती औरत यह बरदाश्त करती रहेगी? आत्महत्याओं, बलात्कारों, अपहरणों, वेश्यावृत्ति, भ्रूण हत्याओं और कम उम्र की लडकियो की खरीद-फरोख्त में बढती तेजी किसी जिम्मेदार व्यक्ति को क्यों नहीं झकझोरती? क्यों औरतों के प्रति होने वाली इस हिंसा से कान मूंदे, जुबान दबाए सब लोग अपनी संवेदनशीलता पर सवार, आंखें सेकते जा रहे हैं? जिस समाज में जिम्मेदार लोग ही ऐसे 'दोहरे', 'बचकाने' और बचाव-भरे जवाब देंगे, उस समाज की औरतें कितनी असुरक्षित होती जाएगी! औरतो का जीवन सरल हो सके, ये बड़ी-बडी बाधाए उनका जीवन मौत से जूझने जैसा न बना पाएं, इसके प्रयास कोई सरकार कर पाती नजर नहीं आती। शायद यह बीडा स्वयं औरतों को ही उठाना पड़ेगा, आगे चलकर।

पहले जीने का हक दो

बिहार के कटिहार जिले की डुकनी देवी हर महीने 6 या 7 बच्चो का जन्म करवाती है। डुकनी दाई है। वह इन बच्चों मे से लडकियों को मार डालती है। प्रत्येक कन्या शिशु को मारने के एवज में उसे 50 रुपये मिलते है। डुकनी की उम्र 60 साल की है और वह अकेले अब तक सैकडो बच्चियों को मार चुकी है। डुकनी डायन इसलिए नहीं है, क्योंकि इन बच्चियो के मां-बाप उसे इस काम की फीस देते है। फिर भी डुकनी बच्चियों को प्यार करती है, इसलिए कोशिश करती है कि वह उन्हें इस तरह मारे कि प्राण निकलने मे तकलीफ न हो। लदन से निकलने वाले 'दि टाइम्स' की संवाददाता कैरोलीन ली के सामने उसने अपने काम का 'डिमांसट्रेसन' किया और बालू से भरे एक झोले में फंदा लगाकर उसने दिखाया कि वह इस वीभत्स कांड को कैसे अंजाम देती है। बहुत दुखी मन से डुकनी ने माना कि मेरा दिल कभी नहीं करता कि मैं अपने हाथ से फूल-सी बच्चियों को मौत के घाट उतारने का यह राक्षसी काम करूं लेकिन मैं क्या करू, मेरे पास कोई दूसरा काम नहीं है। मुझे अपना परिवार चलाने के लिए पैसा चाहिए।

बिहार में इस नृशसता पर कोई आश्चर्य नहीं है। क्रूरता वहां के सामान्य जनजीवन का एक हिस्सा बन चली है। डुकनी अनपढ़ है और वह दूरदराज के पिछड़े क्षेत्र मे ऐसा कर रही हो, ऐसा नहीं। बिहार के कस्बों और शहरों मे भी पढी-लिखी डुकनिया हैं। यूनिसेफ के पैसे से चलने वाली एक गैर-सरकारी संस्था अदिति ने 85 मिडवाइफो से बातचीत की तो पता चला कि वे डुकनी से अलग नही हैं। इन 85 मिडवाइफों ने स्वीकारा कि वे हर महीने कम से कम 4 बच्चियो की हत्या करती है। लेकिन उनका यह भी मानना है कि यह उनकी मजबूरी है। प्रसूति कक्ष के बाहर बच्चियो के पिता घूस देते हैं और गिडगिडाते हैं कि अगर बिटिया पैदा हो तो बाहर आकर कह देना कि वह मरी हुई पैदा हुई। डिलीवरी रूम से बाहर आकर यदि लड़का होने की खबर दी तो बख्शीश के रूप में 50 रुपये मिलते है। इसके एकदम उलट यह बताने पर कि लड़की हुई है, कुछ नहीं मिलता। हा, अगर यह कह दो कि लडकी हुई है और मरी हुई तो सौ रुपये तक मिल जाते हैं।

40 वर्षीय अदिला देवी जो पिछले 15 वर्षो से मिडवाइफ है, कहती है कि अगर वह पिता से उसकी बच्ची को मारने के लिए इनकार करती हे तो बदले मे उसे धमकी मिलती है। कई बार इन दाइयो को इस बात के लिए पीटा भी गया, क्योंकि उन्होंने लड़की मारने से इनकार कर दिया था। अदिला देवी ने बताया कि एक बार मैंने ऐसे ही एक स्वस्थ किलकती बच्ची को उसके पिता से घर ले जाने के लिए कहा तो वह (बाप) अदर प्रसूति-कक्ष मे घुस आया और खुद ही बच्ची को मारने लगा। एक बार तो सारी कोशिशों के बाद भी बच्ची नही मरी, बार-बार उसका गला घोटा जाता रहा, लेकिन उसकी सांस बार-बार लौट आई।

बिहार मे जन्म-मृत्यु का रिकार्ड रखने का कोई सरकारी रजिस्टर नही है लेकिन ये दाइयां ही थोड़ा-बहुत हिसाब रखती हैं, जैसे—एक मा ने 14 साल की उम्र से 32 वर्ष तक 3 लडको और 12 लड़कियों को जन्म दिया, जिनमे से 10 लडकियो को उसने अपने हाथ से मार दिया। दहेज सिर्फ बिहार की ही नहीं पूरे हिंदुस्तान की त्रासदी है, जो घटने की बजाए और फैलती ही जा रही है लेकिन बिहार में सिर्फ दहेज ही बच्चियों की हत्या का कारण नहीं है। आपसी जातीय सघर्षो या बिरादरी में पगडी-नाक के लिए लड़की को एक समस्या माना जाता है और बिहार का हर आदमी इस समस्या से निजात पाना चाहता है। इसके चलते बिहार में महिलाओं का प्रतिशत बहुत नीचे जा चुका है, लेकिन सरकारी तबके मे किसी को इसकी आहट नहीं है।

विदेशों मे अभी तक भारत की छवि मदारियों या सपेरों के देश के रूप में भले ही थी, लेकिन इसे करुणा और शांति का देश माना जाता रहा है। मीडिया की मेहनत और संस्थाओं की सक्रियता ने अपने देश का असली चेहरा उघाड़ना शुरु कर दिया है। अकेले बिहार ही नहीं, इस तरह की क्रूरता में राजस्थान, बिहार से भी आगे है। सरकार के पास बच्चियों के साथ हो रही बर्बरताओं के आंकडे भी हैं और तसवीरें भी लेकिन इसमें कोई कमी आती नहीं दिखती। विश्व महिला सम्मेलन के ठीक पहले 'न्यूज वीक' पत्रिका ने राजस्थान में दुधमुंही बच्चियो के एक ऐसे ही रेतीले कब्रिस्तान के रोंगटे खडे कर देने वाली तसवीर छापी। यहां बच्चियों को मारकर नहीं, जिंदा दफन किया जाता है।

अंत में महिला आयोग से एक लाचार सवाल कि नौकरियों में महिलाओं को 80 प्रतिशत आरक्षण आपने दिलवा भी दिया तो क्या, जब महिलाएं जिंदा ही नही बचेंगी!

'5 हजार लगाओ, 50 हजार बचाओ'

महिलाओं के साथ अत्याचार के अतीत पर एक नजर डालें तो सती प्रथा शायद सबसे क्रूर तरीका रहा है। कोई सोच नहीं सकता कि सती प्रथा खत्म होने के इतने दशकों बाद महिलाओं के नष्ट करने का उससे भी भयानक तरीका यह समाज खोज लेगा। पंजाब में अल्ट्रासाउंड मशीन लगाए एक डॉक्टर ने अपने बोर्ड पर लिखा था '5 हजार लगाओ, 50 हजार बचाओ।' बी बी सी. ने कई बार भारत मे मादा भ्रूण नष्ट किये जाने के विषय पर डाक्यूमेंट्री फिल्मे दिखाई हैं। आजादी के बाद से इन सालो में महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों के अनुपात में लगातार घटता जा रहा है और सभी के एकमत होने के बावजूद, दो-तीन राज्यों को छोडकर, अभी किसी भी राज्य सरकार ने इस पर कानून बनाने की जरूरत नहीं समझी। इस बारे में अगर दोषियो की लिस्ट बनाई जाए तो उसमे महिला आयोग का नाम सबसे ऊपर होगा।

1992-93 के दौरान आयोग द्वारा जारी किए गए प्रतिनिधियों के पर्चे पर एक नजर डाले तो हम पाते हैं कि यह विषय उसकी प्राथमिकता मे नही है। हर वर्ष दो-तीन सरकारी सेमिनार हुए हैं जो कुछ असर नही डाले सके। महिलाओं के लिए समानता के विषय पर तमाम परिचर्चाए होती रहती हैं, लेकिन इस पर कोई आक्रोश नहीं दिखाई पड़ता कि महिला असमानता का पहला शूल इस दुनिया मे आने से पहले ही क्यों झेलती है।

दिल्ली में तंदूर कांड चर्चा में रहा है इसलिए पंजाब मे उस अल्ट्रासाउड वाले कसाई डॉक्टर पर किसी का ध्यान नहीं गया सिवाय एक-दो पाठकों की अखबार में छपने वाली चिट्ठी को छोड़कर। एक और ऐसे ही डॉक्टर का कहना है कि कानून हमारे काम में बाधा नही डाल सकता, क्योंकि मादा भ्रूण गिरवाने का फैसला सहमति से होता है, दो-एक राज्यो में जहां यह कानून बन गया है, वहां लडका या लड़की के अपने विज्ञापनों में आगे स्वस्थ शब्द जरूर दिया जाता है। यह कारोबार बेहद भयानक है। डॉक्टर पैसे लेकर कई अनपढ़ गर्भवती माताओं को कप्यूटर के स्क्रीन पर गर्भ का चित्र दिखाते है। करीब 30 प्रतिशत

अनुमान गलत साबित होते हैं, नतीजतन 'श्रेष्ठ' नर भ्रूण भी मारा जाता है। ज्यों-ज्यों कस्बो और गांवो में थोड़ी आर्थिक समृद्धि आई है, वहा अल्ट्रासाउंड करवाने की यह प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है। बहुत से डॉक्टर जिनकी डॉक्टरी नहीं चल पायी वो अल्ट्रासाउंड मशीन रखकर बैठे यह धंधा चला रहे हैं।

एक और बेशर्म डॉक्टर का कहना है कि सरकार इस पर पूरी इच्छा-शक्ति के साथ कानून इसलिए नहीं बना रही, क्योंकि यह कृत्य जनसंख्या नियन्त्रण का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है।

प्रतिवर्ष लाखों मादा भ्रूण नष्ट होने से समाज में महिलाओं की संख्या घटने के कारण प्रति 1000 में से 170 लोग अविवाहित रह जाते हैं और बलात्कारों का एक न रुकने वाला अंतहीन सिलसिला शुरू हो जाता है। चीन भी इस समस्या से त्रस्त है। बलात्कार पर आप चाहे फांसी देने का कानून बना दें, लेकिन हम इसे कभी नही रोक सकते, यदि महिलाओं का अनुपात इसी तरह घटता रहा।

कौन नहीं जानता कि मादा भ्रूण मारने वाले डॉक्टर हर गली में मौजूद है मगर कोई इन पर हाथ नहीं डालता। सरकार के तो कहने ही क्या, लडकिया मरें या पूरी औरत जात का सफाया ही हो, उसे तो केवल वोट चाहिए जो नर या मादा नहीं होते, बस गिनती के वोटर होते हैं।

आठवीं योजना मे महिलाओं की सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास को लेकर तमाम प्रावधान है, लेकिन इस अमानवीय हरकत को रोकने का कोई प्रावधान क्यो नहीं है? महात्मा गाधी ने कहा था—हमारे समाज में स्त्रियो को गुलामो की तरह जीना पड़ता है और उन्हे यह भी नहीं पता चलता कि वे गुलामों का जीवन जी रही हैं। जो डॉक्टर यह कहते हैं कि मादा भ्रूण सहमति से गिराया जाता है, वे सरासर झूठ बोलते हैं। दरअसल यह गुलामी का चरम है जहां औरत के पेट को फ्रिज समझा जाता है।

थोड़े दिन पहले दिल्ली के राष्ट्रीय अखबार ने सर्वे द्वारा जानना चाहा था कि महिलाएं व पुरुष अगले जन्म मे क्या होना चाहते हैं। समाज के ऊंचे तबके की तमाम महिलाओं और छात्राओ ने अगले जन्म में महिला ही होना चाहा। 97 प्रतिशत से ज्यादा महिलाओ ने कहा, उन्हें अपने महिला होने पर गर्व है। वे अगले जन्म मे भी महिला ही होना चाहेंगी। अब बताइए, कोई महिला अपनी गर्भ की बच्ची क्यों गिराना चाहेगी!

दरअसल महिला भ्रूण को नष्ट करना सिर्फ एक हत्या समझा जाता है, जबकि इसके साथ कई बड़े अपराध जुडते है और यह पुरुष द्वारा औरत के गुलाम

बनाए जाने का सबसे बडा सबूत है। उसी पंजाब में उस डॉक्टर ने तख्ती लगा रखी है जहा बहुमत में सिख रहते हैं और सिख धर्म में महिलाओं को बाकी धर्मो की तुलना मे ज्यादा सम्मान दिया जाता है। '5 हजार लगाओ, 50 हजार बचाओ' की तख्ती पूरे समाज के माथे पर लगी है और इस कलक को बिना परेशान हुए देख रहे है—महिला कांग्रेस, महिला आयोग, महिला समाज कल्याण बोर्ड, दुर्गावाहिनी और महिलाओ के नाम पर खाने-कमाने वाले तमाम संगठन!

यह विज्ञापित शोषण ही है

रात के दस बजे रहे हैं। पति आराम से धुला कुरता-पायजामा पहने साफ-सुथरे बिस्तर पर जम्हाइया ले रहा है। पत्नी बाल बिखराए पसीने से लथ-पथ अपनी धोती कमर मे खोंसे, चूड़ियां चढाए है। इसके बाद गंदे बरतनों का क्लोजअप जो चिकनाई ज्यादा होने के कारण साफ नहीं हो रहे हैं।

अलग दृश्य— पति बिस्तर पर पत्नी का इतजार करते-करते सो जाता है।

यह एक वाशिग पाउडर बनाने वाली कंपनी का विज्ञापन है जो टी वी पर प्राइम टाइम पर रोज आता है। वाशिंग पाउडर, तेल आदि बनाने वाली लगभग सभी कंपनियां रोजाना ऐसी ही लुटी-पिटी तसवीर पेश कर रही हैं। खैर, वाशिंग पाउडर की बिक्री बढ़ती हो या न बढती हो, लेकिन एक गंदा संदेश देश-भर के घरों में जाता है, वह यह कि बरतन माजने का काम पत्नी का है। जिन लोगों को 'नारी-मुक्ति' शब्द से नफरत है, मुझे नहीं पता वे इस विज्ञापन के समर्थन मे क्या तर्क देगे, लेकिन सभी पत्र-पत्रिकाओं से लेकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मे दिखाए जाने वाले सीरियलों या विज्ञापनो में चौका-बरतन, झाड़ू-पोछा, कपडे धोना, बच्चो की देखभाल के सारे काम महिलाओं के मत्थे मढना किस संस्कृति को दर्शा रहा है?

'टाइम्स ऑफ इंडिया' के रिव्यू सेक्शन में प्रकाशित एक लेख के अनुसार, अमेरिका में 45 प्रतिशत महिलाएं प्रबंधन के क्षेत्र में कुशलतापूर्वक काम कर रही हैं और बडी कपनियां पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को प्रबंधन के क्षेत्र में वरीयता दे रही हैं। जबकि अपने यहां हम यदि कपडे धोने के काम को आसान बनाने के लिए वाशिंग मशीन बनाते हैं तो उसके भी रख-रखाव की जिम्मेदारी महिला के हिस्से है, क्यों?

यदि महिलाएं बराबर के स्तर पर आउट-पुट दे रही हैं तब होड़ के इस युग में घरेलू काम अकेले वह ही क्यो करें? कुछ पुरातनपथी घर में खटने की इस लीला को परिवार के सस्कारों से जोड़कर महिला को महान् भारतीय नारी का खिताब दे देते है, जबकि यह सीधा भावनात्मक शोषण है और हमारे संचार

माध्यम इस कुसगति को रोकने की बजाय फैला रहे है। टी वी. में आने वाले लगभग 300 विज्ञापनों में से 200 से भी ज्यादा में औरत कपडे धोते दिखाई जा रही है, रोटी बनाते दिखाई जा रही है या पोछा लगाते दिखाई जा रही है और विज्ञापनो की जांच करने वाली सरकारी एजेंसी चुप है, क्योंकि इस सरकारी एजेंसी के क्राइटेरिया मे कोई विज्ञापन तभी गलत है जब वह उत्पाद के सिलसिले मे भ्रामक जानकारी दे रहा हो। महिला का एकतरफा शोषण इस क्राइटेरिया मे नही आता।

टी वी. पर आने वाले कई सीरियलो में बार-बार पत्नियां अपने पति की आरती उतारते दिखाई जाती हैं और अपना छिपा कुसंदेश दे जाते हैं कि पति परमेश्वर है। पति जीवनसाथी है लेकिन परमेश्वर नही। सिर्फ आर्थिक कारणो से वह स्वयंभू बन जाता है। यही बात भारत की महिलाओं (खासकर मध्यमवर्गीय) के दिमाग में बैठाने की जरूरत है। टी.वी. आने के बाद लगा था कि महिलाओ मे यह चेतना अब लाई जा सकेगी। 'रजनी' जैसे सीरियल के माध्यम से एक अच्छी शुरुआत भी हुई और उसका व्यापक असर देखने में आया। महिलाओं को घर के काम नही करने चाहिए—ऐसा नहीं है, लेकिन महिलाओ को ही घर के काम करने चाहिए—ऐसा भी नहीं है। एक कामकाजी महिला भी दफ्तर मे पुरुष की तरह ही शारीरिक-मानसिक दबाव झेलती है, लेकिन घर की जिम्मेदारियो से उसे कोई छूट नहीं मिलती।

यदि उसे बच्चों को क्रेच में भी छोडना होता है तो उनके कपडे, खाना, दूध, खिलौने से लेकर उनके लाने-ले जाने की कसरत भी उसे ही करनी पडती है। घर मे यदि दूसरे सदस्य भी है, तो उनकी और परिवार के बुजुर्गो की दवा से लेकर उनकी चिडचिड़ाहट सब उसके ही हिस्से आती है।

जो मामूली काम लगता है, लेकिन मामूली है नहीं। कुछ लोग इसे इस बात से भी जोड देते हैं कि महिलाओं को परिवार के इन कामो में खुशी मिलती है, जबकि वह दोहरे शोषण का शिकार बनते-बनते अशक्त और चिड़चिड़ी हो जाती है। इस समस्या को किसी आंकड़े से नही बताया जा सकता, लेकिन इस पर संचार माध्यमों को गंभीरता से सोचना चाहिए।

सत्ता में औरतों की हैसियत

एक बार फिर महिला संगठन एक पुराने और बेहद महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर एक हुए—दिल्ली में दक्षेस देशों की महिलाओं के संयुक्त मोर्चे ने सत्ता में महिलाओ की लगातार घट रही भागीदारी के सवाल उठाए। बासी आंकड़ों का ताजा उफान यह है कि बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल. भूटान, मालदीव और अपने देश की संसद में महिलाओं की संख्या अधिकतम दस प्रतिशत है।

श्रीलंका और पाकिस्तान, जहां महिलाएं ही सर्वोच्च पद पर रही, वहा स्थिति और भी दयनीय है। श्रीलका मे 4 7 प्रतिशत और पाकिस्तान में 1 8 प्रतिशत महिलाएं ही जनता का प्रतिनिधित्व कर रही है। आकडों से हटकर हम अपने आस–पास या दैनिक अखबारों पर एक नजर डाले तो निष्कर्ष निकलता है कि भारत में जहां महिलाओं के लिए पंचायती राज संस्थानों में 33 प्रतिशत सीटे आरक्षित की गई, वहां घूंघट काढ़े नवनिर्वाचित महिला सरपंचो की हालत और भी गई–बीती हो गई है। पहले वे चूल्हे–चौके, जेठ–देवर, सास–ससुर, मवेशी और हर साल पैदा होने वाली अपनी सतान की देखभाल में ही लस्त थी तो अब उन्हे जाने–अनजाने में तमाम उलटे–सीधे कागजों पर अंगूठा भी लगाना होता है। पति या ससुर जिन्होने उसे कठपुतली की तरह सरपंच का चुनाव जितवाया है, उसी तर्ज पर उसे रबर स्टैंप की तरह इस्तेमाल करने लगे हैं। इससे पुरुष सत्ता को दो सीधे फायदे हुए हैं— अब वह सीधी जवाबदेही से बच सकते है और दूसरा, घर की इज्जत के नाम पर वे सरपच को देहरी के भीतर कैद करने मे भी कामयाब रहे हैं। चलिए, इसे छोड़िए। लवली आनंद बिहार में सासद बनीं, लेकिन उनके पति लवली की हर प्रेम कॉनफ्रेंस मे साथ बैठते और खुद ही अधिकारिक प्रवक्ता का रोल निभाते रहे. पत्रकारों ने इस पर सख्त आपत्ति की तो आनंद मोहन ने लवली को कई बार प्रेस कॉनफ्रेंस से उठकर बाहर चले आने पर मजबूर किया। ऐसा बार-बार हुआ और राजधानी में राष्ट्रीय प्रेस के सामने हुआ।

यहां तक की जिस वक्त लवली सांसद थीं तो टी वी चैनल ने कोई बहस कराई तो सामने की सीट पर किसी मर्द का बैठना तक उन्हे रास न आया। खैर,

जब सवाल पूछा गया तो लवली का सपाट-सा जवाब था—'आप हमसे स्वेटर के डिजाइन या सब्जी के बारे में पूछिए, हम झट बताएंगे।'

लवली ने एक-दो बार पत्रकारो के सवाल का जवाब देने की कोशिश की तो आनंद मोहन ने उसे घुडक दिया। आज भी बिहार के लोगों की नजर मे आनद मोहन की घरवाली एम पी. हो गई। यह एक बानगी है उन आंकडों की असलियत की जो सार्क देशों के महिला सगठनों ने जुटा रखे हैं। लवली की तरह 33 क्या 50 प्रतिशत महिलाएं भी संसद में आ जाएं तो इसका क्या मतलब है?

शरद पवार विधानसभा चुनाव मे पहले महिलाओं को लुभाने के लिए एक खास पैकेज लाए। कहा गया कि महाराष्ट्र के आने वाले चुनाव में 30 प्रतिशत महिला उम्मीदवारो को कांग्रेस टिकट देगी। लेकिन असल मे हुआ क्या? कांग्रेस की जो भी सीटें हैं, उनमें महिला विधायको का कोई चेहरा नजर नहीं आता। हालाकि कांग्रेस ने महिलाओ को काफी वरीयता दी है, लेकिन यह कृपा ज्यादा हे, हक कम। क्या यह गलत है कि कांग्रेस पार्टी अपनी महिला सांसद ममता बनर्जी की सक्रियता से परेशान रही। ससद मे विपक्ष से ज्यादा सवाल ममता बनर्जी और गिरिजा व्यास ने उठाए, लेकिन उन्हें मिला क्या?

राजनीति या सत्ता में महिलाओ की भागीदारी विषय ही दरअसल गलत है। इससे लगता है जैसे महिला कोई विकलांग है और उसे सहारा दिया जाना चाहिए। जबकि सच यह है कि स्वीडन या शायद स्विट्ज़रलैंड की शिक्षा और संस्कृति मत्री ने पूरी दुनिया में अपने काम से अपनी पहचान बनाई है। एक अर्द्धइस्लामी राष्ट्र तुर्की की महिला प्रधानमंत्री ने दो साल के अपने कार्यकाल मे दिखा दिया कि शासन कैसे चलाया जाता है। व्हाइट हाउस मे इस समय सारी महत्त्वपूर्ण प्रवक्ता और प्रेस सचिवों की जिम्मेदारी ज्यादातर महिलाओं के कंधों पर है। कार्ला हिल्स और रॉबिन राफेल ने कूटनीति के मामले में बहुत कुछ सिद्ध करके दिखा दिया। तो ऐसे में सत्ता में महिलाएं सिर्फ इसलिए अनिवार्य न हों क्योंकि वे महिलाए हैं। क्या मतलब है भागीदारी का! अस्पताल में नर्सिंग के काम मे महिलाओं को वरीयता इसलिए दी जाती है कि माना जाता है (है भी) कि महिलाओं में करुणा, सेवा-भावना और समर्पण पुरुषो की अपेक्षा ज्यादा होता है और मरीज को दवा से ज्यादा इन्हीं चीजों की जरूरत होती है। राजनीति पूरे राष्ट्र की नर्सिंग ही है, फिर इसमे जिम्मेदारी की वह बात क्यों नहीं लागू हो सकती जो एक अस्पताल में लागू होती है? मेरी नजर में राजनीति में महिलाओं की जगह के प्रतिशत का प्रश्न ही गलत है। यह महिलाओं की एक लडाई है, जिसे जीतना

ही होगा। इंदिरा गांधी ने उसे करके दिखाया भी है। लेकिन यह महज सिर गिनने के लिए न होकर रह जाए—इस पर चर्चा होनी चाहिए।

सत्ता में महिला का इस तरह आना भी गलत है कि वह अपने चमचों की एक फौज बनाने में जुट जाए। उनके माथे और हाथ पर अपना नाम गुदवाने लगे, जैसे जयललिता करती रही हैं। इस सम्मेलन में इस मुद्दे पर पुरुषों का प्रतिशत बेहतर होता तो और अच्छा होता।

करंजिया और विकी भार्गव में क्या फर्क है?

मुबई में निकलने वाली 'सोमाइटी' पत्रिका में अपने वार्षिकांक '94 में एक चित्र छापा था, जिसमें जाने-माने पत्रकार और संपादक आर. कंरजिया एक निर्वस्त्र युवती के साथ पोज दे रहे हैं। सोसाइटी पत्रिका अभिजात जरूर रही है पर अश्लील कभी नहीं रही, और आर करंजिया देश के शायद एक मात्र ऐसे बिरले पत्रकार हैं जिनका अभिनंदन करने भारत के महामहिम राष्ट्रपति स्वय मुबई गए थे।

करंजिया देश की हर समस्या पर अपने निर्भीक विचारों और बेबाक विश्लेषणों के लिए जाने-माने जाते हैं, लेकिन अस्सी साल की उम्र में करंजिया अपने बेडरूम को सार्वजनिक क्यो करना चाहते हैं—समझ के बाहर है। एक परिचर्चा में निष्कर्ष निकाला गया था कि पांच हजार साल पुरानी हमारी भारतीय सस्कृति पश्चिमी हमले का यह दौर भी झेल जाएगी और विजयी होगी। परिचर्चा में कहा गया है कि जरूरत सिर्फ संचार-माध्यमों के प्रमुखों के सचेत रहने की है। यह गोष्ठी बुद्धिजीवियों और पत्रकारों ने की थी।

तटस्थ होना अपराध में शामिल होना माना जाता है। अश्लीलता और भोंड़ेपन के इस माहौल के सामने सारे बुद्धिजीवी और पत्रकार अपने हथियार डालते जा रहे हैं। कानून को कोसा जा रहा है। यहां तक भी एक बार सहा जा सकता है कि चरम पतन के इस टूटे बांध को समय ही संभालेगा, लेकिन मुट्ठी-भर दिशा दिखाने वाले समझदार और संवेदनशील लोग भी इसमें शामिल हो जाएंगे यह तो सपने में भी नही सोचा जा सकता है। मैं दोहरा रही हूं कि श्री करजिया अस्सी साल के हैं और वह ठस गोविंदा नही हैं।

इससे कुछ दिन पहले ही 'फैंटेसी' पत्रिका के संपादक विकी भार्गव को जेल हुई थी। भार्गव पर यही आरोप था कि उसकी पत्रिका अश्लीलता को भुनाती है। भार्गव का अदालत में तर्क था कि लडकियां उसकी पत्रिका मे स्वयं संपर्क करती थीं। तब भार्गव से कहा गया कि आप तो सपादक थे, क्या आपकी कोई सामाजिक जिम्मेदारी नही बनती कि नासमझ स्कूली लड़कियों को भटकने से रोके। यह लेख लिखे जाने तक यह मामला अदालत में चल रहा था। लेकिन इस

बार वहा विकी भार्गव नहीं आर करंजिया है जो हर बात पर महात्मा गाधी से लेकर आजादी की लडाई के दिनों को याद दिलाते है। विकी भार्गव की फैंटेसी ने स्कूली लडकी का अश्लील चित्र छापा था, लेकिन वह स्वय उस चित्र मे शामिल नहीं था। करंजिया विकी भार्गव से एक कदम आगे हैं और खुद भी अश्लील चित्र मे शामिल है।

यहां यह याद दिलाना जरूरी है कि एक सपादक की जिम्मेदारी एक स्कूल के प्रिंसीपल और एक न्यायाधीश मे भी बहुत ऊंची मानी जाती है। करंजिया का ब्लिट्ज अखबार भी इतने छोटे प्रसार वाला नहीं रहा कि उसे गंभीरता से न लिया जा सके।

खुशवत सिंह से ज्यादा रसिक और ओपन माइडेड पत्रकार शायद ही देश में कोई दूसरा हो, लेकिन याद नहीं पडता कि करंजिया जैसे भोंडेपन में वे कभी शामिल हुए हों, फिर भी खुशवंत सिंह को सबसे ज्यादा आलोचना सहनी पड़ती है। उनकी अश्लीलता और खुलेपन को संभ्रातो द्वारा लगातार गरियाया जाता है। लेकिन करंजिया की इस बेहूदा हरकत पर सभी चुप रहे, क्यों?

इस चर्चा का कोई मतलब नही कि वह करंजिया का अपना निजी मामला है, क्योंकि पत्रिका मे न तो ब्लिट्ज सपादक का कोई लेख है, कोई इटरव्यू और न ही ऐसा कुछ जिसके आधार पर इस माडलिग की एक प्रतिशत भी तरफदारी की गुंजाइश हो। ननी पालकीवाला, सुनीलदत्त, सुनील गवास्कर, अमिताभ बच्चन, आर. करंजिया आदि ये वे गिने-चुने नाम हैं जिन पर मुंबई को नाज है, इनसे ही बार-बार यह अपेक्षा की जाती है कि बंबई कि हिंदी फिल्मों में बढ़ रही हिंसा और अश्लीलता को रोकने के लिए अपने प्रभाव का प्रयोग करें। वरना क्या हम करिश्मा कपूर, ममता कुलकर्णी या गोविंदा से उम्मीद रखें कि वे समाज के बारे में सोचें।

मुंबई और दिल्ली में भी इतना खुलापन आज से नही है। सच बात तो यह है कि नई अर्थनीति ने इन दो महानगरों को गलत कामों का लाइसेस-सा दे दिया है और यही दो शहर इस देश के दो फेफड़े हैं। संचार के अस्सी प्रतिशत माध्यमों के नियत्रक यहीं बसते हैं, पर यह भी सही है कि इन्हीं दो शहरो के थोडे-से सवेदनशील लोग देश की नब्ज पर हाथ रखते हैं और समाज की लगातार समीक्षा करते हैं। अपसस्कृति की इस उलटी गिनती में एक बार तटस्थ रहने को भी नजरअंदाज किया जा सकता है बशर्ते ये लोग इस अधी दौड़ से बचे रहें।

एक तरफ समाज में बूढे-बुजुर्गों के सम्मान को लेकर रोना रोया जाता है

कि युवा पीढी इनकी तनिक चिंता नहीं करती। और दूसरी तरफ, बूढों का यह हाल है।

आर. करजिया को उनकी जिम्मेदारी की याद दिलाना बचकानापन माना जाएगा। बेहतर यही होगा कि वे अपनी इस हरकत के लिए माफी मांगें। वे संपादक हैं, इसलिए प्रेस काउंसिल को चाहिए कि वह उनको तलब करे, मुझे विश्वास है—कुछ होगा।

महिला मस्तिष्क पुरुष मस्तिष्क से श्रेष्ठ है

'औरत की बुद्धि उसकी एड़ी मे होती है', इस पुरुष-प्रिय मुहावरे के लिए यह तगड़ा झटका है--पेनसिलवेनिया यूनीवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने अपनी रिसर्च से यह प्रामाणिक तौर पर सिद्ध कर दिया है कि एक विकसित और स्वस्थ मस्तिष्क में सकारात्मक गुण स्त्री के मस्तिष्क मे पुरुष से ज्यादा होते हैं। यह तो एक वैज्ञानिक रिसर्च है जो आज सामने आई है, लेकिन व्यावहारिक तौर पर भी लडकियां लड़को की अपेक्षा ज्यादा सजग और चैतन्य होती हैं। जैसे जन्म के बाद लडकियां लड़कों की अपेक्षा जल्दी चलती और बोलती हैं।

पाया गया है कि तीन साल की बच्ची भी अपने एक साल के छोटे भाई की देख-रेख संभालकर और जिम्मेदारी से करने की कोशिश करती है। पश्चिम मे अकेले मस्तिष्क पर होने वाला रिसर्च वर्क हमारे यहा के स्वास्थ्य के कुल बजट से ज्यादा है। इसलिए वहां तरह-तरह से तुलनात्मक रूप से मस्तिष्क मे होने वाली क्रियाओं-प्रक्रियाओं को दर्ज किया जाता है। स्त्री-पुरुष के मस्तिष्क के तुलनात्मक अध्ययन में इस बात पर विशेष इलेक्ट्रोड कैट स्कैनिंग कैप की सहायता से हर सवाल या समस्या के जवाब में मस्तिष्क में होने वाले रक्त-प्रवाह के चित्र लिए गए। इन चित्रों से इस बात का अध्ययन किया गया कि मस्तिष्क का कौन-सा भाग कितना सक्रिय हुआ। इस प्रयोग के लिए एक खास रेडियोधर्मी ग्लूकोज दिया गया। इसे पोनिट्रॉन इमीशन टोमोग्राफी कहते है। 'न्यूज वीक' पत्रिका ने अपने एक अंक में इस पूरे प्रयोग को विस्तृत रूप से पेश किया है।

शक्ति हृष्ट-पुष्ट मांसपेशियों में नहीं, मस्तिष्क में होती है। स्त्रियों को हमेशा से शारीरिक शक्ति के मामले में ही कमजोर बताकर उन्हें मानसिक रूप से कमजोर करने की साजिश सदियों से चली आ रही है। प्रगतिशील वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी ने भी अपने एक लेख में इस बात की वकालत की है कि स्त्रियों को चूल्हे-चौके में ही रमना चाहिए, समाज इसी से चलेगा। सिर्फ जोशी ही क्यों? उनकी जैसी संकीर्ण मानसिकता वाले घिसे-पिटे पुरुषों के विचार से

औरत का काम केवल घर सभालना और बच्चे जनना ही रहा है।

लेकिन जरा अपने ही देश की उन लड़कियों के बारे में भी सोचिए जिन्होंने लड़ाकू विमान उड़ाकर अपनी दक्षता को हर तरह से सिद्ध कर दिखाया है। लडाकू विमान उडाना सबसे कठिन काम और क्विक डिसीजन लेने का जोखिम है। और दो साल तक चलने वाले टेस्टों मे लडकियों ने युवक पायलटों की तुलना में नगण्य गलतियां कीं। बताइए, समाज के लिए बेहतर क्या है, इन लडकियों का रोटी बेलना (जो काम हर कोई कर सकता है) ज्यादा बेहतर था या लडाकू विमान उडाने का यह काम जो लाखों में कोई एक कर पाता है।

अभी तक यह माना जाता है कि पुरुषों के मस्तिष्क में दायां सिरीवल अधिक एक्टिव होता है और वे गणित में या कल्कुलेशन आदि में ज्यादा तेज होते है, जबकि है इसका उलटा। शकुंतला देवी ने केल्कुलेशन में आधुनिकतम कप्यूटर को भी पीछे छोड दिया। मस्तिष्क एक पूंजी होती है। इसे हम चाहें तो प्राकृतिक प्रतिभा कह सकते हैं—यह है तेज स्मृति-क्षमता और ठंडे दिमाग से बिना उत्तेजित हुए किसी बात पर सोचना या निर्णय लेना। स्त्री और पुरुषों को जब भावनात्मक प्रतिक्रियाओं के एक जैसे सवाल दिए गए तो देखा गया कि पुरुष मस्तिष्क शारीरिक तौर पर ज्यादा उग्र हुआ, जबकि स्त्री मस्तिष्क मे विश्लेषण पक्ष ज्यादा उत्तेजित दिखा। यह बात भी नई नहीं है। व्यावहारिक तौर पर भी देखा गया है कि स्त्रियों में धैर्य और सहनशक्ति पुरुषों की अपेक्षा कई सौ गुना ज्यादा होती है। अपने किसी प्रतिशोध को लेने के लिए स्त्री अपनी सतान को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाने का सकारात्मक समाधान ढूंढ़ती है, जबकि अपने प्रतिशोध में पुरुष सीधे निपटना चाहता है। प्रायः इस आक्रामकता को पुरुषों का मर्दपना माना जाता है। लेकिन वास्तव में यह मस्तिष्क का अधकचरापन है।

पेनसिलवेनिया यूनीवर्सिटी में स्त्री-पुरुष मस्तिष्क पर लंबे समय से काम करने वाले डॉक्टर क्यूबन का कहना है कि इन प्रयोगो का अर्थ यह नहीं कि यह बस कुछ एक प्राकृतिक सत्य हैं। वास्तव मे मस्तिष्क की क्षमताएं 90 प्रतिशत किए जाने वाले प्रयासों पर निर्भर करती हैं। मस्तिष्क की जैविक उपलब्धियो को सीचने से बेहतर परिणाम संभावित हैं, लेकिन क्या स्त्रियों के साथ ऐसा हुआ?

आप अपनी मां-बहन, पास-पड़ोस या रिश्तेदारी की उन स्त्रियो के बारे मे सोचे जिन्हें आप जानते हैं। क्या उन्हें समाज ने मस्तिष्क की क्षमता को बढाने का एक प्रतिशत भी अवसर दिया। क्या 90 प्रतिशत कोशिश इस बात की नही की गई कि मस्तिष्क की क्षमता को किस तरह मार दिया जाए। रेलवे अपनी

प्रतिदिन चलने वाली साढे सात हजार यात्री गाडियो मे महिला ड्राइवर इसलिए नही रखना पसद करता क्योंकि रेलवे प्रबधन को लगता है कि सौ किलोमीटर प्रति घंटा की गति से भागने वाली शताब्दी एक्सप्रेस को एक औरत कैसे सभाल पाएगी, जबकि लडकियो ने दो हजार प्रति घंटा की गति से चलने वाला लडाकू विमान बखूबी हैंडल करके दिखा दिया।

यह तथ्य है कि स्त्रियो का मस्तिष्क पुरुषो की अपेक्षा एक सौ तीस ग्राम कम होता है, लेकिन यह भी तो तथ्य है कि कम चीज ही बेहतर होती है। नही?

शेखों की मर्दानगी

प्राकृतिक रूप से पुरुष के मुकाबले कमजोर एक महिला को अपनी अस्मिता बचाने के लिए आत्मरक्षा का हक है या नहीं? लगातार तीन महीनों तक सारा बालाबगान को फांसी की सजा दिए जाने का एक इस्लामी अदालत का फैसला दुनिया-भर के सभी बड़े अखबारों के प्रथम पृष्ठ की खबर बना रहा। मानवाधिकार के लिए लड़ने वाले प्रमुख अखबारों (लदन का 'संडे आब्जर्वर' आदि) के अलावा पहली बार कट्टरता पसद देशो से निकलने वाले अखबारो 'अरब टाइम्स', 'कुवैत टाइम्स', 'खलीज टाइम्स', 'गल्फ न्यूज' ने भी इस बहस को चलाए रखा। जिन पाठको को सारा को फांसी की सजा सुनाए जाने का सारा केस नही मालूम है, उनकी जानकारी के लिए सक्षेप में बता दूं।

27 साल की सारा फिलीपीस से संयुक्त अरब अमीरात में रोजी-रोटी की तलाश में आई थी। फिलीपीस मे अपने भाई, माता-पिता की गरीबी उससे नही देखी गई, तब उसे मजबूरी में यह फैसला लेना पड़ा था। अमीरात में उसे नौकरी देने वाले मोहम्मद अब्दुल्ला अल बालोशी ने जुलाई '94 में एक दिन चाकू की नोक पर उसके साथ जबरदस्ती सेक्स करने की कोशिश की। सारा बताती है कि ऐसी कोशिश वह पहले कई बार कर चुका था, लेकिन परदेश में यह उसकी बेबसी ही थी कि वह आक्रामक न होकर लगातार किसी तरह अपना बचाव करती रही। लेकिन बालोशी की नजर में केरल-श्रीलंका-फिलीपींस से आने वाली युवतियों का सिर्फ एक ही मतलब था।

सिर्फ बालोशी ही क्यो, उसकी जैसी घिनौनी मानसिकता वाले शेखो के चगुल से अपना देश भी कहा सुरक्षित है? कुछ पैसों के एवज में वे कभी यहा से अमीनाएं ब्याहकर ले जाते है तो कभी नौकरानी के रूप मे, जबकि उनसे वे काम एक ही लेते हैं— अपनी हवस मिटाने का। शेखो का मानना है कि कम उम्र की युवती के साथ सभोग करके वे अधिक से अधिक समय तक अपनी मर्दानगी बनाए रख सकेंगे। उनकी इस मर्दानगी को खुराक देने के लिए गरीब देशों की बच्चियां धडाधड बेची-खरीदी जाती हैं, मगर सरकारे मुह-नाक-कान बंद किए

ऐसी, दफ्तरों मे स्वप्नावस्था में विचरते रहते हैं।

अरब को महिलाएं सौंपने वाले तमाम ठेकेदारों से लेकर रोजगार के लिए आने वाली महिलाएं बीस साल से चले आ रहे इस नरक से अनजान नहीं हैं। लेकिन सारा इस शोषण के खिलाफ खड़ी हुई और उसने बलात्कार पर उतारू शेख अब्दुल्ला अल बालोशी को जान से मार डाला। सारा के साथ क्या हुआ होगा, इसका अंदाजा हम इसी से लगा सकते हैं कि उसने 70 साल के अत्याचारी पर छुरे से 34 वार किए। मामला राजधानी अबूधाबी से 100 मील दूर अल इन शहर स्थित इस्लामी अदालत में गया, जहां शरीयत के कानून पर चलने वाली कट्टर अदालत ने बिना कोई डॉक्टरी परीक्षण करवाए यह एकतरफा और मर्दवादी निष्कर्ष निकाल लिया कि सारा के साथ बलात्कार की कोई कोशिश नहीं हुई। चूंकि इस्लामी अदालत के अनुसार बलात्कार का कोई सबूत नहीं पाया गया, इसलिए सारा के आत्मरक्षा की बात गलत मानी जाती है और 16 सितंबर '95 शनिवार को इस्लामी अदालत ने सारा को फांसी पर लटकाने का फतवा दे डाला। लेकिन मानवाधिकार संगठनों ने जिस तरह पाकिस्तान में 12 वर्षीय ईसाई बच्चे को इस्लामी अदालत में फांसी के फतवे से बचाया था, उसी तरह सारा को बचाने के लिए भी कमर कसी और तमाम ठोस प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया कि सारा के साथ बलात्त्कार की कोशिश ही नहीं, बलात्कार भी हुआ था।

संयुक्त अरब अमीरात की सरकार पर दबाव पड़ा तो उसने फिलीपींस के दूतावास को सारा के पक्ष में 15 दिन के भीतर अपील करने की छूट दी। इस बीच सारा के तमाम इंटरव्यू छप चुके थे, जिसमें उसने कहा कि वह फांसी से कतई डरने वाली नहीं है। उसने नारी जाति के स्वाभिमान के लिए मोहम्मद अब्दुल्ला की हत्या की है। जेल से अपने माता-पिता के नाम लिखे एक पत्र में सारा ने यह दर्ज किया—'आई डोंट फील अफ्रेड, आई मेंटेन दैट। आई ओनली डिफेंडेड माइसेल्फ। आई ओनली प्रोटेक्टेड माइ ऑनर ऐज ए वूमेन।' फिलीपीस के राजदूत रायसीनेर्स ने बाद में यह पत्र सवाददाताओ को दिखाया। संयुक्त अरब अमीरात के कानून के मुताबिक वहां का राष्ट्रपति भी मृत्युदंड पाए किसी व्यक्ति को क्षमादान नहीं दे सकता। इसलिए माना जा रहा था कि सारा की आखिरी घड़ी आ गई है और अब उसे शायद नहीं बचाया जा सकेगा, लेकिन इस्लामी देशों के प्रगतिशील अखबारों ने सारा के तर्को के आधार पर माना कि मोहम्मद अब्दुल्ला अल बालोशी की हत्या उसने आत्मरक्षा में ही की है। इस बीच फिलीपींस के राजदूत ने भी अपनी विधिवत कानूनी अपील दायर की। इस पर

इस्लामी अदालत ने अपना फैसला तो नहीं रद्द किया, लेकिन न्याय मंत्रालय के तहत सरकारी अभियोजन पक्ष ने सारा के खिलाफ अपने अभियोग वापस लेने का फैसला किया और अंतत: सारा की सजा माफ हो गई और मानवाधिकार संगठनो की एक और जीत हुई। लेकिन इसमें ज्यादा खुशी की बात इसलिए नहीं रही क्योंकि मौत की सजा से बचाने के बावजूद सारा को 100 कोडे मारने का आदेश दिया गया।

फिलीपींस के राजदूत ने सीखचों के पीछे फांसी की मानसिक तैयारी कर रही सारा को जब यह खबर दी तो वह खुशी से चीख पडी और घंटो रोती रही, क्योंकि यह अकेले सारा के पक्ष का फैसला नहीं था। अरब देशों मे हर वर्ष बाहर से काम करने आने वाली हजारों महिलाओं के साथ होने वाली बर्बरताओं पर विजय का यह प्रतीक था। सारा बालाबगान को अखबारों में दूसरी तस्लीमा कहा गया। इसी के साथ इस्लामी अदालतो को भी एक सदेश गया है कि वे कम से कम न्याय के साथ तो न्याय करें।

औरत धर्माचार्य क्यों न हो?

'औरत को अपनी बात चिल्लाकर ही कहनी चाहिए, ज्यादा असरदार ढग से, ताकि वह इस बहरे पुरुष-प्रधान समाज में सुनी जा सके। आज अगर औरत कुछ कहती है तो उसे अनसुना कर दिया जाता है। लेकिन अगर वही बात 5 मिनट बाद एक मर्द कहता है तो उसे दर्ज किया जाता है।'

यह अनुभव है जूली नैथानील का। 53 वर्षीय जूली पिछले 25 सालो से एशिया और यूरोप के तमाम देशों में महिलाओं के लिए काम कर रही हैं। पिछले 10 साल से वह 'एसोसिएशन ऑफ चर्च एंड मिशंस इन साउथ वेस्ट जर्मनी' मे वूमेन डेस्क की सचिव रही हैं और महिलाओं की एक बडी अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'अवर वाइस' की संपादक रही हैं। आजकल वे तिरुअनंतपुरम में चर्च की चर्चित महिला पादरी हैं।

चर्च मे महिला के पादरी होने को लेकर कुतर्कों का उफान अभी ठंडा नहीं हुआ है। यूरोपीय देशो और इंग्लैंड में महिला पादरी का चलना-बोलना, खाना-पीना सब कुछ खबर है। इन गिनी-चुनी महिला पादरियों पर कडी नजर रखी जाती है। जूली नैथानील के अनुभव इससे अलग नहीं हैं। वे भारत में है लेकिन पूरी दुनिया पर नजर रखती हैं। वे मानती हैं कि यह दुनिया पुरुषों की है और महिलाओ को पादरी बनाया जाना लोगों को सहन नहीं हुआ है, जबकि ईश्वर मीमांसा में महिलाओ का काम पुरुषों से बहुत ज्यादा रहा है। जूली के अनुसार धर्म या आध्यात्म का मूल प्रेम और करुणा की भावना है और प्रकृति में यह गुण महिला में पुरुष की बनिस्बत ज्यादा भरे हैं।

एक महिला समाज के दुःख-दर्द को बेहतर ढंग से समझ सकती है, क्योंकि वह इसी से होकर गुजरती है। इसके बावजूद, महिला को उसका हक नहीं दिया जा रहा। जहा तक इतिहास की बात है, वह तो लगता है मानो पुरुषों ने पुरुषों के लिए ही लिखा है।

जूली पिछले 10 सालों से चर्च की महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी हैं और वह इससे इनकार नहीं करतीं कि वहां भी लोगों ने उनके साथ मनमानी करने की कोशिशें

की। वे बताती है जब वे पहली बार दीक्षा लेकर पादरी बनीं तो कुछ लोगो ने उन्हें कहा कि अरे, आप तो बिलकुल फादर लग रही है। इससे मुझे दुःख हुआ कि आज भी डिक्शनरी में महिला पादरी के लिए कोई भी शब्द नही है। यहा तक कि जर्मनी मे 'मिसेज प्राइस्ट' बोला जाता है। महिलाओ को पादरी बनाए जाने का निर्णय 15 साल पहले ले लिया गया था, लेकिन जब-जब भी किसी महिला को दीक्षा देकर पादरी बनाने की बात आई तो चर्च ऑफ इग्लैंड पीछे हट गया। सी एम आई (चर्च ऑफ साउथ इडिया, स्थापित 1947) मे इस समय एक हजार चर्च हैं जिनमें सिर्फ चार मे महिला पादरी हैं।

जूली कहती हैं एक दिन वह आएगा और जरूर आएगा जब महिला विशप के पद पर बैठेगी। यह स्थिति अकेले ही क्रिश्चियनिटी की नही है। हिदू धर्म मे भी कही पर भी महिला को धार्मिक स्थल मे निर्णायक पद नही दिया गया है। मंदिरों में इसका प्रवेश अगर है तो देवदासी बनकर ही। जहा तक दूसरे धर्मो की बात है, भगवान बुद्ध ने कहा था कि जिस दिन महिला मठ मे प्रवेश कर जाएंगी, उसके 500 साल बाद बौद्ध धर्म खत्म हो जाएगा। मस्जिदों में तो महिला का प्रवेश ही वर्जित है। लेकिन यह सब क्यो है—इसका कोई तर्क नहीं है। पिछले दिनो अकेले राजधानी पुलिस ने ही ऐसे आधा दर्जन मामले पकडे, जिसमे मठाधीशो और धर्माचार्यो ने बलात्कार किए। कोई बहस नही हुई। किसी ने सवाल नही उठाया। ज्यादा से ज्यादा मुसकान के साथ एक आह भर के कहा गया—घोर कलयुग है। एक जैन धर्माचार्य द्वारा साध्वी के साथ बलात्कार की सुनवाई के दौरान अभियोग पक्ष और बचाव पक्ष मे जो तर्क-वितर्क हुए उसे पढकर कही नही लगा कि धर्म का नैतिक अनुशासन भी कोई चीज है।

जैन साधुओ के (जो समाज में नग्न घूमते-फिरते हैं) सेक्स स्कैंडल हर थोड़े दिनो में खुलते रहते हैं, मगर धार्मिक अंधता के चलते आम आदमी को विश्वास नही हो पाता। ऐसे मामलों में हमेशा औरतो को ही, चाहे वे भी साध्वी क्यों न हों, दोषी बताकर मामला रफा-दफा कर दिया जाता है।

खैर, यह घाव जैन समाज का है। यहां बात इस बिदु को लेकर है कि एक महिला धर्माचार्य क्यों नहीं हो सकती? यदि वह अपनी योग्यता से एक राष्ट्र की शासनाध्यक्ष हो सकती है, सर्वोच्च न्यायालय की जज हो सकती है, शिक्षण सस्था की अध्यक्ष हो सकती है या तमाम तकनीकी संस्थाओ मे सर्वोच्च पद पर बैठ सकती है, तब उसके धर्माचार्य होने पर ही हाय-हाय क्यों? बल्कि धर्माचार्य पद तो बहुत दूर की बात है अभी तो हम पिछले दिनो दक्षिण भारत मे हुई उस

शर्मनाक घटना को ही याद करें। जिसमें मंदिर मे महिला के प्रवेश को लेकर तूफान खड़ा कर दिया गया था। आज भी हनुमानजी के मंदिरों में महिलाओं द्वारा भजन-पूजन पर पुजारी-पंडे आसमान सिर पर उठा लेते हैं। लेकिन अगर उन्हीं बजरंगबली की मूर्ति का प्रसाद कुत्ता उठाकर ले जाए तो उन्हें कोई आपत्ति नही है। यहां आप महिला की स्थिति की तुलना कर सकते हैं।

धर्माचार्य बनने से किसी महिला को कोई लपकौरा नहीं मिल जाता लेकिन सवाल बस, इतना-सा है कि महिला को धर्माचार्य बनाए जाने पर आपत्ति क्यों? प्रोग्रसिव से प्रोगेसिव लोग भी इससे कन्नी काट जाते हैं। जब पहले-पहल लंदन मे महिला को पादरी के लिए दीक्षित करने की बात आई तो वहा संसद और मीडिया में ऐसा तूफान मचा मानो लंदन पर किसी ने परमाणु बम गिरा दिया हो, जबकि यह एक सीधी-सी बात थी कि यदि महिला उस योग्यता में उत्तीर्ण होती है तो उसे पादरी बनाया जाना चाहिए। आखिर चर्च में नर्नें तो थीं ही। लेकिन असल बात धर्म के बहाने सत्ता की थी—यानी निर्णय लेने का अधिकार महिला को दिया जाए या न दिया जाए! और कहने की बात नही कि इग्लैंड का पुरुष-प्रधान समाज एक बार फिर एक्सपोज हुआ। बहसों में यहां तक कहा गया कि कनफेशन (प्रायश्चित्त) में अगर महिला पादरी होगी तो लोग अपना अपराध उसके सामने स्वीकारने में हिचकिचाएंगे।

तवलीन सिंह के (कु)तर्क

किसी मरीज की दाई की जगह बाई टांग काट देने जैसी भयानक लापरवाही के लिए अभी तक डॉक्टर ही कुख्यात थे, लेकिन कई दफा चंद पत्रकार भी यही करने लगते हैं। हाथ में कलम या लिखने के लिए मच हासिल हो जाने का क्या यह मतलब है कि पत्रकार अपने निजी विचार के नाम पर कुछ भी लिख डालें? दिल्ली की एक चर्चित पत्रकार हैं, नाम है— तवलीन सिंह। देश-विदेश के तमाम अखबारों मे इनके कॉलम छपते हैं। एक अखबार के अपने कॉलम में इन्ही महोदया ने अजीब-अजीब तर्क पेश करते हुए रूपन देओल बजाज के लिए अनाप-शनाप कह डाला है। आप जानते होंगे, रूपन देओल बजाज पंजाब की वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी हैं जो के.पी.एस गिल द्वारा अपने साथ हुई बदतमीजी को सुप्रीम कोर्ट तक ले गईं।

तवलीन सिह के मुताबिक, बाटम स्लैपिंग या चुटकी काटने का यह मामला सुप्रीम कोर्ट तक ले जाने वाली बात नहीं थी। सरसरी तौर पर आशय यह है कि तवलीन सिह के मुताबिक तिल का ताड़ बनाया गया। या तो तवलीन सिंह अखबार नहीं पढती है या फिर उनमें इतनी संवेदना नहीं है कि वे दूसरे की पीड़ा को समझ सकें। अन्यथा उन्हें रूपन देओल का वह इंटरव्यू याद रहना चाहिए, जिसमें उन्होंने बताया है कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा गिल पर मुकदमा चलाए जाने का आदेश देने के बाद उन्हें जान से मारे जाने की छह से ज्यादा धमकियां मिल चुकी हैं। इसी का नतीजा है कि उस दिन पार्टी में मौजूद दर्जनों प्रत्यक्षदर्शी आई.ए.एस , आई पी एस अधिकारी गिल के खिलाफ गवाही देने से पीछे हट गए।

अकेले रूपन देओल बजाज से ही नहीं, तवलीन सिंह की खुन्नस पूरे महिला आंदोलन से है। 'आउटलुक' पत्रिका को दिए अपने इटरव्यू में वे खुद को बिंब पर आधारित किसी मुद्दे से अलग बताती हैं। उनकी भोथरी संवेदना के आगे यह सवाल उठाना बेमानी होगा कि देश मे प्रतिवर्ष लाखो मादा भ्रूण ही क्यो नष्ट किए जा रहे हैं या पुरुषों के मुकाबले महिलाओं का अनुपात प्रति हजार में 200 तक क्यों घट गया है। तवलीन सिह इतना भी नही समझ सकीं कि रूपन

देओल बजाज की लडाई अकेली एक महिला के साथ घटी ज्यादती (दिल्ली की किसी बस में होने वाली) आम साधारण घटना नही है। कायदे से तो इसे भी हलके से कतई नहीं लिया जाना चाहिए।

देश के संविधान की रक्षा के लिए राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होता है, आई.ए.एस.। जब वह अपनी रक्षा करने में ही असमर्थ है तो दूसरो की रक्षा कैसे करेगा? फिर बात सिर्फ मामूली छेडखानी की नही है, के.पी.एस. गिल ने भरी पार्टी में हाथ में दारू का प्याला लिए हुए रूपन देओल के साथ शारीरिक छेडछाड तो की ही, भद्दी-भद्दी अश्लील बाते भी कहीं।

तवलीन सिंह अपने कॉलम में इसका सड़क छाप समाधान सुझाती हैं कि रूपन देओल बजाज को गिल के साथ मारपीट कर लेना चाहिए थी, चलिए मान लीजिए, तवलीन सिह के स्तर पर आकर इस पर भी विचार करतीं तो क्या रूपन बजाज की और ज्यादा दुर्गति नहीं हो जाती। तवलीन सिंह को शायद न मालूम हो कि छह साल तक सुप्रीम कोर्ट तक यह लडाई लड़ने में रूपन बजाज को कोई मजा नही आया होगा, बल्कि उन्हें मुकदमेबाजी के लिए अपने और अपने पति के फंड से पैसा निकलवाना पड़ा और बेहद मानसिक तनाव से गुजरना पडा। वजह यही कि के.पी.एस. गिल पंजाब मे शांति के 'सो काल्ड' मसीहा बने हुए थे, उन्हे प्रधानमंत्री ने एक्सटेंशन भी दिया हुआ था, इसलिए उन्होने समझ लिया कि उन्हें औरतो के शरीर के साथ मनमानी करने का भी लाइसेस मिल गया है। दिल्ली के एक होटल में पत्रकारों की जानलेवा पिटाई कोई महिलाओ के साथ बदतमीजी का मामला नहीं था, लेकिन वह गिल की बपौती का तो परदाफाश करती ही है। रूपन बजाज चाहतीं तो इस मामले को छोड़ भी सकती थीं, उन्होंने छोड़ना चाहा भी लेकिन वह कहती हैं कि उन्हें लगा कि यह अकेले उनका मामला नही है, यह तो पूरी नारी जाति के स्वाभिमान की बात है। गिल के निकटवर्ती सुरक्षा सूत्रों के अनुसार, उन्होंने अभिनेत्री श्रीदेवी के साथ भी बदतमीजी करने की कोशिश की थी। गिल की आगे की गदी योजना को श्रीदेवी भाप गई और समय रहते ही बंबई वापस हो लीं। श्रीदेवी ने कोई मुकदमा दर्ज नहीं करवाया, दुनिया यही जानती रही और जानती है कि गिल श्रीदेवी के जबरदस्त फैन हैं।

दरअसल अकसर होता ही यही है कि औरतें अपने बॉस या मालिक की बदतमीजी लोकलाज के भय से मुह सिए सहती रहती हैं। उन्हें लगता है कि इसमे उस बदतमीज पुरुष की बजाए उनका ज्यादा अपमान होगा और लोग उलटा उन्ही

पर लांछन लगाएंगे.

तवलीन सिंह की जानकारी के लिए परम शक्तिशाली व्हाइट हाउस की लाख कोशिशों के बाद भी क्लिंटन पर एक महिला क्लर्क द्वारा लगाया यौनाचार का मुकदमा वापस नहीं हुआ। रूपन बजाज तो एक आई.ए.एस अधिकारी हैं। तवलीन सिंह का एक आक्रामक सवाल यह भी है कि रूपन बजाज ने भंवरी देवी के लिए क्या किया? ठीक है, माना, कुछ नहीं किया, पर वे कम से कम भंवरी के खिलाफ तो नहीं हैं (तवलीन सिह की तरह)। जिस अखबार ने तवलीन सिंह का यह कॉलम छापा है, संयोग से उस अखबार की स्थानीय सपादक भी एक महिला हैं और उन्होंने तवलीन की इस टिप्पणी के खिलाफ आए दर्जनों पत्र हफ्तों अखबार में छापे। शायद इससे चिढकर तवलीन कहती हैं 'आइ एम नॉट एन एक्टिविस्ट, आइ एम ए जर्नलिस्ट।' शायद उन्हें पता नहीं कि ये दोनों शब्द अलग-अलग नहीं हैं। 'एक्टिविस्ट' ही जर्नलिस्ट होता है। जो एक्टिविस्ट नहीं होता, वह जर्नलिस्ट मात्र एक टेक्नोक्रेट होता है। खैर, यह दूसरा मुद्दा है।

तवलीन के मुताबिक रूपन बजाज का अपने साथ छेडखानी के मामले को प्रेस में उछालना ही अनुचित है। क्यों? प्रेस में नहीं उठाएंगी, कोर्ट मे नही उठाएगी तो क्या एक महिला आपबीती गेरू से दीवारो पर लिखेगी? अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मतलब तवलीन की तरह ऊल-जलूल बकना ही है। यदि तवलीन सिंह के दिमाग में संवेदनशीलता तनिक भी बची होती तो निश्चित रूप से वे ऐसी वाहियात बात कतई न करतीं। कोई औरत जब इस तरह की बदतमीजी झेलती है तो उस पर क्या गुजरती है। लाख सोचने के बाद ही वह इसे जुबान पर लाने का साहस करती है।

थोड़े दिनों पहले एक महिला पत्रकार ने इसी तरह अपने कॉलम मे मुख्यमंत्री जयललिता द्वारा अपने दत्तक पुत्र की शादी मे करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाना उचित ठहराया। आखिर यह कौन-सी पत्रकारिता है? मेरा यह सवाल 'प्रेस काउंसिल' से भी है।

रास्ता न्याय और अन्याय का

इस्लाम में नारी को अगर अधिकार मिलें भी तो किस तरह मिल सकते है, इसके तमाम उदाहरण चौथे महिला सम्मेलन में देखने मे आए थे। इस्लामी देशो के सारे महिला प्रतिनिधि मंडल सिर से पैर तक, एक-एक इंच नकाब से बुरी तरह ढके हुए थे। सिर्फ आंखों के पास एक मिलीमीटर की कपडे की दरार से वे महिलाएं बराबरी के अपने अधिकार के पक्ष में बोलने आई थीं। इन महिलाओ ने अपने गले में बकायदा अपने पहचान पत्र लटकाए हुए थे। पहचान पत्रों में जो फोटोग्राफ लगा था, वह भी नकाब में ही था!

यानी अगर इस्लामी देश अपने यहा की महिलाओं को समानता का अधिकार देंगे भी तो वे अपनी पहचान फोटो परदे मे रहकर भी खिंचवा सकती है। यह मात्र प्रतीक है। क्योकि महिला सम्मेलन में ऐसे इस्लामी देशो की तारीफ की गयी जिन्होंने महिलाओं को इस तरह भी भाग लेने दिया। वरना अधिकांश ने तो 'धार्मिक मामलो में हस्तक्षेप' मानते हुए महिलाओं को किसी तरह सम्मेलन मे भाग लेने की छूट देने से साफ मना कर दिया।

इस्लामी कट्टरता के अंधे कुएं से अधिकारों के लिए लड़ रहे एक संगठन की नेता और पत्रकार बारबरा क्रासेट ने पाकिस्तान के तमाम शहरों की महिलाओं से बातचीत करने पर पाया कि वहां युवा बेटियों के अंतर्वस्त्र भी उनके पिता ही खरीदते है। उनकी मां या खुद उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वे अपने अति निजी वस्त्रों को भी खुद खरीद सकें। महिलाओं के कपड़ों का पाकिस्तान में पूरा कारोबार पुरुषों के हाथों में है और डिजाइन भी आदमियों द्वारा ही तैयार किए जाते है। पाकिस्तानी महिलाओं के लिए यह कल्पना ही बहुत बड़ी बात थी कि बाजार जाकर अपने कपड़े अपनी ही पसंद से खरीदने का फैसला उन्हें स्वयं करना चाहिए। लेकिन यह पाकिस्तान और बांग्लादेश के लिए अभी सौ साल आगे की बात है। इन दोनों देशों के छोटे शहरों और कस्बों में काम करने वाली मजदूर महिलाओं के पैरो में 12 घंटो के लिए फैक्टरी मालिक बेड़ी डाल देता है, ताकि काम के दौरान वे बच्चे खिलाने, खाना खाने या नित्यक्रिया के लिए न जा सके।

इन जाहिल इस्लामी देशों से ऐसी रिपोर्ट भी आई है, जिनमे प्रसव के लिए तडपती महिला के पेट मे धीरे-धीरे से लात मारी जाती है ताकि उसे जल्दी से और सुरक्षित प्रसव हो सके। ऐसी खबरें यदा-कदा आती ही रहती हैं कि कुवैत में शेख काम करने वाली तमाम महिलाओ के साथ कुकर्म तो करते ही है साथ में उनके शरीर को जलती सिगरटों या दूसरी चीजो से जला भी देते है।

ऐसा वे इसलिए करते हैं ताकि उनके ब्रांड को देखकर दूसरा शेख उन्हे काम न दे। बांग्लादेश मे पिछले साल प्रेम के अपराध में एक युवती को गले तक जमीन मे गाडकर उसके ऊपर 10,000 की भीड ने पत्थर बरसाए। मोलवी का कहना था कि उसका उद्देश्य उस लडकी को जान से मारना नहीं था, बल्कि उस युवती के माता-पिता को आदेश दिया गया था कि वे चाहें तो उसे खोदकर निकाल सकते हैं और उसका इलाज करवा सकते हैं। मानवाधिकार संगठनों के हायतौबा मचाने पर जब यह मामला बांग्लादेश की बड़ी अदालत में गया तो वहां के न्यायाधीशों ने बिना चौंके सिर्फ यह फैसला दिया कि सजा देना अदालत का काम है, मौलवी का नहीं। लेकिन मौलवी की इस क्रूरता के बारे मे अदालत ने कोई टिप्पणी नहीं की। जैसे फिलीपीस की एक मजदूर युवती सारा बालाबन के ऊपर लगा मृत्युदड हटाया गया तो उसे सौ कोड़ों की सजा मे बदल दिया गया। 17 साल की इस लडकी की उम्र को देखते हुए उसकी सजा बहुत ज्यादा है इसलिए कोडे मारने वाले से कहा गया कि वह अपने बगल में कुरान की एक प्रति दबा ले, ताकि कोडे बहुत तेजी से उसे न लगे या शायद उसे मारने के इस पाप से बचाने के लिए यह टोटका किया गया हो।

महिला सम्मेलन मे कुछ वक्ताओं का कहना था कि ऐसे काम नही चलेगा, महिलाओं को हाथों में बंदूक उठानी होगी। इस पर पांचवें अंतरराष्ट्रीय महिला सम्मेलन की प्रमुख मुंगेला ने कहा कि बंदूक नही, फिलहाल महिला के हाथों को जरूरत है– हैंडपप की। उनका इशारा था कि बगैर आर्थिक कुशलता हासिल किए महिलाएं अपनी लड़ाई को परिणति तक नहीं पहुंचा सकती हैं। एक उदाहरण भी दिया गया कि विश्व बैंक ने बांग्लादेश के एक ग्रामीण बैंक के द्वारा गांव की हर महिला को एक डालर का कर्ज दिया था। 97 प्रतिशत महिलाओं ने निश्चित समय पर पैसा वापस कर दिया और लाभ भी कमाया। जबकि इससे एकदम उलट हमारे विकासशील भारत महान में एक सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि केवल 2.22 प्रतिशत औरते यहा लोन लेने को राजी हैं। शेष का इस पर विश्वास ही नहीं है।

इस्लामी देशो मे धार्मिक जकडबंदी किस कदर है, इसका उदाहरण खुद तस्लीमा नसरीन हैं कि समझौता न करने के लिए अपने फैसले के लिए वे अपनी जान पर खेल गईं, लेकिन न्यायालय में जाते समय उन्होंने भी बुर्के जैसी काली स्कार्फ अपने सिर पर बांधे हुए थीं। पाकिस्तान की मानवाधिकारों की लडाई लड रही प्रमुख वकील अस्मां जहागीर अपनी जान पर खतरे की कोई भी नौबत देखते ही फौरन लदन भाग जाती हैं और वहीं से फोन पर अपने मुकदमों का संचालन करती हैं।

सूचना क्रांति के इस दौर में भी महिलाओं के साथ अत्याचार की कोई खबर महीनों बाद ही बाहर आ पाती है, वह भी सक्षिप्त ही। जान पर खेल कर ही कोई खबरनवीस किसी रिपोर्ट पर काम करता है। तो तस्लीमा का यह कहना कि इस्लाम और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। यह तो बाद की बात है। अभी तो नौबत यह है कि इस्लाम और प्रेस ही साथ-साथ नहीं चल पा रहे हैं जहां इस्लामी देशों का कोई अखबार सलमान रुश्दी की तसवीर या फोटो कैप्शन काफिर लगाए बगैर न छापता हो वहां महिलाओ के लिए किसी तरह के न्याय की अपेक्षा करना व्यर्थ है। तस्लीमा की बातों से लगता है कि वह पूरी तरह हताश हैं। उन्होंने भी इस बात को आखिरी सच के तौर पर स्वीकारा जो पहला सच है कि न्याय और अन्याय साथ-साथ नहीं चल सकते हैं।

जरूरत कुछ शुरू करने की

'इतिहास की जमीन तैयार है या नहीं, यह जांचना बड़ा विकट काम है। कई बार लगता है कि उत्साही किसानों की तरह हमें बीज डालते ही रहना चाहिए, ताकि जब मौसम आए तो उर्वर भूमि उन्हें ग्रहण करे और फसल उपजाए।' राजेंद्र माथुर ने यह बात क्यूबा के नौजवान नेता अर्नेस्टो ग्वेवेरा की विफलता के बारे में लिखी थी। ग्वेवेरा क्यूबा के मंत्रिमंडल के सदस्य थे। 1956 मे उन्होंने इस्तीफा दे दिया और क्रांति का बीड़ा उठाया। 1967 तक अपने मुट्ठी-भर सशक्त क्रांतिकारियों के साथ जगल-जंगल लडते हुए मारे गए।

जनता किस समय क्राति के लिए तैयार हो जाएगी, यह कहना मुश्किल है। समकालीन चिंता महिलाओं के साथ लगातार बढ रहे अत्याचार और भेदभाव के बाद भी कोई आंदोलन न खड़ा होने की है। महिलाओं की ये हालत हजारों सालो से है और बदस्तूर चली आ रही है। जनक्रांति के बारे में यह कहा जा सकना है कि क्रांति के बीज डालने के लिए जमीन तैयार है या नहीं, लेकिन महिलाओ की क्रांति के बारे में लगता है कि कोई जमीन है ही नहीं। जमीन की तैयारी का तो सवाल ही नही उठता है। पिछले दिनो सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओ के साथ बलात्कार के कानून कडे करते हुए निर्देश जारी किए थे, उसमें एक सुझाव यह भी था कि भुक्तभोगी महिला को थाने में निःशुल्क महिला वकील उपलब्ध करवाई जाए और महिला वकील का नाम और पता थाने के नोटिस बोर्ड में लगाया जाए। इसके अगले ही दिन अखबारो में खबर थी कि राजधानी की एक प्रतिष्ठित महिला वकील ने अपने नग्न फोटो एक पत्रिका के कवर पर छपवाए और उसे अपना निजी मामला कहा। इसके आगे कुछ लिखने, कहने, बोलने या सोचने की जरूरत नहीं रह जाती।

पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र का विश्व महिला सम्मेलन एक मसखरी मे कुछ ज्यादा नहीं दर्ज हुआ। पश्चिमी मीडिया ने यह छापने में ज्यादा दिलचस्पी दिखाई कि उसमें यदि कोई प्रदर्शनकारी निर्वस्त्र हो जाएगी तो चीन की पुलिस

कितने मीटर सफेद कपड़े से उसे दौड़कर ढकेगी। गंभीर मुद्दों की वृहत तैयारी के साथ शुरू हुआ यह सम्मेलन अपने समापन तक महिलाओं के प्रति अत्याचार के एक बैकग्राउडर मे ज्यादा कुछ नही हो सका। क्यो?

पिछले महीनों में राजधानी दिल्ली में बच्चियों के साथ बलात्कार (पिता द्वारा आधा दर्जन) की घटनाए हुई, लेकिन अखबार फाइव स्टार होटलों में होने वाली फैशन प्रदर्शिनी के दौरान मॉडलों की तसवीरें ही छापते रहे। फिर इन बेबस गरीब बच्चियों के साथ न्याय की उम्मीद उस देश में कैसे रखी जा सकती है, जहां एक महिला आई ए एस अधिकारी के साथ अश्लील दुर्व्यवहार का मामला सात साल बाद दर्ज हुआ—वह भी जब सुप्रीम कोर्ट ने झाड़ लगाई। रूपन देओल बजाज के साथ बदतमीजी जुलाई '88 में हुई थी वह कहती है—'के पी एस गिल के प्रभाव के कारण मीडिया ने मेरा पक्ष एक लाइन भी नहीं छापी, लेकिन मै इसे सिर्फ अपनी नहीं, बल्कि पूरी नारी जाति के सम्मान की बात मानकर चली। मैंने अपने फड मे पैसे निकलवाए और मामले को सर्वोच्च अदालत तक ले गई।'

यह एक पढ़ी-लिखी सक्षम महिला कलेक्टर के साथ हुई ज्यादती का हश्र है। हम देश भर के छोटे-छोटे दफ्तरों मे अपनी ड्यूटी के दौरान पुरुष अधिकारियों द्वारा किए जा रहे दुर्व्यवहार (हरैसमेंट) का अदाजा लगा सकते हैं। इलाहाबाद के पास एक गांव में सारा दिन महिला को नंगी करके घुमाया जाता रहा। मामला विधानसभा में उठा। जिला प्रशासन ने न्याय के नाम पर उसे दस हजार रुपये दिलवा दिए। मध्य प्रदेश में तो विधानसभा मे एक मंत्री ने यहां तक कह डाला कि यदि दो बार बलात्कार हुआ है तो सरकार दो बार मुआवजा देगी। जले पर नमक छिड़कना सिर्फ एक मुहावरा नहीं है, यहां वास्तव में ऐसा होता है और ये घटनाएं इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

वरिष्ठ कवि त्रिलोचन ने एक बार कही टिप्पणी की थी कि 'सरकार अपनी योजनाओ में कुपोषण के लिए बजट निर्धारित करती है, जबकि यहां पोषण ही नही है। जहां पोषण नही है, वहां कुपोषण की बात कहां आती है।' यही स्थिति महिलाओं की है। जब महिलाओं के साथ न्याय ही नही होगा, तब हम उनके साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ कितने ही कड़े कानून बनाते जाएं, उससे क्या होगा? प्रगतिशीलता का तमाम दम भरने वाला 'टाइम्स ऑफ इंडिया' करवा चौथ की पूजा करती महिला की तसवीर प्रतिवर्ष क्यों छापता है? यह काम 15वीं सदी मे

लिखी गई चौपाई 'ढोल, गवार, शूद्र, पशु नारी...' से ज्यादा भिन्न कहां है। कंप्यूटर युग मे सिर्फ महिला से यह उम्मीद क्यों की जाती है कि वह दिन-भर भूखी-प्यासी रहकर पति के दीर्घआयु रहने की कामना करे? वट-सावित्री, करवा-चौथ, तीज जैसे व्रत वह पुरुषो के लिए क्यों करे?

कुछ साल पहले एक एथलीट लड़की ने अपने कोच द्वारा की जा रही बलात्कार की कोशिश को प्रेस के सामने उजागर कर दिया था, इस पर थोडा तूफान उठा था। बाद में नाम न छापने की शर्त पर पूरी महिला टीम ने रोंगटे खडे कर देने वाले किस्से बताए कि किस तरह पुरुष अधिकारी और कोच उन्हे हमबिस्तर होने पर मजबूर करते हैं और ऐसा न करने पर उन्हें टीम से बाहर कर देते है।

देश उम्मीद लगाए बैठा है कि खेल जगत् मे भारतीय महिलाए चीन या कोरिया की महिलाओ की तरह कुछ कर दिखाए। जबकि किसी भी टीम की महिला सदस्य का लक्ष्य पदक नही, बल्कि उसका अपना शरीर होता है कि किस तरह वह उसे भेडियों के बीच बचा सके।

बात की जाती है कि ससद में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व नही मिल रहा। बाकी विधायी संस्थाओं में भी महिलाओं की कमोबेश यही स्थिति है। एक कटु सत्य यह भी है कि महिलाओ के नेतृत्व से महिलाओं को कोई फायदा नही हुआ। पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका के आंकडे तो इसके गवाह हैं ही, अपने सौ दिन के शासनकाल में मायावती ने भी महिलाओ की कोई सुधि ली हो, याद नही पड़ता। कछुआ चाल से एक रस्म के तौर पर महिलाओ के अधिकारों की बात तो हर कोई करता है, लेकिन परिणति तक कोई नहीं ले जाना चाहता।

थोड़े दिनों पहले 'लंदन टाइम्स' की एक संवाददाता ने बिहार के कटिहार जिले मे 50 रुपये मे नवजात बच्ची की गरदन मरोड देने वाली एक महिला को 500 रुपये दिए और कहा कि वह उसी जगह पर चलकर यह बताए (डिमॉन्सट्रेशन करे) कि उसने बच्ची की गरदन कैसे उमेठी। छह महीने बाद विनोद मेहता के संपादकत्व में निकली मैग्जीन 'आउटलुक' ने फिर उसी महिला से उसी तरह का डिमॉन्सट्रेशन करवाया।

क्या कहना चाहते हैं ये लोग?

बच्चियो की हत्या करने वाली इस दाई ने साफ कहा कि वह यह सब नही करना चाहती, पर बच्ची के मां-बाप उसे ऐसा करने पर मजबूर करते है।

वह सिर्फ इतनी कोशिश करती है कि फूल-सी बच्ची को इस तरह मारे कि उसे बिलकुल कष्ट न हो।

इस क्रूर सामाजिक सच का प्रसार जरूरी है या उसे रोकना। महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचारो के आंकड़े तैयार करना जरूरी है या इनके खिलाफ खडे होना? भंवरी बाई के पास कौन-सी डिग्री है, वह किसी मेनस्ट्रीम या सेमिनार में लेख नही लिखती, बल्कि सीधे खिलाफ खड़ी हो जाती है और उसकी कीमत (सामूहिक बलात्कार सहकर) चुकाती है। महिलाओं के बारे में जरूरत अब ज्यादा सोचने की नहीं, सचमुच कुछ शुरू करने की है।



सरकारी दहेज है यह

दिल्ली सरकार की तरफ से अनुसूचित जाति की विधवाओं के लिए 5000 रुपये अनुदान देने की पेशकश 'डाइरक्ट्रेट फॉर दि वेलफेयर ऑफ एस सी/ एस टी' ने हाल ही में जारी एक विज्ञापन के जरिए की है। 'फाइनेंशियल असिस्टेंस टू शिड्यूल कास्ट विडोज' के शीर्षक से अंग्रेजी मे दिए गए इस विज्ञापन में लिखा है कि यह राशि अनुसूचित जाति की कोई भी विधवा, जिसकी आमदनी 15000 रुपये (शायद वार्षिक) से अधिक न हो, तथा बेटी की उम्र 18 या उससे अधिक हो, यह धन बेटी की शादी के लिए ले सकती है। इस राशि को लौटाने की भी कोई आवश्यकता नहीं है—ऐसा विज्ञापन मे ही लिखा है। इसके लिए की जाने वाली तमाम आवश्यक कार्यवाहियां भी दी गई हैं।

सरकार द्वारा खुद लिखित रूप से दहेज दिए जाने को स्वीकृति देने की इससे पुख्ता सहमति को कानून की नजर से क्या माना जाना चाहिए? सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम तब, जबकि 'दहेज देना या लेना कानूनन जुर्म है।' ऐसे मे क्या माना जाना चाहिए? यही कि देश में जहा दहेज एक गंभीर समस्या के रूप में दिन-ब-दिन फैलता जा रहा है, लडकियों को सामाजिक बोझ समझा जाता है, उनके विवाह में अड़चनें आती हैं, वहां सरकारी तौर पर यह एलान करना कि 'लडकियों की शादी के लिए दहेज ले लो' निहायत ही घटिया माना जाएगा। खासकर तब जबकि सरकार अपने ही बनाए कानूनों को स्वयं रौंद रही हो।

20 मई 1961 को भारत सरकार ने 'दहेज निषेध एक्ट' बनाकर दहेज लेना तथा देना दोनों ही कानूनी रूप से अवैध घोषित कर दिया था। 'दहेज निषेध एक्ट' सेक्शन-2 में 1984 तथा 1986 में कुछ सशोधन करने के बावजूद सरकार ने यह स्वीकार किया कि उक्त अनुच्छेद के अंतर्गत दहेज मांगने या मांगने के लिए किसी भी प्रकार का दबाव डालने पर 5 वर्ष की कैद व 15000 रुपये जुर्माना किया जाएगा। इस सजा या जुर्माने की राशि में किसी प्रकार की कमी या राहत नही देने के स्पष्ट आदेश भी हैं। दहेज देने की इस प्रक्रिया मे सरकार द्वारा कानून का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन आम जनता को क्या सीख देगा?

सरकारी कारिंदे या नेताजन माइक उठाए सेमिनारों, उद्घाटनों और महिला जागृति पर दिए जाने वाले भाषणनुमा लफ्फाजी में क्या कहेंगे? यही न कि यदि आप गरीब हैं, आपके पास फूटी कौड़ी भी नही है तो क्या हुआ? अब हम आपकी बेटियो की शादी में दिए जाने वाले दहेज का जिम्मा उठाते है। अब से सरकार देगी दहेज और मुह बंद कर देगी ससुराल-पक्ष का। कहने का मतलब यह बिलकुल नहीं कि सरकार द्वारा गरीब-बेसहारा जरूरतमंद लोगों की मदद न की जाए, बल्कि सीधी तौर पर यह कहना ठीक होगा कि सरकार इस तरह के कार्यो को स्वय सपन्न करवाए तो बेहतर रहेगा। गरीब बेवा की बेटी के हाथ पीले करने के लिए सरकारी तौर पर सबसे बढ़िया कदम तो यह माना जाता कि सारी आवश्यक कार्यवाही के बाद एक-दो दिन की व्यवस्था करवा कर सरकार अपने अधीन एक 'सामूहिक विवाह-समारोह' जैसा कार्यक्रम संपन्न कर ये तमाम शादिया एक साथ करवा देती। इससे न केवल उचित व्यक्ति तक सहायता पहुंचती, बल्कि जरूरतमदों को इधर-उधर भटकने के बाद तमाम दस्तावेज न जुटाने पड़ते जो सरकार द्वारा वैधव्य की प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए मांगे गए है।

लडकियो को समाज में सम्मान दिलाने, गर्भ से गिरा दिए जाने या ससुरालियो द्वारा वांछित दहेज न ला पाने पर मार दिए जाने जैसी घटनाओं को यदि रोकना है तो शिक्षा का व्यापक प्रसार और महिलाओं को आर्थिक रूप से दृढ़ करने के अतिरिक्त कुछ खास देने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। आर्थिक रूप से संपन्न महिला दोयम दर्जे का जीवन जीने के लिए मोहताज नहीं रहती। न उसके सामने किसी पर आश्रित रहने का सवाल आता है और न इस तरह की सरकारी मददों की जरूरत ही रह जाती है। अपने बच्चों को दो जून की रोटी, तन ढकने को कपडा और प्राथमिक शिक्षा दिलाने में उसके हौसले पस्त नही होते। औरत के मोहताज न होने-भर से सामाजिक कुव्यवस्था की आधी छुरियां स्वतः ही भोंथरा जाएंगी। यह मान भी लिया जाए कि दहेज एक रिवाज के तहत दिया जाता है तो भी लड़की के भविष्य के प्रति निश्चिंतता तो नहीं ही आ पाती।

समाज में दहेज का प्रचलन पिछले कुछेक सालों में तेजी से बढा है। ज्यों-ज्यों लोगों में धनाकर्षण बढ़ता गया, वे अपनी गरिमा और स्थिति को संपत्ति के जोर पर तोलने लगे। ऐसे में लडकियों की शादी पर वैभव व संपन्नता का प्रतीक बना धन धीरे-धीरे स्त्री-धन में तब्दील होता गया और अंततः यह आवश्यक अंग

माना जाने लगा। आज गरीब तबके तक में दहेज का खासा वर्चस्व नजर आता है। एक घरेलू काम करने वाली 10-12 साल की लडकी से जब यह पूछा गया कि वह मा-बाप के नौकरी करने के बावजूद क्यो काम करती है। उसका मासूम-सा जवाब था—'अपनी बडी बहन की शादी पर हमने दहेज लेने के लिए जो कर्ज लिया था उसे चुकाने के लिए सारा घर पैसा कमाता है।'

लडकियों के जन्म को अपशकुन समझना, समाज में उनकी इज्जत कम होना और जन्मते ही लडकी का गला दबा देना या आधुनिक मायनों में भ्रूण-हत्या कर देना, लडकियों को दूसरे दर्जे पर रखने जैसे तमाम दुष्कर्म मात्र दहेज से जुडे है। दहेज मायने सीधे तौर पर कह सकते है—पैसे से लड़का खरीदने की यह वह बेबुनियाद जरूरत है, जिसकी दरअसल कोई जरूरत ही नहीं है।

कॉलमबाजों का जायका

गरीबी की रेखा से ऊपर के अखबार 'एशियन एज' में प्रत्येक रविवार को जानी-मानी फैशन डिजाइनर बीना रमानी 'वेरी पर्सनल' कॉलम में लोगों को निजी समस्याओं के चटपटे समाधान सुझाती हैं। 15 जनवरी के अंक में एक प्रश्न देखें—'मै 25 साल का युवक हूं। बहुत रईस हूं। मैं गली की एक लड़की से प्यार करने लगा हूं। हमारे बीच पिछले कई महीनो से शारीरिक संबंध है। मै उससे शादी करना चाहता हू। लेकिन मुझे पता है, मेरे मम्मी-पापा इस रिश्ते की इजाजत नहीं देंगे। क्या मेरा यह विवाह संभव है या मुझे यह रिश्ता तोड़ देना चाहिए' (ए.एम दिल्ली)। अब बीना रमानी का जवाब—'यस। ब्रेक इट, एंड अवॉयड फरदर हार्ट ब्रेक। इट लुक्स लाइक ए डूम्ड रिलेशनशिप, हाउएवर आई कांट हेल्प बट सेल्यूट योर एडवेंचर।' (हां, तुरंत इसे तोड़ दीजिए और आगे दिल टूटने से बचाइए। यह आपको बरबाद कर देने वाला कदम है। मै आपकी मदद नही कर सकती, लेकिन आपके इस साहस को सलाम करती हूं।)

इस प्रश्न के ठीक ऊपर बीना रमानी का लगभग खिलखिलाती रंगीन फोटो लगी है। इस सवाल-जवाब पर चर्चा थोड़ा रुककर पहले एक और सवाल देखें—सौंदर्य प्रतियोगिताओ के लिए चर्चित महिलाओं की एक अति प्रगतिशील पत्रिका में पर्ल पदमसी का ऐसे ही समस्या-समाधान का एक सवाल—'मैं 16 साल की हूं, मेरा इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा भाई 21 साल का है। घर मे मां नहीं है। मेरा भाई मुझे बहुत प्यार करता है। एक दिन उसने मेरे साथ शारीरिक सबंध कायम किया। यह सिलसिला एक साल से चल रहा है। मैं अपने पापा को बहुत चाहती हूं। मेरे पापा बहुत सुंदर और स्मार्ट है। मेरे भाई को मेरा पापा से ज्यादा बातें करना अच्छा नहीं लगता। मैं बहुत परेशान हूं। क्या करूं? (स.शु मुंबई)

पदमसी का जवाब छापने योग्य नही है। आप उत्तर के सतहीपन का अदाजा लगाइए, जब इतना खुला सवाल यहां दिया जा रहा है, तो पदमसी के जवाब में ऐसा क्या होगा? फिर भी उसे दिया नहीं जा सकता। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में

निजी समस्याओं पर आधारित सवाल-जवाब का सिलसिला सचमुच परेशान पाठकों से हमदर्दी और उन्हे सही राह दिखाने के लिए शुरू हुआ था, लेकिन आज यह एक सेलिंग प्वाइट है।

एक मिनट के लिए बीना रमानी के जवाब के बारे मे सोचिए। एक रईस युवक यदि एक स्वाभिमान से कमाने वाली गरीब लडकी को चाहने लगा और उसने रिश्ते की सीमा लाघ ली तो क्या उसे जवाब में यह राय दी जानी चाहिए कि 'यस, ब्रेक इट।' सिर्फ इसलिए, क्योंकि रईस लडके के मा-बाप को यह सूट नहीं करेगा। क्या प्यार की शुरुआत में मां-बाप की इजाजत ली गई थी और फिर इसमें बीना रमानी को ऐसा कौन-सा साहस दिखा जिसमें सैल्यूट मारने लगीं। पहाड की भोली-भाली महिलाओ के साथ पुलिसवालों द्वारा बर्बर बलात्कार के बाद मुजफ्फनगर के डी.एम अनत कुमार सिह के जवाब और बीना रमानी के जवाब मे क्या फर्क रह जाता है? मिस्टर सिंह ने भी तो यही कहा था कि कोई भी औरत अकेली होगी, तो उसके साथ बलात्कार नही होगा तो क्या होगा।

इसे केवल औरतो का दुर्भाग्य मानकर छोड़ देने से कुछ नही होने वाला। औरत के बारे मे इतनी गंभीर और घिनौनी बाते करने वाले इन समझदार लोगो की बुद्धि पर तरस खाकर इन्हें छोड भी नहीं दिया जा सकता। दरअसल तो तमाम औरतों को मिलकर ऐसी वाहियात बातें करने वालों की जुबान सीने को हरदम तैयार रहना होगा, ताकि ये सब ऐसी बेहयाई-भरे जवाब सोचने से भी डरें। चाहे वह रमानी हों या अनंत।

नई आर्थिक नीति के बाद नवधनाढ्य वर्ग की महगी पत्र-पत्रिकाओं का सेक्स, हेल्थ, फैशन, व्यंजन और कल्चर के नाम पर हजार सालों की अपनी सयुक्त परिवार की धारणाओं की खिल्ली उड़ाना ही होता है। फैशन की नामी पत्रिका 'क्लैडियस' के एक अक में महिलाओं की खुली परिचर्चा मे महिलाओं की ही अति गोपनीय मर्यादाओं और विश्वास की छीछालेदार की गई और यह बताने वाली महिलाओं के बारे में लिखा था कि वह एक हाउस-वाइफ है। मेरा सवाल है कि महिलाओ के लिए महिला आयोग बनाने का क्या मतलब रह जाता है, जब बीना रमानियां, पदमसियां, शोभा डेएं और इसी तरह की तमाम फाइव स्टार सोच वाली महिलाए ही यह करेंगी। क्षमा कीजिए, 'मानुषी' की सपादक मधु किश्वर को भी इन्ही सब चीजों में अब मजा आने लगा है। यहां सिर्फ 'नारि न मोहे नारि के रूपा' वाली शिकायत नहीं है।

सुप्रीम कोर्ट ने बलात्कारी युवकों की सजा घटा दी, लेकिन इस पर शोभा

डे, तवलीन सिंह, अनीस जंग, अमिता मलिक, कूमी कपूर, मृणाल पाडे, मधु किश्वर, बच्ची करकरिया आदि तमाम कॉलम लिखने वाली महिला पत्रकारों का खून क्यो नही खौला? किसी की प्राथमिकता में यह विषय नही आया।

क्या इन सबसे लाख दर्जे बेहतर वह अगूठाछाप भंवरीदेवी नही है, जिसका खून तो खौलता है। हम लाखों-करोड़ों बेसहारा महिलाओं के साथ हमदर्दी न रख सकें, एक बार यह भी क्षम्य हो सकता है, लेकिन बीना रमानी की तरह कम से कम सेल्यूट तो न करें। मुझे किसी ने बताया कि 'हैलो जिंदगी' बनाने वाली नलिनी सिंह अपने फुटेज को लाइवली बनाने के लिए महिलाओं (ऑब्जेक्ट) को तब तक कुरेदती रहती है जब तक वह फफककर रो नहीं पड़ें। यह उनका सेलिंग प्वाइट है। वरना इसका क्या मतलब है कि निम्न-मध्यम वर्ग की तमाम दुखती रगों को परदे पर दिखाकर इसके उपसंहार में पूछे गए सवालों के जवाब देने वालों को हवाई जहाज की सैर करवाई जाती है। आधे घंटे का 'हैलो जिंदगी' देखने के बाद जब दर्शक सचमुच अभागे लोगों के दर्द में शामिल हो जाता है, तब नलिनी सिह हवाई यात्रा का यह प्रपोजल लेकर प्रकट हो जाती हैं और इसके लिए नलिनी सिंह की तारीफ की जाती है कि वाह, भाई वाह! क्या प्रोग्राम प्रोड्यूस किया है!

बीना रमानी, पदमसी और नलिनी सिंह को अपनी मार्केटिंग पर भले ही शर्म न आए, लेकिन मुझे शर्म आती है कि मैं भी उसी नारी समाज से हू जहां पुरुष ही नहीं, नारी भी नारी का शोषण करती है।

‘अशुद्ध’ मानसिकता या औरत?

मां काली, मां दुर्गा, मां सरस्वती, मां लक्ष्मी, थोडी देर के लिए इनमें नई देवी संतोषी मइया को भी शामिल कर लेते है। इन सबकी क्या उमर होगी भला? हम सभी रोज इनकी मूर्तियां और कैलेंडर में बने इनके चित्र देखते हैं। चित्रों और मूर्तियों को सुंदरता के आधार से देखें तो किसी भी देवी मां की उमर तीस साल से ज्यादा नहीं लगती। ज्यादा से ज्यादा 35 साल कह सकते हैं। प्राचीन मंदिरो मे उकेरी अन्य प्रस्तर देवियों, अप्सराओं का शरीर–सौष्ठव भी लगभग इसी उमर के आसपास दिखता है, बल्कि इससे कम ही होगा।

हिंदू संस्कृति ही नहीं, ग्रीक और ईसाई धर्म में भी लगभग सभी देविया युवा ही है। देवियों की उमर का हिसाब–किताब मैं इसलिए आपके सामने रख रही हूं, क्योंकि केरल के शबरमाला स्थित ‘आयप्पा’ के मंदिर में 10 साल से 50 साल के बीच की महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। यह मंदिर जिस जिले में आता है, वहां की जिलाधिकारी कुमारी वल्सल पुजारियों और पंडो के इस तानाशाही धर्मादेश के खिलाफ खडी हुई। 42 साला कुमारी वल्सल केरल हाईकोर्ट में गईं और जीतीं।

जो पाठक अखबार–पत्रिकाओं आदि से गुजरते है, उनके पास एक न्यूनतम सोच होती है। लेकिन महिला एक ऐसा विषय है, जिसमें मूर्ख का दिमाग भी खूब चलता है। आप समझ रहे होंगे कि 10 साल से 50 साल की औरत समाज में क्यों इस लायक नहीं होती कि वह मंदिर में घुस सके। यह समय उसके मासिक चक्र का होता है। निश्चित रूप से यही चक्र पुजारियों और पंडों के इस धार्मिक दुनिया में आने में एक अहम रोल निभाता है। जहा आकर वे इसी प्राकृतिक क्रिया के कारण महिला जाति को ‘अशुद्ध’ करार देते हैं। सोचिए, कितना भयावह है! यहां दक्षिण के उन्हीं मंदिरो में लडकी आजीवन कुंवारी रहकर पुजारियो और पडो की रखैल (देवदासी) बनी रहे तो उसके मंदिरा मे प्रवेश से मदिर अशुद्ध नही होता।

दक्षिण के लिए यह बात भी भुलाई नहीं जा सकती कि वहां की कुल

अर्थव्यवस्था की उपलब्धियो को अर्जित करने में महिलाओं का भारी योगदान है। अस्सी प्रतिशत से अधिक महिलाएं वहा आर्थिक रूप से सुदृढ़ है, और विभिन्न व्यवसायों या रोजगार से जुड़ी हुई हैं।

'धर्मयुग' में सुदर्शना द्विवेदी ने इतिहास के किसी हिटलर का हवाला देते हुए एक बयान दर्ज किया था, जो मुझे कभी नहीं भूलता। बयान है कि औरत सत्रह साल की पैदा होनी चाहिए और तीस साल में मर जानी चाहिए। इस दौरान वह मानव समाज का जितना भला कर जाती है, उतना बाकी जीवन की नहीं कर सकती। अर्थ यह कि औरत एक कारतूस से ज्यादा कुछ नहीं। उसका यौवन ही उसके स्त्रीत्व की एकमात्र पूजी है और जब तक मर्द उसे भोग सकता है, तभी तक वह जीवित रहे। यानी औरत का जीवन केवल मर्द के भोग तक ही सीमित रहना चाहिए।

विश्व हिंदू परिषद् के लोग तथा मुस्लिम कठमुल्ले कहते हैं कि धर्म के मामले कोर्ट मे नही ले जाए जाने चाहिए। यह आस्था की बात है, इसे तर्क से नहीं जोडा जाना चाहिए। लेकिन जरा सोचिए कि वत्सल कुमारी, बल्कि इसी बहाने पूरे महिला समाज की बात अगर कोर्ट नही समझता तो आस्था के चलते महिलाएं एक प्राकृतिक प्रक्रिया के अपराध-बोध से ग्रसित रहतीं और लंबे समय से चले आ रहे इस अपमान को सहती रहती।

सर्वेक्षण बताते हैं कि 76 प्रतिशत भारतीय लड़कियां मासिक चक्र के दिनों मे भयानक डिप्रेशन का शिकार हो जाती हैं। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि भारतीय परिवारों में मासिक को घृणित नजर से देखा जाता है। औरतो को इस वक्त अंधेरी-सीलनभरी जगहों मे मर्दो के साये से दूर छिपकर रहना होता है। इन दिनों उन्हे इस्तेमाल करने के लिए गदे चिथड़े दिए जाते हैं, लिहाजा तमाम यौन संक्रमण उन्हें घेर लेते हैं।

जबकि मासिक चक्र है क्या— यह भी तो आज तक नहीं सिद्ध हो पाया। वैज्ञानिक आधार पर यदि देखा जाए तो मासिक चक्र का सीधा-सा संबंध स्त्री के गर्भ धारण करने से है। तमाम परीक्षणों और वैज्ञानिक अ.धार पर केवल इतनी पुष्टिभर हो पाई है कि मां बन सकने वाली उमर में प्रतिमाह रक्त-कणिकाओं का एक जाल या हम कह सकते है, महीन झिल्ली जैसी गर्भाशय के अंदर चारों तरफ फैल जाती है। इस प्रक्रिया के जरिये एक खास तरह का पदार्थ उत्पन्न होता है जो गर्भ धारण करने में सहायक होता है। गर्भ न ठहरने की स्थिति में यह जाल या झिल्ली ही रक्त-स्राव के माध्यम से नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ

साल पहले एक अमेरिकी युवा स्कॉलर ने एक थ्योरी भी दी थी जिस पर बहस हुई। लेकिन अतत: यह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी। दूसरी स्तनजीवियों में यह चक्र क्यों नही पाया जाता? कुल मिलाकर आज भी इस का सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार नहीं है। लेकिन एक सुदृढ़ सामाजिक विचार कि महिला इसके चलते 'अशुद्ध' हो जाती है।

आत्मविश्वास बढ़ाना या तोड़ना?

रविवार को दूरदर्शन पर आने वाले मूकों और बधिरो के समाचार में एक बार खबर दी जा रही थी कि मुंबई सरकार मानसिक रूप से विकलाग युवतियों के गर्भाशय निकाले जाने के मामले की जाच करवाएगी। आगे समाचार मे इसी घटना की पृष्ठभूमि के बारे मे इशारों से न्यूज रीडर बता रही थी। मूकों और बधिरों के समाचार दूरदर्शन पर सरकार ने इस मशा के साथ शुरू किए थे कि इसके मूक-बधिरो को देश-दुनिया की जानकारी मिलेगी और समाज में उनका खोया हुआ आत्मविश्वास लौटेगा। सोचिए, विकलागों के साथ सरकारी डॉक्टरों द्वारा गर्भाशय निकालने वाली खबर सुनकर उनका आत्मविश्वास कितना बढा होगा!

दिल्ली में अब प्रति वर्ष मूक-बधिर महिलाओं की सौदर्य प्रतियोगिता का चलन शुरू हो चुका है। इसे आयोजित करवाने वाली एक संस्था डी.एफ.डी.डब्ल्यू (डेलही फाउंडेशन ऑफ डेफ वूमेन) की सेक्रेटरी मिस रूनी कूरियन का कहना है कि 'इससे गूगी-बहरी महिलाओं में आत्मविश्वास बढेगा। पिछले कई सालों से हम इस प्रतियोगिता के लिए स्पांसर ढूंढ रहे थे। इस साल हमे स्पांसर करने वाली कंपनी मिल गई तो हम यह प्रतियोगिता करवा सके।' प्राकृतिक शाप की शिकार इन महिलाओं के साथ हुए भोंडे मजाक को दिल्ली के लगभग सभी अभिजात्य अखबार पहले पन्ने पर छापते हैं। प्रतियोगिता मे मूक-बधिर महिलाओं का आई.क्यू. टेस्ट होता है जिसका प्रतियोगिताओं के इशारों से जवाब देना होता है। प्रतियोगिताओं में 'फिगर के अनुपात' को भी मार्किंग का आधार बनाया गया है।

पुरुषों में से बहुत सारे लोग हो सकता है इन भोडी प्रतियोगिताओं से सहमत हों क्योंकि भरे हॉल में लोग तालिया तो बजा ही रहे थे। यह उसी तरह है जैसे गुरुदत्त की फिल्म 'कागज के फूल' मे एक दृश्य की शूटिंग के लिए स्टूडियो के बाहर बैठे भिखारी को भी शामिल किया जाता है, क्योंकि दृश्य में भिखारी की जरूरत थी। फिल्म की बाकी कहानी पर न जाए तो क्या इस तरह काम करवा लेने से भिखारी का आत्मविश्वास बढ जाएगा। मिस यूनिवर्स और मिस वर्ल्ड प्रतियोगिताएं पहले अमेरिका और इंग्लैंड में होती थीं, लेकिन वहां के

महिला संगठनो के कडे विरोध के कारण आयोजकों को इन दोनों देशो से खदेडा गया। 'मानुषी' की सपादक मधु किश्वर बताती हैं कि जब वह मिराडा कालेज छात्र यूनियन की अध्यक्ष थीं तब उन्होंने वहां हर साल होने वाली सौंदर्य प्रतियोगिता को बद करवाया था, लेकिन उनके हटने के बाद ये फिर शुरू हो गई। सोदर्य प्रतियोगिताओ पर कई लंबी, गभीर वैचारिक बहसो का निष्कर्ष यही रहा हे कि यह औरत को 'माल' बनाने की एक खूबसूरत साजिश है।

लेकिन बजाय इन्हे रोक पाने के आज हालत यहां तक पहुंच गई कि गूगी-बहरी लड़किया भी ग्लैमर के इस जाल में फंसाई जा रही हैं। प्रतियोगिता के आयोजक आत्मविश्वास बढ़ने की बात करते है, जरा जाकर पूछिए उन मूक-बधिर लड़कियों के मां-बाप से कि बेटी के साथ यह हादसा कैसे हुआ—जवाब मिलेगा कि यदि हमारे पास पैसे होते तो हम अपनी बिटिया का इलाज करवा सकते थे। जी हा, आज ऐसे तमाम कोर्स है जिनमे चरणबद्ध और धैर्य के साथ दिए प्रशिक्षण से मूक लोगों ने कामचलाऊ बोलना सीखा, बधिरो के लिए तो तमाम यंत्र आ ही गए हैं। यह कोई गंभीर समस्या नहीं है। प्रतियोगिता के आयोजकों ने भी माना है कि कुछ लड़किया फाइनेंशियली वीक बैकग्राउंड यानी गरीब परिवारो की थी। अच्छा यह भी छोड़िए, सोचिए उन बाकी लड़कियों के बारे में जो इन प्रतियोगिताओ मे अपना सब कुछ दिखाने के बाद भी कोई इनाम नहीं पास सकीं। क्या इससे उनका आत्मविश्वास मजबूत होगा? दरअसल हम सब सवेदना के साथ हो रहे क्रूर मजाक में शामिल है। पहले नबर पर आई लड़की को मिस साइलेंट डेलही का खिताब दिया जाता है। क्या है यह? एक लडकी की विवशता को ही उसका गुण बनाया जा रहा है।

इतने ही पैसे से मूको और बधिरों की शिक्षा, उनके इलाज, उनमें आत्मविश्वास पैदा करने के लिए सचमुच कोई कार्यक्रम होता तो शायद मूक-बधिरों को वडी सख्या में फायदा मिलता है, जो न केवल वर्तमान समय में बल्कि लबे अरसे तक सैकडों की तादाद में उन्हे मदद पहुंचाता रहता। देश के लाखो मूको व बधिरो मे सभी 18 साल की लडकियां ही तो नही है, बूढ़े हैं, बच्चे है ओर ऐसे लोग है जो किसी तरह अपना पेट भी नहीं भर पा रहे है। यह सौंदर्य प्रतियोगिता उन्हें कौन-सा सदेश दे रही है—इस पर हमें सोचना चाहिए। कम से कम एक मिनट ही, वरना यह तो आदिकाल से पुरुषो को सूट करता रहा है कि सुदर औरत गूंगी हो। कहीं यह वही तो नहीं।

नंगेपन से दूर सौंदर्य प्रतियोगिता

सौंदर्य प्रतियोगिताओं के नाम पर, स्विमिंग सूट में स्त्री देह की कमनीयता को 'प्रोडक्ट' मे बदलने की वकालत कर रहे, अभिजात्य, नवधनाढ्य, पश्चिमपरस्त लोगों के मुह पर लॉस एंजिलस में हुआ एक छोटा-सा समारोह करारा थप्पड है। लॉस एंजिलस में रह रहे भारतीयों ने भी एक सौंदर्य प्रतियोगिता ही की थी, लेकिन इसमें मिस वर्ल्ड या मिस यूनिवर्स बनकर प्रायोजक बहुराष्ट्रीय कंपनियो की गुडिया बनने की चाह नहीं थी। चाह थी—अमेरिका में रहकर अपनी जडों से जुडे रहने की। अपनी पहचान पर गर्व करने की।

छोटे से, बिना तडक-भडक वाले मंच पर प्रवासी भारतीयों की ये लड़कियां साड़ी का बडा-सा पल्लू लिए हुए पारंपरिक भारतीय आभूषण और हाथों में मेंहदी लगाए हुए थीं। इस प्रतियोगिता मे भाग ले रही तमाम लडकियो ने तो भारत देखा भी नहीं है लेकिन उनके सपनों में भारत ही बसा था। गौर करने वाली बात यही है कि ये सारी प्रतियोगी लड़कियां करोड़पति, बल्कि डॉलरपति बाप की बेटियां हैं। दुनिया के सबसे महगे स्विमिंग सूट भी उन्होंने पहने हैं और खुलेपन का वह क्लाइमेक्स भी देखा है जिसे लेकर हमारे यहा अखबारों में पत्र-लेखी पाठक हाय-हाय करते हैं। जबकि देश में या विदेशों में होने वाली मिस इडिया/मिस यूनीवर्स टाइप प्रतियोगिताओं के कार्यक्रम की छोटी-सी झलक हो सकता है, आपने भी देखी हो। फेमिना की मिस इंडिया प्रतियोगिता की तरह न तो इसमें अश्लील कैमरा एंगल थे, न ही प्रतियोगी लड़कियां दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरो में होने वाले तमाम ब्यूटी कांटेस्टो की तरह भोंडी अदाएं पेश कर रही थीं।

वास्तव में सकारात्मक या नकारात्मक जैसा कुछ स्पष्ट नही होता। पहले यह आपके इरादों में पनपता है। लॉस एंजिलस में रहकर ही हजारों सालों से चली आ रही भारतीय संस्कृति की व्यापकता को ठीक तरह से समझा जा सकता है। सही तो यह है कि दुनिया की किसी भी संस्कृति में ऐसा कुछ भी नही है जो भारतीय संस्कृति में न हो। इसमे वह नकारात्मकता भी शामिल है, जिसका प्रयोग

कर और फल भुगतकर सैकड़ों साल पहले हम उससे निकल चुके हैं। उदाहरण के लिए— अब तक के अनगिनत नारी परिधानो में साडी को सबसे ज्यादा कमनीय पोशाक माना गया है। यह भारतीय नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्वीकारोक्ति है। साड़ी से कमनीयता का मतलब उसी सेक्सीपन से है जो स्विमिंग सूट में भी नही आ पाता। लॉस एंजिलस में रह रहे भारतीय मूल के लोग हम भारत मे रह रहे भारतीयों से ज्यादा भारतीय इसीलिए हैं, क्योंकि वे पश्चिम की खोखली भोगवादी संस्कृति की निरर्थकता को रोज पास से देखते है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक जगह रचना की व्याख्या करते हुए कहा कि कृति की श्रेष्ठता इसी मे है कि वह कितने कर्व लिए है। यह बात स्त्री सौदर्य के साथ भी लागू होती है। खुलापन एक तरह से स्त्री सौदर्य की सपाट अभिव्यक्ति है। आदिम युग में यही तो था! लेकिन मनुष्य ने अपनी कल्पनाशीलता से उसे सजाया-संवारा और यह कल्पनाशीलता भारत में अपने चरम पर मानी जाती है। डेढ-दो कोस में पानी-बानी व पहनावा बदल जाना सिर्फ एक मुहावरा नही है, यह हमारी विविधता और बौद्धिक समृद्धि का परिचायक भी है। लेकिन इसे यहा रहकर हम उस तरह से नहीं समझ पाते, जिस तरह से हम ब्रिटेन, बर्लिन या न्यूयार्क में समझते हैं। भारत को तो विदेशी अपने-आप में पूरी एक दुनिया मानते हैं। सिर्फ चमडी के रंग से कोई किसी देश का वासी नही हो जाता।

एशियाई मूल के सारे लोग एक जैसे होते हैं, लेकिन वे अपनी बोली और पहनावे से ही अपनी मातृभूमि का प्रतिनिधत्व करते हैं। इससे ज्यादा दुःखद क्या हो सकता है कि फेमिना के मिस इंडिया शो में भारतीय लड़कियां अर्धनग्न होकर इतराती है और पश्चिम में भारतीय लड़कियां अपने भारतीय होने पर गर्व कर रही हैं। कुछ लोग इसमें अपनी आर्थिक आंकड़ेबाजी की टांग अडाने की कोशिश कर इसे भी जायज ठहरा सकते हैं या ये लोग यह भी कह सकते है कि लॉस एंजिलस मे साड़ी पहनना कंट्रास्ट को उभारता है, लेकिन ऐसे लोग उस भारतीय मुसकान के बारे में क्या कहेंगे जो प्रवासी भारतीयों के चेहरों से झलक रही थी या उस ललक के बारे मे क्या कहेगे जो लॉस एंजिलस की लड़कियों में भारत के बारे में थी?

'मेरा भारत महान्' कहने और इसके होने में सचमुच अभी कितना अंतर है।

नहीं चाहिए लव लेटर

इंडियन पीनल कोड में किसी लड़की से इशारेबाजी करना, फब्बतियां कसना या उसे छेडने को अपराध माना गया है और इसके लिए तमाम धाराए हैं, लेकिन राजस्थान उच्च न्यायालय ने इन तीनों चीजों से एक कदम आगे जाकर लडकी को 'लवलेटर' लिखने को अपराध नहीं माना है, बल्कि फैसले की शब्दावली लवलेटर लिखने को उत्साहित करने के पक्ष में ज्यादा है।

मामला आपको मालूम ही होगा, एक क्लास में एक छात्र ने अपनी कक्षा मे साथ पढ़ने वाली लडकी को लवलेटर लिखा। लड़की ने प्रिंसिपल से इसकी शिकायत की। प्रिंसिपल ने लड़के के परीक्षा मे बैठने पर रोक लगा दी। लड़के का पिता मामले को अदालत में ले गया। अदालत ने अतरिम तौर पर छात्र को परीक्षा में बैठने की छूट तो दे दी, लेकिन साथ ही यह निर्देश भी दिया कि छात्र का परीक्षाफल रोक लिया जाए। मामला राजस्थान उच्च न्यायालय तक पहुंचा, जहां लड़के को अपराध से बरी करते हुए यह फैसला दिया गया कि लवलेटर लिखना शारीरिक आकर्षण का परिणाम है और इसमें कुछ भी गलत नहीं है। पूरा मामला अखबारों में छपा और चस्के लेकर पढ़ा गया। एक अखबार ने अपने सपादकीय में कालेज प्रबंधन को ही अपराधी ठहरा दिया। लेकिन उच्च न्यायालय के फैसले पर गहराई से विश्लेषण करें तो पहली बात यही है कि प्रेमपत्र लिखना शारीरिक आकर्षण का परिणाम नहीं होता। यह नितांत निजी, आपसी सहमति और परस्पर सम्मान देने को शब्दो में पिरोना है। संक्षेप में इसे हम 'चाहना' भी कहते है। लेकिन यदि यह अनचाहा हो तो किसी की निजता पर सीधा आक्रमण है और उसे मानसिक रूप से बहुत आहत करता है।

राजस्थान उच्च न्यायालय ने तो लवलेटर को हरी झंडी दे दी, लेकिन इसकी सीमा के बारे मे जरा भी नहीं सोचा। उदाहरण के लिए— आज तमाम फिल्मे पवित्र प्रेम पर आधारित हैं, लेकिन उनके सीन ब्लू फिल्मों को पछाड़ते हैं। इसी तरह किसी लडकी के बारे में आप थोडी-सी जानकारी जुटा लें और प्रेमपत्र के बहाने उसे ब्लैक मेल करना शुरू कर दें, तो न्यायमूर्ति के अनुसार, इसमें कुछ

गलत नही है, लेकिन उस लड़की का जीना दूभर हो जाएगा और वह आत्महत्या की कगार पर भी पहुंच सकती है। (हालांकि न्यायालय के अनुसार तो अब आत्महत्या भी जुर्म नहीं है।) न्यायालय को शायद नहीं पता कि लडकियो को परेशान करने के लिए रजिस्टर्ड लवलेटर भेजे जाते हैं, जिनकी पावती लडकों तक पहुच जाती है और वह लड़की के लिए सिरदर्द बन जाता है।

हमारे सामने ऐसे केस क्या कम आते हैं जब शादीशुदा औरत को उसका पूर्व प्रेमी उसके पति तक पत्र पहुंचाने की धमकी द्वारा उसे लगातार ब्लैकमेल करता है?

दिल्ली के एक जिला न्यायालय ने फैसला दिया था कि 'चोली के पीछे' गाना अश्लील नही है। न्यायाधीश महोदय ने कहा कि उन्होंने कई बार गाने को चलवाकर देखा लेकिन उन्हे इसमे कुछ भी अश्लील नहीं लगा। जबकि यह गाना बसो में बजना शुरू होता है तो महिला सवारिया अपने गंतव्य से पहले ही उतरने पर मजबूर हो जाती हैं। इसकी वजह यही है कि एक लोकगीत को तोड-मरोड़कर बनाया गया यह गाना बेहद अश्लील है और स्त्री सम्मान पर बर्बर चोट है। आपकी अम्मा की चोली के नीचे क्या रहा है, यह आप भली-भांति जानते हैं, मगर जब माधुरी दीक्षित अपने वक्ष उचकाकर यह गाती है तो उसका अर्थ निहायत फूहड और अश्लील दिखता है। लवलेटर वाला फैसला भी इसी फैसले जैसा है। सुनने मे और कहने में तो बहुत अच्छा लगता है कि दुनिया मे चारों तरफ प्रेम ही प्रेम हो लेकिन इसकी जमीनी असलियत यह नहीं है। आज लडका प्रेम तो हर लडकी से करना चाहता है, लेकिन शादी वहीं करना चाहता है जहां मां-बाप उसकी बोली लगाते हैं। प्रेम के नाम पर मध्यम वर्ग की 95 प्रतिशत लडकिया ठगी जाती है।

यह ठीक है कि प्रेम विज्ञापन देकर नही किया जा सकता लेकिन इसे सार्वजनिक मखौल बना देना भी इसे अपमानित करना है। वैसे यह खुलेपन का दौर है। सीमा कहां तक जाएगी, कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन कुछ आदरणीय संस्थाओं पर हम सबका भरोसा बना रहता है। न्यायपालिका एक ऐसी ही संस्था है। उससे सिर्फ महिलाओं की ही नहीं, बल्कि सभी की यही अपेक्षा होगी कि वह शरीर को मात्र आकर्षण की चीज न माने। महिलाओ की तो सारी लड़ाई इसी बात की है कि उन्हें मात्र देह न माना जाए। एक जिम्मेदार संस्था इसमें सहायता न करे तो कम से कम इसके विरुद्ध तो न हो। प्रार्थना के शब्दों में सभी महिलाओं की तरफ से राजस्थान उच्च न्यायालय से मेरी यही विनती है कि वह अपने इस फैसले पर फिर से विचार करे, दया होगी।

इज्जत लौटाने का शार्टकट

तुर्की सरकार ने घोषणा की है, वह अपने यहां की वेश्याओं का उद्धार करेगी। इसके लिए कार्यक्रम बनाया गया है, जिसमें रिटायर्ड वेश्याओं को रहने के लिए घर, पेंशन और दूसरी सुविधाएं दी जाएंगी। इसके लिए वेश्याओं को सिर्फ इतना करना है कि उन्हें अपना नाम बदलना पड़ेगा। ऐसे समय मे, जब कोपनहेगन मे दुनिया-भर के मठाधीश समाज पर चर्चा करने जा रहे हैं, यह छोटी-सी खबर तथाकथित उद्धार और कल्याण कार्यक्रमों का असली सच है।

यहां इस बात का कोई मतलब नहीं कि तुर्की में कितनी वेश्याएं है और कितनी इस कार्यक्रम में लाभान्वित होंगी; बात इसकी है कि कोई औरत वेश्या बनती क्यों है? इस देह व्यापार को लेकर दुनिया भर में तमाम मास्टर पीस नॉवेल लिखे गये है। आज भी इस नारकीय स्थिति पर स्तरीय साहित्य लिखा जा रहा है। उन सबको पढ़ जाइए या इस विषय पर बनी डाक्यूमेंटरी देख डालिए—निष्कर्ष सबका यही है कि हर महिला वेश्यावृत्ति को तभी चुनती है, जब उसे मौत या वेश्यावृत्ति में से किसी एक को चुनना होता है। वेश्या का कोई नाम नही होता, इस धंधे में सिर्फ उसकी उमर ही उसका नाम होती है। यूरोप के लोग तुर्की को यूरोप का कोढ़ कहते हैं। जरूरी नहीं कि यह सच हो, लेकिन इतना जरूर है कि तमाम खुलेपन के बावजूद तुर्की भी अंततः एक इस्लामी देश ही है और एक इस्लामी देश में औरत की स्थिति पैर की जूती की ही मानी जाती है।

शौक से या अपने मजे के लिए कोई महिला इस धंधे में नही आती। हालांकि कुछ लोग ऐसा मानते हैं—यह उनके अंदर की पशुता है। तुर्की की अभागी महिलाओ (वेश्याओ) को आवास, पेंशन की सुविधाएं—सरकार की तरफ से मिलेंगी ऐसी भलमनसाहत पहले मिल जाती तो वे सालों नरक क्यो भोगतीं। सोचिए, यह कितनी बड़ी क्रूरता है कि औरत की पूरी अस्मिता को एक सरकार ने उसके नाम से तौल दिया। यानी तुर्की की सरकार के हिसाब से वेश्याए नाम बदल लेंगी तो उन्हें उनका सम्मान और सामाजिक हैसियत फिर से वापस मिल जाएगी! यदि कोई समाज किसी को नाम बदलने पर स्वीकार करता है तो

एक तरह से वह उस इतिहास से मुंह मोडता है, जिसका विश्लेषण कर उसे सबक लेना चाहिए।

औरत को वेश्यावृत्ति के रास्ते से हटाना और वेश्यावृत्ति को खत्म करना दो अलग-अलग बातें हैं। तुर्की की सरकार ने यह व्यवस्था बूढ़ी वेश्याओ के लिए की है, उसने उन नाबालिग लड़कियों और किशोरियों के लिए क्यों नहीं कुछ सोचा। जो जान नहीं पातीं कि दुनिया में नरक के अलावा और भी कुछ होता है। यदि कोई समाजशास्त्री इस पूरी घटना को व्यापक परिप्रेक्ष्य देकर इसका अध्ययन करे, तभी पूरी बात सामने आ पाएगी कि यह किस दिमाग की उपज है। अपराधी नाम बदलकर इज्जत की जिंदगी जी लेते हैं, ऐसा सुना गया है, लेकिन यहां तो भुक्तभोगी को ही नाम बदलने को कहा जा रहा है और वह भी सरकार कह रही है।

मोटे तौर पर देखा जाए तो यह योजना पहली नजर में सभी को अच्छी लगती है कि वेश्याओ के लिए किसी ने सोचा तो। लेकिन किस तरह सोचा, क्या यह सोचना महत्त्वपूर्ण नही है। लकड़ी काटकर पेट भरने वाली आदिवासी महिला या मैला साफ करके दो जून रोटी खाने वाली औरत अपना नाम सोनिया गांधी रख ले तो क्या उसे वह इज्जत मिल जाएगी? तुर्की सरकार को सचमुच अगर वेश्याओं की मदद ही करनी है तो वह इसे फैक्टरी नियमों की तरह नहीं, समाजशास्त्रीय संवेदनाओं के साथ देखे। इज्जत वापस दिलाना महत्त्वपूर्ण नही, महत्त्वपूर्ण है इज्जत न जाने देना। इसी में किसी भी सरकार की इज्जत है, चाहे वह तुर्की की हो या भारत की।

'औरत के बारे में' धारावाहिक कुंठा

कुछ साल पहले तस्लीमा नसरीन ने बांग्लादेश के एक जाहिल कठमुल्ले ने निकाह करने का प्रस्ताव रखा था। आपको याद हो तो तस्लीमा ने निकाह के लिए हामी भरते हुए अपनी दस शर्तें रखी थीं। तस्लीमा की यह शर्तें विभिन्न संवाद समितियो ने दुनिया-भर में प्रसारित की थीं। इस्लाम के तमाम हदीसबाजो के मुंह से तब बोल नहीं फूटा था। कोई पुरुष पाठक है जिन्होने 'हंस' के एक अक में औरत के बारे में लिखते हुए नारियो को सलाह दे डाली है कि यदि उन्हें मादा होना नहीं रुचता तो वे अपना लिंग परिवर्तन करवा सकती हैं।

महिला के बारे में जहर उगलने में इस शख्स ने अपनी मां के पिए दूध की पूरी ताकत लगा दी है। अकेले पिछले 5 सालों में 60 लाख से ज्यादा गर्भ इसलिए गिरवा दिए गए क्योंकि बापों ने अल्ट्रासाउंड स्क्रीनों पर पहले ही देख लिया था कि वे इस बार भी लडका नही पैदा कर पा रहे है। इस जारी हत्याकांड के बावजूद इस हूस का मानना है कि भारत मे स्त्री सम्मान यथायोग्य है। चुन-चुनकर इस पुरुष ने स्त्रियों के बारे मे कुछ प्वाइंट जुटाए हैं। हालांकि इनमें से एक भी नया नहीं है, फिर भी मैं इन उठाए गए 12 प्वाइंट्स का स्पष्टीकरण देना चाहती हूं। (इन्हे जवाब न समझें। विकृत दिमाग के लोगों को तर्क की बात समझ में आती होती तो क्या था)?

पहले और दूसरे प्वाइंट में कहा गया है कि स्त्री अत्याचार मे स्त्रियां ही आगे है, बहुओं को सासें ही जलाती हैं। लेखक ने स्त्रियों को नीचा दिखाने के लिए इन दो बिंदुओं के समर्थन में टांट जुटाए हैं। एक लाइन में मैं यह कहना चाहती हूं कि अपराधी की कोई जाति या लिंग नहीं होता। सुरसा, ताड़का से लेकर पूतना और आज की फूलन देवी तक—किसी महिला संगठन ने इनका सम्मान किया हो तो बताएं। तीसरे और चौथे नंबर के प्वाइंट में आरोप है कि स्त्री स्त्री को बस, रेल या ट्राम में सीट नहीं देती, छेड़खानी की शिकार हो रही लड़की की मदद स्त्रियां नहीं करतीं। इसके बारे मे मैं यही कहूंगी कि लेखक में हिम्मत हो तो वह मेरे सामने किसी लडकी से बदतमीजी करने की जुर्रत करके

कभी भी जब इच्छा हो (अनुभव तो होगा ही) जवाब पा सकते है। स्त्री स्त्री की मदद न करती तो शायद आज स्त्री होती ही नहीं। स्त्रियां स्त्रियो की वाकई मदद करती हैं, दिखावा नही। पाचवे व छठे प्वाइट में लेखक की कुठा है कि स्त्रिया बनाव-ठनावपसद होती है, दो घटे मेकअप करती है, उत्तेजक पोशाकें पहनती है। मेरा कहना है कि स्त्री पुरुष की जागीर नही है, उसके अपने सपने है और उसे अपने सपने साकार करने का पूरा हक है। उत्तेजक पोस्टरों पर महिला संगठन रोज कालिख पोतते हैं। पत्र-लेखक अपने मोतियाबिंद का इलाज करवाएं और इस नेक काम मे मदद करे। पिछले दो साल से मैं ऐसी 10 घटनाए गिनवा सकती हूं जिसमें दर्जनो राक्षसो ने स्त्रियों को निर्वस्त्र करके गांव और कस्बों में घटो घुमाया। लेखक को यह नही दिखा? केवल मेकअप करती स्त्रियां ही दिखी।

सातवे प्वाइंट मे लेखक की कुंठा एक बार फिर फूटी है। आठवे में कहा गया है कि स्वर्णाभूषण स्त्रियों की कमजोरी हैं। इस बचकाने आदमी को कौन बताए कि अकेले दिल्ली शहर में प्रतिदिन दो दर्जन ऐसी गरीब महिलाएं पुरुष अत्याचार का शिकार होती हैं, जिनके बदन पर सोना तो क्या, ढंग का कपडा भी नही होता। लेखक ने इसका जिक्र क्यों नहीं किया—पति पर विपत्ति आने पर सबसे पहले औरत अपने आभूषण ही उतारकर उसे बेचने के लिए देती है। नवे प्वाइंट में इसमें लिखा है कि लाखों ऐसे जोड़े है, जिनमे पुरुष एम.ए. है और स्त्रियां अंगूठाटेक। हां, ऐसा है और इसलिए है क्योंकि कोई पुरुष चाहता ही नही कि उसकी पत्नी पढ़े-लिखे और सोसायटी मे उठने-बैठने लायक बने। इस काम के लिए हर पुरुष एक स्टेपनी चाहता है। जहा चाह है वहां आप वरिष्ठ कवि त्रिलोचन की पत्नी का उदाहरण ले सकते हैं, जो विवाह के समय अंगूठाटेक थी और बाद में गलत उच्चारण के लिए त्रिलोचनजी को टोक देती थीं। जहां पत्नी ज्यादा पढी-लिखी व कामकाजी होती है वहां प्रायः निठल्ले पति सिर्फ दारू पीते है।

दसवें प्वाइंट में इस सज्जन ने लाखों पुरुषों की दुहाई दी है, जो पत्नियो की वजह से अपनी मरजी से बनियान तक नही खरीद सकते। इस पर क्या कहू, मजबूरी है। पुरुष तो अपनी मरजी से पैदा भी नही हो सकते।

ग्यारहवां प्वाइंट लेखक की निजी कायरता है या तो आप अपने लिए मर्द शब्द का प्रयोग बंद करें या इस तरह की बेचारगी न व्यक्त करे। बारहवे प्वाइट के बारे में मैं यही कहूगी कि झगडा बाप-बेटे मे भी होता है। कृपया इसका नारी

मुक्ति या नारी विमुक्ति से कोई सम्बंध न जोडे।

औरत का शोषण नहीं हो रहा, वास्तव मे तो उस पर जुल्म हो रहा है। लेखक की ये बातें भी क्या एक तरह का हमला नहीं हैं? इन जैसो को कौन बार-बार बताएगा कि इस देश मे 5 लाख मे ज्यादा नाबालिग बच्चियों में से प्रत्येक कोठों पर प्रतिदिन बाप की उमर के 15 पुरुषो को संतुष्ट कर रही है।

रेप सीन की रायल्टी

अपने साथ हुए जिस अत्याचार और अपमान का बदला लेने के लिए फूलन देवी ने 20 बेकसूरों को लाइन मे खड़ा करके गोलियों से भून दिया था, उस अपमान को उसी फूलन ने 20 लाख रुपये में बेच दिया। खबर आपको मालूम ही होगी कि बी बी.सी के चैनल फोर के लिए बनी 'बैंडिट क्वीन' फिल्म के निर्माताओ से फूलन ने समझौता कर लिया--एक गंदा समझौता। जिसके चलते भारत को छोडकर बाकी दुनिया-भर के दर्शक उन चार दृश्यों को चटखारे लेकर देख सकेंगे, जिन पर फूलन को आपत्ति है। फूलन ने अपनी आपत्ति के अधिकार कैश करवा लिए हैं। लेकिन बैंडिट क्वीन को शायद यह नहीं पता कि न मालूम कैसे इस फिल्म का पूरा का पूरा कैसेट भारतीय बाजारों में चोरी-छुपे उपलब्ध हो गया और इसमें वे चारो दृश्य हैं जिनको रुकवाने के लिए फूलन देवी कोर्ट गई थीं। फिल्म निर्देशक शेखर कपूर के अनुसार, फूलन के साथ बलात्कार के दृश्य कलात्मक ढंग से फिल्माए गए है, जबकि असलियत यह है कि यह दृश्य सुबह के शो में चलने वाली टाप 'ए' ग्रेड फिल्मों को भी मात देते हैं। निर्देशक शेखर कपूर की यह दलील कुछ वैसी ही है जैसे आम बबइया फिल्मों के भोदू निर्देशक घटिया फिल्म पत्रिकाओ को दिए इटरव्यू मे कहते हैं कि उनकी आने वाली फलां फिल्म मे मर्डर को खास एंगेल से फिल्माया गया है और इसके दर्जनों रि-टेक हुए हैं।

बलात्कार, हत्या या अत्याचार के दृश्यों में यदि अन्याय के प्रति गुस्सा नही फडकता तो वह कला नही, बल्कि एक तरह से कला का अपमान है। फूलन पर बनी फिल्म में निर्देशक ने एक अपराध को 'सेलेबल' बनाने में निश्चय ही बहुत मेहनत और बुद्धि का प्रयोग किया है। दिल्ली के सीरी फोर्ट में चुपके-चुपके इस फिल्म का एक शो चलाया गया था। इसमे चुने हुए खास लोगों को बुलाया गया था, लेकिन फूलन को इसकी कोई सूचना नहीं दी गई थी। तभी जाहिर हो गया था कि फिल्म निर्माताओं की नीयत साफ नहीं है और उन्हें फूलन और फूलन के साथ हुए अत्याचार या प्रतिशोध के वास्तविक कारणों से कोई लेना-देना नही

है। उन्हे तो किसी तरह इस हिट प्लाट पर फिल्म बनाकर ऑस्कर झटकने थे। वकीलों की गुडिया फूलन फिल्म निर्माताओं की इस चाल को ताड़ गयी और एक बार लगा कि 'इल्यूजन और रियलटी' पर शायद एक बार फिर नये सिरे से सार्थक बहस शुरू हो सकेगी। कोर्ट ने फिल्म के आगामी प्रदर्शन पर रोक लगा दी। इस कंट्रोवर्सी के चलते फिल्म ऑस्कर के लिए नामांकन से रह गयी। फूलन की आपत्ति सौ प्रतिशत सही थी कि उस पर बनी फिल्म में उन दृश्यो को नहीं दिखाया जा सकता जो उसकी वास्तविक जिंदगी मे नहीं थे। उदाहरण के लिए—उसने कहा कि वह कभी उस तरह से नहीं नहाई जिस तरह फिल्म के लबे-लंबे स्नान दृश्य है—फिल्म में नहाती हुई फूलन कमर से ऊपर कोई कपडा नही पहने है। तमाम अखबारों ने (और उन्होंने भी जो शेखर कपूर की कला के प्रशंसक थे) फूलन की इस आपत्ति के समर्थन में सपादकीय टिप्पणियां छापीं।

माना गया कि कला यथार्थ से ऊपर कैसे जा सकती है। यदि इसी विषय की तर्ज पर आज कोई लडकी अत्याचार की शिकार हो, लेकिन वह फूलन की तरह बंदूक नहीं उठाए, तब क्या बी बी सी. का चैनल फोर उस पर फिल्म बनाने के लिए लाखों पौंड खर्च करेगा? एक बार लगा कि बी.बी सी चैनल फोर अत्याचार की शिकार एक लडकी के साथ फिल्म में हुए अत्याचार पर पुनर्विचार करेगा, लेकिन उससे पहले फूलन ने पता नहीं किसी के दबाव मे या अपनी मरजी से सौदा कर लिया। थोडे दिन पहले फूलन ने एक इंटरव्यू में कहा था कि अब वह साउथ दिल्ली छोड़कर नोएडा या मयूर विहार जैसी सेकंड ग्रेड जगह रहने नहीं जाना चाहती। सौदे से मिले बीस लाख रुपये में फूलन अब बाकी जिंदगी साउथ दिल्ली में शान से रह सकती है। यह कहना थोड़ा ज्यादती जरूर होगी कि साउथ दिल्ली में ऐसे ही लोग रहते है या रह सकते है!

हम सब इसके कायर गवाह हैं

मिस्र में 13 साल की एक बच्ची को सिर्फ इसलिए पीट-पीटकर मार डाला गया कि उसने गरमी से परेशान होकर सार्वजनिक स्थान पर चेहरे से बुर्का हटा लिया था। कट्टरपथी मौलवी के आदेश पर यह सब हुआ पिछले साल। बांग्लादेश में भी प्रेम करने के आरोप मे इतनी ही उम्र की एक किशोरी को मौलवी के आदेश पर गले तक मैदान मे गाड दिया गया और उसके गडे सिर पर चारो तरफ से भीड ने पत्थरों की बौछार की। सजा पूरी होने के बाद जब बच्ची के घरवालो ने उसे खोदकर निकाला तो घंटे-भर के भीतर ही उसने दम तोड दिया।

इस्लामी देशों में हर साल-छह महीने मे कहीं न कहीं से ऐसी ही दिल दहला देने वाली वहशियाना हरकत की खबर आती है, जो बताती है कि इस्लामी देशो में महिलाओं की स्थिति क्या है? बल्कि इस्लामी देश ही क्यो, हम सिर्फ इस्लाम को ही ले सकते हैं। इससे करीब 4 महीने पहले बुलदशहर में एक मुसलमान मर्द ने अपनी बच्ची की बारात सिर्फ इसलिए वापस कर दी, क्योंकि दूल्हा चाहता था कि वीडियो फोटोग्राफी में दुल्हन की भी एक झलक आ जाए। लडकी के घरवालों ने इसे इस्लाम के खिलाफ बताकर दुल्हन की फोटो खिचवाने से साफ इनकार कर दिया। जब दूल्हे ने दोबारा दबाव डाला तो उसकी पिटाई की गई, जिससे उसने शादी तोड़ दी।

मिस्र और बांग्लादेश की इन दो दिल दहला देने वाली घटनाओं ने वहा के रहने वालों को नही झकझोरा, बल्कि थोडे दिन पहले अखबारों में एक फोटो छपा था जिसमे महिलाओं को एक मैदान में कोडे मारे जा रहे थे और चारों तरफ खडी हजारो की भीड़ तालियां बजा रही थी। इस्लामी देश के अंगूठाछाप मौलवी कुरान और हदीस के अनुसार एकतरफा न्याय करते है। औरत अगर अपने हक मे कोई बयान देना चाहे तो वह चादर की आड में या बुर्के के अंदर से ही एक बार में अपनी बात कह सकती है। बस, इसके बाद जंगली तर्ज पर फैसला सुना दिया जाता है। तमाम मानवाधिकार संगठनों द्वारा मिस्र और बांग्लादेश मे महिलाओ के साथ हुई इस क्रूरता के मामले उठाए गए तब पुलिस ने उनके खिलाफ सिर्फ

रिपोर्ट दर्ज की है।

तस्लीमा ने 'औरत के हक में' हदीस के बारे मे लिखा है— मुझे विश्वास नहीं हुआ कि इस सभ्य युग में भी मुद्रित अक्षरों मे नारी के प्रति इस तरह के कुविचार ऐसे मर्यादाहीन रूप में प्रचारित हो रहे हैं और इस तरह के अन्याय को समाज आदरपूर्वक ग्रहण करता है। समाज के सज्जन व्यक्ति चरम और परम निष्ठा के साथ सारी धार्मिक बर्बरता का पालन भी करते हैं। हदीस में लिखा है कि यदि स्त्री पति की बात तुरत नहीं मानती है तो ऐसी स्त्री की सामान्य तौर पर पिटाई करो।

अभी थोड़े दिनों पहले पाकिस्तान में 12 वर्ष के ईसाई बालक और उसके चाचा को दीवारों पर कुछ इस्लाम विरोधी लिखने पर फांसी की सजा सुनाई गई थी। इस मुकदमे मे बचाव पक्ष की वकील अस्मा जहांगीर, जिन्हें हाल ही मे मैगसेसे अवार्ड मिला है, कहती है— स्त्रियों या अल्पसंख्यकों को पाकिस्तान मे जानवरों से बदतर जीवन जीना पड रहा है। एमनेस्टी इंटरनेशनल ने भी तमाम उदाहरणो और तथ्यों के आधार पर अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि इस्लाम धर्म हिंसा को बढावा देता है और क्रूरता इसके मूल में है। बी बी सी ने थोड़े दिन पहले पाकिस्तान के मदरसो के बारे में एक डाक्यूमेंट्री फिल्म दिखाई थी, जिसमें बच्चों के पैरों मे बेड़ियां पडी थीं। पूछने पर बच्चों के अभिभावको ने बताया कि हमने बच्चों को मदरसे में इसलिए डाला है कि कुरान सीख जाएगा तो कहीं सौ-डेढ़ सौ रुपये का मौलवी हो जाएगा। सोचने की बात तो यह है कि जो बच्चा बचपन में बेडी डालकर पढ़ाया-लिखाया गया है, वह दया और करुणा की शिक्षा खाक देगा! किसी फैसले मे हम उस मौलवी से विवेकपूर्ण न्याय की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं?

महिलाओ के खिलाफ यह हिंसा भारत मे भी लगातार बढ रही है। कई ग्राम पंचायतों में प्रेम-विवाह के मामले में सार्वजनिक तौर पर प्रेमी जोडे को फांसी पर लटका दिया। कोई ऐसा दिन नही बीतता जब देश में कही न कही किसी औरत को नंगा करके घुमाया जाता हो। बल्कि यहां तो हम अंगूठाछाप को भी दोष नही दे सकते। सांसद, मजिस्ट्रेट, प्रिंसिपल आदि इसमे शामिल है। यह एक सच है कि युद्ध या अराजकता का पहला शिकार महिला ही होती है। लेकिन आजाद लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसी स्थिति क्यो है?

जाने-माने लेखक और आलोचक सुधीश पचौरी ने अपने एक लेख में लिखा है कि तंदूर कांड एक तरह का हत्या कर्म नही बल्कि कला कर्म बन गया

हे। अखबारों म खबर है कि तंदूर कांड का अभियुक्त सुशील शर्मा अदालत में हँसता-मुसकराता रहा।

लेनिन ने कहा था— ममतामयी माताओं की तरह दबी आवाज में कहने से बात नहीं बनेगी। ऊंची आवाज मे बात करनी होगी, योद्धाओं की तरह साफ-साफ कहो, दिखा दो कि आप लोग भी लड सकती हैं।

लेकिन कब?

औरतों के दर्द पर खामोश संस्थाएं

ओरतों के प्रति चला आ रहा भेदभावपूर्ण रवैया और उनके प्रति की जाने वाली हिंसा के बीच जबरदस्ती सबंध है। सारी दुनिया मे महिलाओ के प्रति दूसरे दर्जे के नागरिक की तरह किया जाने वाला बरताव ही उनके प्रति होने वाली हिंसा को बढावा देता है और इस हिंसा ने उन्हें इतना लाचार बना दिया है कि वे अपने प्रति होने वाले इस दुर्व्यवहार का विरोध भी नहीं कर पातीं। यदि इस घृणित परंपरा को अब भी जड से उखाड़ फेंकने की कोशिश न की गई तो संभवत: कभी न खत्म होने वाली यह शृखला यूं ही रह जाएगी।

'ह्यूमन राइट्स वाच' के एक अग 'वूमेस राइट्स प्रोजेक्ट' के कार्यकारी सह-निदेशक रीगेन राल्फ ने अपने हालिया निष्कर्षो के दौरान बहुत दु:खी मन से यह स्वीकार किया। जैसा कि पिछले कई सालो से यह उम्मीद की जा रही थी कि सामाजिक प्रगति के समानांतर महिलाओं के विकास में भी तेजी आएगी, वह अब मृतप्राय जान पड़ती है। खोखले विचारो, रूढिवादी परंपराओं और सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर लगातार सैकड़ों वर्षो से महिलाओं का शारीरिक, मानसिक और अब आर्थिक शोषण भी चालू है, तमाम सरकारी दावो, अंतरराष्ट्रीय घोषणाओं और बड़े-बड़े संगठनों की योजनाओ के बावजूद महिलाओं के प्रति हिंसा मे दिनोंदिन बढोत्तरी होती जा रही है।

औरतों के प्रति यह बर्बर व्यवहार दुनिया के कुछेक देशों में ही नही, बल्कि 100 प्रतिशत यानी सभी देशों में बच्चियों और महिलाओं के प्रति पाशविक और जघन्य व्यवहार हर दिन किया जाता है, वह भी सिर्फ इसलिए कि वे मादा है। थाईलैंड जैसे देश में मां-बाप हजारों की संख्या में अपनी 10-12 साल की बच्चियां बैंकाक के वेश्यालयों मे बेच देते है। कुछ संवेदनशील मां-बाप यदि सामाजिक दबावो या प्रेमवश बच्चियो को बेचने से कतराते हैं तो उनके साथ इससे भी भयानक हादसे हो जाया करते है, भारी तादाद में यहां की लड़कियां फैलती 'सेक्स इंडस्ट्री' के लिए अगवा कर ली जाती हैं। इनमें प्राय: सेक्स का मजा लूटने के लिए लडकियां खासतौर से बनाए गए बिस्तरों पर

बधक बना दी जाती है, कुछेक को तो वर्षो तक तालों मे तब तक बद करके रखा जाता है जब तक वे शारीरिक रूप से प्रयोग के काबिल ही न रह जाए या बहुत बीमार व जर्जर न हो जाएं। लडकियों को पकड़कर जबरदस्ती वेश्यावृत्ति का धधा करवाने वाले हजारों दलाल इन बच्चियों की जिंदगी तो तबाह कर रहे है, साथ ही ये एड्स जैसे भयानक रोग भी तेजी से फैला रहे हैं। थाई महिलाओ के लिए काम करने वाली एक अमरीकन स्वयसेवी सस्था ने अपने सर्वेक्षण के दौरान पाया— 70 प्रतिशत यौन व्यापार में लिप्त महिलाएं एच आई वी वायरस से प्रभावित थीं। इन औरतों के लिए अब तक तो वहां कोई भी गंभीर कदम उठाया गया हे और न ही महिलाओं के लिए चीखने-चिल्लाने वाली अंतरराष्ट्रीय संस्थाए ही मुंह खोल रही हैं।

महिलाओ और पुरुषो के बीच गड़बड़ाते अनुपात ने निःसंदेह महिलाओं की स्थिति और बदतर कर दी है। जन्म से पहले ही मादा भ्रूण पर आक्रमण हमारे देश में ही नहीं, बल्कि तमाम इस्लामी देशों मे छाया हुआ है। कराची की एक स्वयंसेवी संस्था 'ईदी फाउंडेशन' के अनुसार, पाकिस्तान में किए जाने वाले गर्भपातों में 99 प्रतिशत मादा भ्रूण होते हैं। महिला-पुरुष के इस असंतुलित अनुपात का ही कारण है महिलाओं का शारीरिक शोषण। चीन जैसे देश में प्रति तीन पुरुष मात्र दो स्त्रियां ही आती हैं, इसी का नतीजा है कि वहां नवयौवनाओ के अपहरण तेजी से बढे हैं। इनमे से कुछ तो सेक्स इंडस्ट्री के लिए ले जायी जाती हैं, जबकि कुछ लड़कियां हमारे यहां बिहार की तरह 'पकड़उआ विवाह' की त्रासदी झेलने को मजबूर की जाती हैं। विज्ञान और तकनीक में अव्वल जापान महिलाओं के उत्पीडन में भी अव्वल है। जापानी लड़कियों के साथ खासतौर पर कामकाजी लड़कियों के साथ उनके कामवाली जगह पर पाशविक बरताव किया जाना आम हो चला है। जापानी समाज ने इस सेक्सुअल उत्पीडन को 'शेकूहारा' नाम तक दे दिया है। इसका एक नमूना है वहा के बार में लडकियो को अर्धनग्न कपड़े पहनने पर मजबूर करना। 'शेकूहारा' को कंपनी मालिक यह कहकर विज्ञापित करते हैं—'जो आप दफ्तर में नहीं कर सकते, वह यहा करे' आर्थिक रूप से तंग महिलाओं के पास मजबूरन शेकूहारा बनने के लिए सिवा कोई चारा ही नही है, जरा भी ना-नुकुर करने पर उन्हे तुरंत नौकरी से हाथ धोना पड़ता है।

चीन, जापान, थाईलैंड, बैंकाक, पाकिस्तान समेत हमारे देश में भी औरतो का यौन शोषण रबड़ की तरह खिंचता जा रहा है। कभी-कभार इनके विरोध के स्वर गूंज जाते हैं, तो कभी कोई अखबार या पत्रिका अपनी कवर स्टोरी बना लेती

है। ज्यादा हुआ तो इन पर एकाध डाक्यूमेंट्री या आर्ट फिल्म टाइप की चीजें बन जाती हैं। चर्चाएं होती हैं, परंतु केवल एकाध दिन या कुछ मिनट बस! जानबूझकर सेक्स इंडस्ट्री में उतरी महिला हो या जबरदस्ती, मजबूरीवश धकियाई गई हो, उसके साथ समाज का सलूक हमेशा एक-सा होता है। कोई उनके दुःख, समस्याओं, आवश्यकताओं और दर्द को समझता नहीं और न समझना ही चाहता है।

औरतों को बंदूकें थमाएंगे क्या?

'क्या रेल दुर्घटना रोकने के लिए ऐसा कानून बनाया जा सकता है कि अमुक तारीख से देश-भर में सारी रेलगाडियां दस किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से सावधानीपूर्वक जाएंगी?'—यह कहना है एक महिला कानूनविद् का सरकार के उस संशोधित कानून पर, जिसे महिलाओ के साथ अत्याचार रोकने की दृष्टि से तैयार किया गया है। महिलाओं के साथ अपराध रोकने के नए विधेयक मे सरकार ने प्रावधान किया है कि अब सूरज डूबने के बाद से लेकर सूरज उगने तक के बीच में किसी महिला को थाने नहीं ले जाया जा सकता।

महिला अधिकारियों की तरफदारी करती कोई संस्था यह कभी नहीं मान कर चलती कि महिलाए दूध की धोई ही हैं। तमाम तरह के आर्थिक अपराधो, अश्लील विज्ञापनो, अवैध (शारीरिक) धंधों में जुटी महिलाओं ने ही महिलाओं की लडाई को सबसे ज्यादा क्षति पहुंचाई है और पहुंचा रही हैं। पुलिस ने बाकायदा इसके लिए अलग से चुने हुए शहरों मे महिला पुलिस थाने खोल रखे है। तब किसी महिला को महिला थाने में पूछताछ के लिए क्यों नहीं ले जाया जा सकता?

महाराष्ट्र की राज्य सरकार इसी तरह के एक कानून पर विचार कर रही है जिसका बंबई के महिला संगठनो ने विरोध किया है। महाराष्ट्र सरकार चाहती है कि रात में 8 बजे के बाद महिलाएं काम न करें और घरों में कैद हो जाए। मुबई को एक जागता शहर माना जाता है और सच तो यह है कि वहां तमाम अंडरवर्ल्ड का जाल होने के बावजूद महिलाए अपनी सुरक्षा के लिए चिंतित नही हुई। छेड़खानी की वैसे तो कोई घटना मुंबई में होती ही नही और यदि कहीं एकाध ऐसी घटना हुई भी तो जनता ही छेड़ने वाले का हिसाब कर देती है।

दरअसल अंधेरे का डर दिखाकर महिला के हक में (या उसके खिलाफ भी) कोई भी कानून उसके आत्मविश्वास को कमजोर करता है। केंद्रीय सरकार की तमाम सेवाओं मे महिलाओं की नियुक्तियां इसीलिए वर्जित हैं कि अधिकाश सरकारी सेवाएं रात-दिन चलती है। रेलवे में आज भी ड्राइवर या गार्ड के पद

पर महिलाओं को इसलिए नहीं लिए जाने का बहाना दिखाया जाता है कि नाइट-ड्यूटी मे वे सुरक्षित नहीं है, जबकि यह सरासर झूठ और आतार्किक है। जिस नाइट ट्रेन मे सैकडों महिलाएं अकेले सफर करती हैं, उसमे एक महिला गार्ड असुरक्षित कैसे होगी?

यहा माननीय सुप्रीम कोर्ट के उस फैसले का जिक्र अप्रासागिक न होगा जिसमे योग्य न्यायाधीशो ने दो बलात्कारियों की सजा कम करते हुए तर्क पेश किया था कि 'महिला अकेली होगी तो उसके साथ कामेच्छा का उमड़ आना प्राकृतिक क्रिया है।' सुप्रीम कोर्ट की ही एक महिला वकील ने इसके प्रतिवाद में कहा कि यदि बाप-बेटी एक कमरे मे रह रहे हों और यही प्राकृतिक सत्य उन पर लागू हो, तब समाज का क्या होगा? यानी यदि हम अपनी मां-बहन-बेटियो के प्रति सम्मान और आशीर्वाद की भावना नहीं रखते तो इस तरह के कानून महिलाओ को और निर्बल बनाते हैं।

एक सवाल यह उठता है कि क्या घरों में महिलाएं सुरक्षित है? संसद में केंद्रीय गृहमंत्री और केंद्रीय गृहराज्य मंत्री के दिए आंकड़ों के अनुसार, महिलाओ के साथ हुए अत्याचारो का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि महिलाओं के साथ 50 प्रतिशत अपराध घरों के भीतर हुए।

मनमोहन सिंह के ग्लोबलाइज़ेशन ने नारी के सम्मान को सबसे ज्यादा ठेस पहुंचाई। नोएडा मे कुछ साल पहले एक लड़की ने अखबारवालों से कहा था कि पिता की अचानक मौत के बाद अपनी और अपने छोटे भाई की शिक्षा जारी रखने के लिए उसने 8-9 महीनों में 67-68 जगह नौकरी ज्वाइन की और ज्वाइन करने के दो दिन से लेकर दस दिन के बीच छोड़ दी। वजह वही कि हर जगह उससे एक ही उम्मीद की गई। लड़की ने बताया था कि वह हरकत या चेष्टा करने वाले लगभग सारे लोग कंपनियो के मालिक या मैनेजर थे। लडकी ने अपना नाम भी सार्वजनिक किया था। एक योग्य, स्वाभिमानी, समस्याग्रस्त लड़की का यह बयान पूरे समाज पर थप्पड था, जिसके निशान आज भी मौजूद हैं।

इलाहाबाद के पास गांव मे तेरह-चौदह लोगों ने मिलकर कमजोर वर्ग की एक अधेड औरत को नंगा करके गांव की गलियों में घुमाया। घुमाते समय वे अत्याचारी एक स्कूल के बगल से भी गुजरे थे। बाद में जब इसी स्कूल में लडकों को पढ़ा रहे अध्यापक से यह पूछा गया कि आपने ऐसा होते हुए देखा? अध्यापक का जवाब था—हां, देखा था। इस पर जब उससे पूछा गया कि यहां

डेढ सौ लडके थे, आपने मिलकर उस औरत की रक्षा क्यों नहीं की? तो अध्यापक का जवाब था—उन गुंडों से सारा गाव थर्राता है। उनसे मैं भला क्यो उलझता। अध्यापक के इस जवाब से क्या निष्कर्ष निकलता है? यही कि सरकार हर गांव में एक थाना बनाए या हर औरत को एक बदूक दे! क्या यह संभव है? और क्या भविष्य में ऐसा ही होने वाला है?

बलात्कारी को बचाते सांसद

ससद के मई '95 के दो अधिवेशनों में दोनो सदनों में आधा दर्जन से ज्यादा बार एकमत से यह माग उठी कि महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचारो, कम से कम बलात्कार के मामलों में सजा को और कड़ा किया जाए। सभी सदस्यों ने एक स्वर मे इसका समर्थन भी किया, लेकिन सरकार की प्राथमिकता में यह विषय कही नही रहा। तब के गृहमंत्री चव्हाण ने बताया कि इस साल के पहले चार महीनों मे नाबालिग बच्चियों से बलात्कार के 73 मामले दर्ज हुए, लेकिन इनमे से एक भी मामले में अपराधी को कोई सजा नहीं हुई।

संसद में आने वाले विधेयकों में, गौर करें तो, हम पाते हैं कि सारे विषय वोट बैंक से जुडे रहते है और यह एक कडी सच्चाई है कि नाबालिग बच्चियो का कोई मताधिकार नहीं होता। वरना किसी भी प्राथमिकता से देखें तो नाबालिग बच्चियों से बलात्कारी को रोकना सामने लगी आग बुझाने जैसा प्राथमिकता का विषय है। संसद मे कई महिला संसदों ने अपने क्षेत्र में ट्रेन रोकने के लिए या अपने ईगो के चलते सदन में धरने, प्रदर्शन तथा इस्तीफे तक दे डाले, लेकिन इस क्रूरतम विषय को चर्चा के स्तर पर इसी तरह उठाया जैसे चीनी के भाव बढ जाने के मामले उठाए जाते हैं।

मुंबई की एक संस्था के पास दस ऐसे मामलों का रिकार्ड है जिनमें देश के विभिन्न न्यायालयों में बलात्कार के मामलो में अपराधी की सजा घटा दी गई या उसे इसलिए बाइज्जत बरी कर दिया गया कि बलात्कारी के लिए सजा का वर्तमान कानून इतना ढीला-ढाला है कि डेढ़ दो साल तक चली सुनवाई में भी अपराध सिद्ध नहीं किया जा सका।

ऐसे मामलों में प्रतिवादी अच्छा वकील करके भुक्तभोगी लडकी पर चरित्रहीनता का आरोप मढ़ते है और उस पर गंदी जिरह करते हैं। नब्बे प्रतिशत मामलों में परिवारवाले सामाजिक प्रतिष्ठा के चलते टूट जाते हैं। स्वयं माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक फैसले में दो बलात्कारी युवको की सजा घटाते हुए कहा कि गलत करने की उनकी नीयत नहीं थी, वे लड़की को देखकर प्राकृतिक

कामेच्छा का शिकार हो गए।

कहने का मतलब यह है कि एक सजा जिससे हजारों गलत करने की इच्छा रखने वाले सहम जाएं, बजाए इसके एक सुनवाई फेल हो जाने पर ऐसे लोगो का हौसला और बढ जाता है। सरकारी स्तर पर बलात्कार की शिकार लडकी को कैश मुआवजा दिया जाना तो और भी भयानक है। ऐसी तमाम घटनाए हुई जिनमे पीडित महिला को बतौर राहत मुआवजा दिया गया। इससे भयानक क्या हो सकता है कि मध्य प्रदेश के एक मत्री ने एक लडकी के बारे में यह बयान दे डाला कि यदि उसके साथ दो बार बलात्कार हुआ है तो हम दो बार मुआवजा देंगे।

यह दु:खद है कि बलात्कार के कानूनों में ढिलाई के चलते सरकार से अब माग की गई है कि वह नाबालिग बच्चियों के साथ बलात्कार के कानून को कडा करे। बलात्कार में नाबालिग या बालिग का मतलब है— यह मान लिया गया कि नाबालिग बच्ची के साथ ऐसे हादसे के लिए बच्ची को दोषी नहीं ठहराया जा सकता (अर्थ यह है कि बालिग स्त्री के बलात्कार में महिला का भी हाथ होता है)?

वर्ष 1993 में 224 और 1992 मे 181 नाबालिग बच्चियो के साथ कुकर्म के मामले पुलिस ने दर्ज किए। पिछले 4 साल के ऐसी 703 बर्बरताओ में ज्यादातर बच्चिया जान से गई। बाकी सभी मामले डॉक्टरी जांच मे सिद्ध हो गए, लेकिन यदि याद किया जाए कि कोई ऐसी खबर छपी हो कि किसी अपराधी को आजीवन कारावास हुआ हो?

अभी हमारे यहां बलात्कार की अधिकतम सजा 7 साल है। महिला शरीर से छेडछाड, गुप्तांग मे सरिया, लाठी आदि डाल देना भारतीय अपराध दंड संहिता मे बलात्कार नहीं माना जाता है।

कोई आपको चाय मे नींद की एक गोली दे दे तो हत्या का मामला दर्ज हो सकता है, लेकिन महिला के साथ ऐसी जघन्य हरकते इस श्रेणी में नहीं दर्ज हो सकती। रहे-सहे कानून का दुरुपयोग स्वार्थी महिलाओं ने अपने हितों के लिए भी किया। इससे भी समाज का भरोसा उठा।

किसी को व्यक्तिगत रूप से न्याय दिलाने की अपेक्षा कोई फैसला समाज के लिए नजीर बनता है। इसी को ध्यान में रखकर रस्में प्रमुख महिला सगठनो, महिला आयोग, महिला न्यायविदों, बुद्धिजीवियों, मानवाधिकार आयोग और पुराने फैसलों मे कानूनी कोताहियों के सहारे बच निकले अपराधियो के मामलो का

रिकार्ड इकट्ठा कर सरकार सभी राजनीतिक दलो की एक बैठक शीघ्र बुलाए, उसका एजेंडा वितरित करे, ताकि अगले मानसून सत्र तक इस पर संसद में बहस शुरू हो जाए। जरूरी हो तो ऐसे अपराधों मे खुली सुनवाई के लिए विशेष अदालते बनवानी पडे तो बनवाई जाएं। भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी जैसी विकृतियों से एक बार लंबे समय तक लडा जा सकता है, लेकिन भेडियो से नहीं। भेडियों से हमे आर–पार की लडाई ही लड़नी होगी।

सैवी और मधु सप्रे

महिलाओं के अधिकारो की सबसे ज्यादा वकालत करने वाली पत्रिका 'सैवी' ने अपने अगस्त '95 अंक मे मधु सप्रे और मिलिंद सोमन का वह अश्लील चित्र फिर से छापा, जिसमें एक अतरराष्ट्रीय फेम की जूता कपनी के विज्ञापन के लिए दोनों ने न सिर्फ अपने नंगे फोटो खिचवाए हैं, बल्कि वे बेहद अश्लील मुद्रा में एक दूसरे से चिपटे खड़े हैं।

चित्र के साथ छोटा-सा कैप्शन भी है, जो एक तरह की मीठी चुटकी है, जिससे कही नहीं लगता कि पत्रिका इस अश्लील और समाज पर बेहद बुरा असर डालने वाले विज्ञापन के खिलाफ है। यह परिपाटी इंग्लैंड के मीडिया की देन है जिसमें 'च्च्-च्च् इतना गंदा', 'इतना भयानक', 'शेम-शेम' लिखते और कहते हुए प्रतिबंधित चित्रों या पत्रो को बार-बार छापा जाता है। इससे आलोचना के बहाने गंदी चीजें लगातार बाजार का फायदा उठाती रहती हैं। उम्मीद की जा रही थी कि नए अंक में शायद यह पत्रिका इस विज्ञापनी अश्लीलता को मुद्दा बनाकर देश की जानी-मानी महिलाओं के साथ इस पर चर्चा करेगी, लेकिन वह स्वय इस विज्ञापन की चस्केबाजी मे शामिल हो गई है।

संसद में और तमाम मंचों से महिलाओं के लिए बडी-बड़ी बातें करने वाली सुषमा स्वराज इस अंक की कवर स्टोरी में हैं और उन्होने भी इस पर कोई आपत्ति नहीं की। विश्वसुंदरी प्रतियोगिता मे पहले और दूसरे स्थान के लिए सिर्फ दो लडकियों के बीच सवाल सेशन हुआ था। उनमे एक मधु सप्रे थी। दूसरी कोलंबिया की लड़की थी। सवाल था कि यदि आपको एक दिन के लिए आपके देश का प्रधानमंत्री बना दिया जाए तो आप क्या करेगी। वैसे इस समय पूछे जाने वाले सवाल व उनके जवाब दोनो ही डिप्लोमेटिक होते हैं, लेकिन मधु सप्रे ने लीक से हटकर चौकाने वाला जवाब दिया था। सप्रे का जवाब था— यदि मैं देश की प्रधानमंत्री बना दी जाऊं तो अपने देश में स्टेडियमों का निर्माण करवाऊंगी, खेलों और खिलाड़ियों के लिए नई योजनाएं बनाऊगी, क्योंकि मेरा देश बाकी क्षेत्रो में तरक्की कर रहा है, पर खेलो मे दुनिया में बहुत पीछे है। मधु सप्रे का

जवाब इतना अजीब था कि वहा बैठे लोग हॅसने लगे। एक मिनट बाद नतीजा सामने आया और जीतते-जीतते मधु सप्रे मिस यूनिवर्स रनर-अप होकर रह गई। भारत लौटने पर भी मधु का जवाब मीडिया में चर्चा का विषय बना रहा। बहुत सारे लोगो का कहना था कि मधु को ऐसा बचकाना जवाब नही देना था। यह मजाक ही है कि आपको देश का प्रधानमंत्री बना दिया जाए और आप सिर्फ खेलों पर ध्यान दें। लेकिन बहुत सारे अन्य लोगो का यह भी मानना था कि मधु का जवाब दिमाग से नहीं, दिल से था। उसने इस बात की परवाह किए बिना कि जूरी के सदस्य उसके जवाब की क्या रैंकिंग करेंगे, सचमुच देश से प्यार करने और देश का मान बढाने वाला जवाब दिया। यह सही बात है कि तमाम तरक्की के बावजूद हमारा देश खेलों में बहुत पिछड़ा है। मधु का जवाब तात्कालिक तौर पर भले ही बचकाना या सतही रहा हो, लेकिन वास्तव में वह मिस यूनिवर्स के ताज के स्वार्थ से नहीं जुड़ा था।

इस दौरान सौंदर्य प्रतियोगिताओं में बहुत कुछ हुआ। सुष्मिता सेन से लेकर ऐश्वर्या राय तक बनावटी जवाब देकर देश-दुनिया में छा गई, लेकिन मधु के साथ ढेरो लोगों की सहानुभूति बनी रही। उसी मधु सप्रे ने निर्लज्जता से स्वार्थ के लिए वह सब कर डाला जो आज तक किसी स्वाभिमानी, सम्मानित और समझदार लडकी ने कभी नहीं किया। अश्लील चित्र खिंचवाने के बारे में सप्रे के दुधमुंहे तर्क सामने आ चुके हैं। एक बडा पश्चिम-परस्त खोखला आधुनिक वर्ग उसके साथ भी हो गया है जो यह कहता है कि मधु के साथ उस लड़के की शादी होने वाली है।

इस अपराध की सीधी सजा तो यह है कि दोनो का मुंह काला करके गधे पर बैठाकर उसी हालत में सडकों पर घुमाया जाए, लेकिन ऐसा होगा नही, क्योंकि ऐसी सजा गाव या कस्बों में पुलिस जाहिल अपराधियों को देती है! मधु और सोमन पढे-लिखे हैं, इसलिए वे पुलिस पूछताछ के दौरान भी अपने माता-पिता के साथ आए थे और गलबहियां डाले थे। अश्लील विज्ञापन छापने वाली पत्रिकाएं भी सिर्फ मुंबई में जब्त की गई, दिल्ली और बाकी शहरों मे ये पत्रिकाएं खुलेआम और ब्लैक में बिकीं।

'फेंटेसी' और 'डेवोनियर' पत्रिका के मालिक-संपादक जेल भेजे गए, लेकिन विज्ञापन तैयार करने वाली विज्ञापन एजेंसी का मालिक पूरी शान से बाहर है और अपनी इस अश्लील कारस्तानी के पक्ष मे सबूत जुटा रहा है। विधानसभा मे भारतीय संस्कृति के मूल्यों की रक्षा करने वाली भाजपा, शिवसेना सरकार के

मंत्री ने उत्तेजित सदस्यों को आश्वासन दिया था कि दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कड़ी से कड़ी कार्यवाही की जाएगी, लेकिन हुआ क्या? जगह-जगह यह विज्ञापन फिर से छपा। 'सैवी' पत्रिका भी मुंबई से निकलती है। उसमें वह विज्ञापन दोबारा छपा तो फिर मुंबई में ये अश्लील विज्ञापन छापने वाली पत्रिकाएं सील करने का क्या मतलब था?

क्यों 'जायज' है यह सजा?

बिहार के नवादा जिले के एक गांव सिंघाना में एक औरत के साथ तीन मुस्टंडो ने बलात्कार किया और अपना गुनाह ढांपने के लिए उस औरत को गंडासे से काटकर फेंक दिया। ऐसी घटनाएं चूंकि हमारे समाज में आम हो चुकी हैं, इसलिए अब इनसे जल्दी कोई सिहरन नहीं पैदा होती। लेकिन सिंघाना गांववालो ने शिकार बनाई गई इस औरत के अपमान का जबरदस्त बदला लेकर अपना क्रोध जताया। बताया जाता है कि नाराज गाववालों ने बलात्कारियो के घर पर हमला कर, तीनो को घसीटकर बाहर निकाला और पीट-पीटकर अधमरा कर दिया। उत्तेजित भीड ने तीनों बलात्कारियों की आखें तक निकाल ली। बाद मे इनमें से एक बलात्कारी की मौत भी हो गई। यह सच है कि यह घटना वीभत्स है व गांववालों के बदले के इस तरीके से रोंगटे खडे हो गए। लेकिन ऐसा क्यो होता है कि कोई भी अकेली औरत इस सभ्य समाज में सुरक्षित जीवन की उम्मीद नहीं रख सकती। औरत चाहे महानगरीय जीवन जी रही हो या बीहड़ गांव मे घास छील रही हो, उसे हमेशा मर्दाने आक्रमण के प्रति सतर्क रहना पड़ता है।

मनोज, मणिकांत, मृत्युंजय (तीनो चौधरी) चुन्नी देवी को खेत में अकेला काम करते देख क्यों अपनी वासना का शिकार बनाने की हिम्मत जुटा पाए? इसका एकमात्र उत्तर है कि इस समाज, परिवार, आस-पडोस किसी के प्रति वे स्वयं को जिम्मेदार नहीं समझते और उनके लिए एक अकेली औरत केवल देह है। संस्कार, परंपराओं और झूठी मान-मर्यादा के नाम का चोला ओढे यही असामाजिक लोग अपने कुकृत्यों को छिपाने के लिए—पहले बलात्कार करते हैं उसके बाद घबराहट में शिकार औरत को जान से मार डालते है।

हालाकि प्रशासन का दावा है कि ग्रामीणों का गुस्सा केवल औरत पर किए गए प्रतिघात का नहीं था, बल्कि यह जातीय कारणों से भड़का। चूकि बलात्कारी अनुसूचित जाति के थे व पीडित औरत यादव परिवार से आती थी, इसीलिए यादवबहुल ग्रामवासी भड़क गए और बलात्कारियों पर बरस पडे। गांव-कस्बो और कुछ निचली जातियो में तो बदले की भावना से एक-दूसरे की औरतों को

बलात्कार का शिकार बनाया जाना परंपरा की तरह पनपा है। जब दो समुदाय या दो जातिया एक-दूसरे को नीचा दिखाने मे लगभग हताश हो चुकती हैं तो वे बाहुबल से औरत की अस्मिता से खिलवाड़ करने में उतर आती हैं, क्योंकि उनके लिए यह आसान और सुलभ तरीका है।

बलात्कारियों से बदला लेने के इस तरीके का स्वागत करना हालांकि असभ्यता कहलाया जाना चाहिए मगर, क्या बलात्कार को सभ्यता के दायरे मे रखा जा सकता है? बलात्कारी जिस तरह खुलेआम सीना फुलाए घूमते-फिरते है उससे यह कल्पना तो नहीं की जा सकती थी कि उक्त तीनों दरिंदों को तुरत-फुरत पकडकर सजा दिलवाई जा सकेगी। लबी न्यायिक प्रक्रिया से ऊबे लोगो की भावनाओं को काबू करना अब कठिन होता जा रहा है। यही नही, न्याय-प्रक्रिया की जटिलता भी आम आदमी के दिमाग में उदासीनता पैठाती जा रही है। अगर कोई औरत अकेले में, सुनसान इलाके मे या ऐसी जगह जहा से औरत की चीखे भी किसी कान तक न पहुंच पाए, मर्दानगी का शिकार बनाई जाती है तो उसे यह प्रमाणित करने के लिए भी बार-बार मानसिक बलात्कार से गुजरना पडता है। कभी पुलिस, तो कभी वकील या अदालत द्वारा पूछे गए अनाप-शनाप सवाल उस पीड़ित औरत को मानसिक रूप से दिवालिया तक कर डालते हैं। उस पर भी न्याय मिलने में 5-7-10 साल लगना मामूली बात है। यानी 15 साल की औरत के साथ यदि यह भयानक क्षुद्रता की गई तो न्याय पाते-पाते वह 30-35 की हो जाती है। उस पर हो सकता है, माननीय न्यायाधीश महोदय बलात्कारी के पक्ष में फैसला दे दे तो उस औरत का जीवन कितना नीरस, भयाक्रांत और एकाकी हो जाता है, इसकी कल्पना कर पाना भी कठिन है।

यह एक बडा अभियान बनाया जाना चाहिए, जिससे आम लोगो द्वारा बलात्कारी, दहेज हत्यारों, व्यभिचारियों, भ्रष्टाचारियो, भ्रूण-हत्यारों जैसे अपराधियो को सामाजिक स्वीकृति न दी जाए। परिवारों से इन्हें बहिष्कृत रखा जाए, और जब तक ये अपराधी ग्लानि और पश्चात्ताप द्वारा अपनी गलती न स्वीकार ले, इन्हे अपनाए जाने की प्रवृत्ति रोकी जाए। औरतों के प्रति हिंसा की बढती प्रवृत्ति का एक बडा कारण है, सामाजिक बेरुखी व उसकी मूक स्वीकृति। यदि अपराधियो को सामाजिक स्वीकृति न मिले तो अपराधियों के हौसले इतने बुलंद न होते, न तो अपराध करने के बाद वे इतने बेखौफ घूमने का साहस जुटा पाते। यही कारण है कि अपराधी न सिर्फ छुट्टा घूमते-फिरते हैं, बल्कि भाषणबाजी और नैतिकता बघारने में भी आगे-आगे फुदकते दिखते है। ऐसे कामांधों को यदि कुछ लोग

जबरदस्त पटखनी देते हैं तो उसे गलत क्यो ठहराया जाना चाहिए? इस सभ्य समाज मे यदि औरत निश्चिंतता मे जी नही सकती तो इसे सभ्य कहना कहां तक उचित होगा। सभ्य कहलाने के लिए सभ्यता सीखना पहली शर्त है।

सामाजिक विकृति की एक झलक भूकंप की त्रासदी से जूझ रहे सौराष्ट्र के जीवापुर गांव मे दिखी। वहां एक औरत, जिसका मकान मलबा बन चुका था, मजबूरन सड़क के किनारे सो रही थी। हवस के अंधे तीन युवकों ने सारी मानवता को भुलाकर उसे अपनी कामुकता का शिकार बनाया। इस तरह की घटनाए ही हैं जो यह स्पष्ट करती हैं कि कई दफा कुछ मर्दो को कामांधता के सिवा कुछ नहीं सूझता, चाहे वह किसी त्रासदी से ही क्यों न गुजर रहे हों? औरत की देह पर आक्रमणकारी की तरह बरताव करके मर्द केवल अपनी शारीरिक भूख ही नहीं बुझाने की कोशिश करता, बल्कि वह अपने झूठे अहम् और विजेता की छवि को अखंडित रखने का घटिया प्रयास भी करता है।

ऐसे में यदि एक गांव के कुछ लोग आक्रामक हो जाते हैं, तो उन्हें क्रूर, आक्रमणकारी, पाशविक माना जाए या बलात्कारी को? यदि कामांधों के साथ एकजुटता से निपटने का यह तरीका, असामाजिक होने के बावजूद, प्रभावकारी होता है तो इसे नकारा जाना या इस पर बहस करना कितना उचित होगा? सामाजिक भय से बडा कोई उपाय नहीं है, जो इस तरह की अमानुषिक बर्बरता पर अंकुश लगा सके। हालांकि इस बात से मुकरा नहीं जा सकता कि यदि कानून-व्यवस्था सुधारी जाए, औरत को यौन हिंसा से बचाने के कड़े प्रयास किए जाएं तो न्याय अपने हाथ में लेने का सवाल ही नहीं पैदा होता। वरना बेखौफ शिकार की तलाश में घूमते इन खतरनाक मुस्टंडों से औरतों को बचाना नामुमकिन ही होता जाएगा। औरत की देह को नैपकिन की तरह जब मरजी इस्तेमाल कर, मसलकर फेंकने की इस प्रवृत्ति पर जबरन ही सही, रोक लगानी जरूरी है।

कानून की आड़ में घुलती जमात

'मेरे ससुरालवालों ने कहा, मै उनके परिवार के लायक नहीं हूं और घर से निकाल दिया। वो मेरी मेहर की रकम लौटा दें बस।'

—अजमीरा (20)

'जब मैं 7 माह की गर्भवती थी तो मेरा पति मुझे मायके छोड गया और अब तक अपने बच्चे का मुंह देखने नहीं लौटा। मुझे केवल गुजारा भत्ता दिलाया जाए।'

—मुमताज

'मेरा पति मायके वालों से 20,000 रुपये मांग रहा था, नहीं मिलने पर मुझे घर से निकाल दिया और दूसरी शादी कर ली। वह मेरे दहेज की रकम लौटाए।'

—जाहिदा

'मै केवल 15 दिन अपने पति के साथ रही, अब दो साल से अलग हूं, वह मुझसे तलाक चाहता है।'

—आयशा खातून (18)

'डेढ़ साल अपने साथ रखने के बाद मेरे पति ने दूसरी शादी के लिए मुझे छोड दिया।'

—नूरी बेगम (15)

'मैं अपने पति की दूसरी बीवी थी, वह मुझे लगातार मारता और सताता था।'

—हजीरा (15)

'मेरे पति ने शादी के तीन महीने बाद ही मुझे छोड दिया।'

—कमला बेगम (15)

'मैं 14 सालों से अपने पति की दूसरी बीवी हूं, वह रोज मुझे पीटता और सताता है। मुझे मदद चाहिए।'

—अजूबा खातून

'9 साल की उम्र में मैं ब्याह दी गई, मेरे पति ने 6 दफा ब्याह किया, पर

मुझे अब तक तलाक नहीं दिया।'

—फूलबानो बेगम (40)

'मेरे पति ने दूसरी शादी इसलिए की, क्योंकि मेरी कोख से 4 लडकिया पैदा हुई थीं।'

—फिरोजा बेगम (25)

'शादी के दस साल बाद मेरे पति ने मुझे मायके भेजकर खुद दूसरी शादी कर ली। मुझे पति नहीं चाहिए, मुझे गुजारा भत्ता चाहिए।'

—नजरून (22)

अपने पतियों द्वारा सताई जाने वाली ये कुछ मुसलमान औरते हैं, जिनसे महिला आयोग की सदस्या सईदा सैय्यदन हामिद ने बातचीत करके एक दिल दहला देने वाली रपट तैयार की थी। देश-भर के विभिन्न क्षेत्रों की इन तमाम औरतो की पीड़ा और स्थिति लगभग समान है। ये सभी बहुत कम उम्र में ब्याह दी गयी और जल्दी ही पति द्वारा घर से धकेल भी दी गई, जबकि इनमें से अधिकतर की कोई पुख्ता गलती भी नहीं थी। जैसा कि इनके वक्तव्य का अश पढकर साफ है—किसी औरत को लड़कियां जनने के जुर्म में तो किसी को दूसरी शादी करने की चाह में निकाल बाहर किया गया। 15-20 या 25 साल की उम्र की ये लडकियां अभी तक जीवन को समझी भी नहीं हैं कि उन पर यह कहर बरपा हुआ। इन औरतों को न तो मेहर की रकम ही मिली और न ही कानूनी रूप से तलाक ही। आज तक मझधार में अटकी ये औरतें प्रायः अनपढ़ हैं या शब्दज्ञान भर है इनके पास, क्योकि इनकी बचपने में ही अपनी उम्र से दोगुनी उम्र के पुरुष से शादी कर दी जाती है। बच्चीं के साथ यौनानंद लूटने वाले ये कामुक या काम दीवाने पुरुष कुछ ही समय में इनसे ऊब जाते है और कुछ न कुछ बहाना बनाकर इन्हे मायके मे वापस पटक जाते हैं। अपने जने बच्चों के साथ दो वक्त की रोटी की मोहताज ये औरतें पढी-लिखी न होने के बावजूद, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक लगती हैं। दुर्भाग्य से, बल्कि कहे, सरकारी लापरवाही के चलते इन्हे अधिकार प्राप्त करने के जरिये नहीं पता हैं। ये सब पति से बदला लेने पर उतारू है। बदले का मतलब यहा फतवा या हत्या नहीं है, बल्कि इन्हें अपना हिस्सा चाहिए, गुजारा-भत्ता चाहिए, संपत्ति का अधिकार चाहिए, कानूनन तलाक चाहिए।

औरतों को सामान समझने वालों को यदि हम जेहनी तौर पर दीवालिया कहे तो शायद गलत न होगा। इस तरह रोती-बिलखिती औरतों की भीड़ के लिए 'दो लफ्ज' बोलने वाले भी नहीं हैं इस समाज मे। गरीबी व अशिक्षा की शिकार ये

तमाम औरतें मुल्ला-मौलवियों के फैलाए आतंक मे खुद को इतने दबाव मे पाती है कि उनके खिलाफ एक लफ्ज बोलना भी सभव नही होता।

कानूनन भारतीय मुसलमान एक साथ चार बीवियां रखने को तो स्वतंत्र है ही, यह सब जानते है, मगर वह यदि पाचवी शादी भी कर ले तो भी उसे कोई सजा नही होती। जबकि औरत यदि पति के रहते हुए ही, उसे बिना तलाक दिए दूसरी शादी करती है तो वह भा.दं.सं की धारा 494 के अंतर्गत दोषी मानी जाती हे। ठीक यही हाल तलाक का भी है। पुरुष कभी भी कही, तलाक का उच्चारण करने को स्वतंत्र है, यहां तक कि पत्नी की गैर-मौजूदगी में भी। जबकि औरत को पति से तलाक मांगने के लिए कोर्ट जाना होता है, जहां मुस्लिम मैरिज एक्ट, 1939 के अंतर्गत उसे पति से तलाक मिल सकता है। कुछेक मामलात मे, हालाकि यह संभव नही होता, 'तलाक-ए-तफवीद' के द्वारा बिना कोर्ट गए ही तलाक मिल सकता है, लेकिन इसमें मां-बाप की मरजी शामिल होनी जरूरी है। गुजारा-भत्ता मिलने की स्थिति तो और भी गई, गुजरी है। कानूनन 'मुस्लिम वूमेन प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स' (डिवोर्स) के एक्ट (1986) के अनुसार तलाकशुदा औरत गुजारा-भत्ता माग सकती है, पर यदि पति उसे चुकाने की स्थिति में नही है तो यह जिम्मेदारी वक्फ बोर्ड के हिस्से आती है। दरअसल कड़े निर्देशो के अभाव का फायदा उठाते हुए बोर्ड और पति दोनों अपनी जिम्मेदारी से मुकर जाते है। बच्चों की जिम्मेदारी से लेकर गुजारा-भत्ता पाने तक औरतों को न तो पुख्ता जानकारी ही मिल पाती है और न ही जरिया ही। अपना बाकी का जीवन आंसुओ, अभावों, गरीबी, भूख और लाचारी के बीच काटती इन औरतो मे हिम्मत अब तक बाकी है। यह मुस्लिम समाज के लिए चुनौती है, इसे बरदाश्त करने के लिए उलेमाओ और कट्टरपंथियों को हिम्मत बटोरनी चाहिए। राजनीति के लिए मुद्दे तलाशने वाले नेताओ ओर मौलानाओं को चाहिए कि वे मुंह सिए, आसू बहाती इन औरतों की तरफ एक बार संवेदनशील होकर देखे और अपनी बेरुखी भुलाकर उन्हें वो हक दिलवाए, जिनकी उन्हें बेहद जरूरत है।

इन औरतों की दुर्दशा की असल जिम्मेदार सरकार है। क्योंकि वोट बैंक बिगड़ने के लालच मे वह मुस्लिम लॉ छूना नही चाहती। इन सुस्त, निकम्मे लोगो की आंखें खोलने के लिए यह जान लेना काफी होगा कि तुर्की, मिस्र, लेबनान, सूडान, इडोनेशिया, मलेशिया, ईरान, इराक समेत पाकिस्तान जैसे कट्टर इस्लामिक देश अपनी औरतो के हित में कानून बना चुके हैं। इन देशों में बहुविवाह प्रथा पर कड़ी पाबंदी लगाने का अधिकार कोर्ट या प्रशासन के पास है। तुर्की और ईरान

जैसे देशो ने औरतों को पुरुषो के बराबर ही तलाक के अधिकार दिए हैं, यहा तक कि कुछेक देश महिला अधिकारो के दबाव में दहेज व गुजारा भत्ता को संबद्ध करने लगे है। तुर्की तो पारंपरिक मुस्लिम कानून को आधुनिक सिविल कोड में तेजी मे बदलता जा रहा है और इडोनेशिया, मलेशिया व ब्रूनई में बहु-विवाह पर पाबंदी लग चुकी है।

हम सब कब तक निष्ठुर बने तमाम मुसलमान औरतो को आंसुओं में सराबोर रहने देगे। हम सबका फर्ज हैं कि उन तमाम कट्टर देशो से एक सीख लें और सोचे कि भारत में ही मुसलमान औरतें इतनी बुरी गत को क्यों प्राप्त है? सरकारी और गैरसरकारी संगठन, मीडिया, लेखक, मौलाना व पढ़ी-लिखी मुसलमान ओरतें सरकार पर यदि लगातार दबाव बनाएं तो इन कानूनो को सुधारा जा सकता है क्योकि कानूनी मदद ही इन तमाम औरतो के आंसू पोंछने का बीड़ा उठा सकती है।

अवर्णों से कुछ सीखें सवर्ण

यह सच है कि समाज में औरतो की स्थिति दलितों से भी बदतर है, मगर उससे भी बडा व्यावहारिक सच यह है कि दलित औरते आम मध्यम व उच्चवर्गीय उच्च जातीय औरतों की अपेक्षा ज्यादा खुशहाल हैं। दलित वर्ग में औरतों को वह पीडा, छटपटाहट, तिरस्कार और असंवेदनशीलता नहीं बरदाश्त करनी पडती है, जिसके लिए सवर्णो की औरते सदियो से अभिशप्त हैं।

दलित समाज में औरतों को मर्द से तुच्छ समझे जाने की परंपरा सवर्णो की नकल के आधार पर ही घुस रही है, वरना वहां औरत-मर्द के बीच बराबरी का एक अनकहा-सा समझौता है। कई दलित औरतों से बातचीत के दौरान मैंने महसूसा कि वहा मर्दो द्वारा शोषित औरतों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। जैसे जमादारनी का काम करने वाली रामवती बताती है कि शुरू में जब उसके मर्द ने उसे पीटा तो वह खूब रोई-चिल्लाई, मगर अब पिछले 14 सालों से जब भी वह हाथ उठाता है, रामवती उसका मुकाबला करती है और दो थप्पड़ के एवज मे एक तो रसीद कर ही देती है। इसी रामवती ने स्वीकारा कि उसका बेटा एक बूढी औरत के बहकावे मे आकर उसकी बेटी के साथ बैठ गया तो उसने अपनी 24 वर्षीया बहू की एक विधुर रिश्तेदार से शादी करवा दी। बेटे-बहू से जन्मे दोनो बच्चों को आज वह स्वयं पाल रही है। क्या सवर्णों में ऐसे उदाहरण ढूंढने से भी मिलेंगे? शायद कभी नही। यहां औरतें मुंह सिए वर्षो कुटती रहती है, पर पति परमेश्वर पर हाथ उठाने की बात तो दूर विरोध करने की भी हिम्मत नहीं कर सकतीं।

रामवती ने अपनी युवा बहू की पीड़ा किसी संभ्रांत परिवार की अपेक्षा भली प्रकार समझी, तभी उसकी शादी बिना हील-हुज्जत के कर दी और उसके मासूम बच्चो को अपने पास रखने की जिम्मेदारी निभाई। आखें खोलकर (बिना किसी दुर्भावना के) यदि दलित समाज के इन रिवाजों को देखा जाए तो वहां औरत की अपनी जगह है। दलितों में पुनर्विवाह, विधवाविवाह आदि प्रचलन मे है, वहा यह

औरत के विवेक पर छोड़ दिया जाता है कि वह वैधव्य का जीवन पसद करती है या पुनर्विवाह करना चाहती है। सवर्णो वाली संकीर्णताएं, परंपराओ के नाम पर शोषण, औरत के साथ दोयम दर्जे के व्यवहार से अछूते है, मगर पढे-लिखे समझदार दलितों में सवर्णों के इन दुर्गुणो को तेजी से अपनाने की होड लगी हुई है। दलितों को दोयम मानने का हक हमें किसने दिया है? किसी ने नहीं, यह तो हमने खुद गढा है। सीधी-सी बात है अपनी गढ़ी किसी चीज के सकारात्मक पक्ष को क्यो अपनाएगे हम? घृणा और उपहास द्वारा उसे तिरस्कृत ही कर सकते हैं हम। औरत के क्षणिक सुख के लिए भी यदि उम्मीद की किरणें नजर आ जाएं तो खूंखार-सा यह मर्दवादी समाज उसे कुचल देना चाहता है। सुंदर, गोरी, कान्वेंट-एजूकेटेड बहू की मांग करने वाले जाहिलों से कोई उम्मीद करना ही मूर्खता है।

खुद को चमार बताने वाली बिट्टा ने एक दफा बताया कि उसकी दादी दादा से उम्र में काफी बड़ी थी, इसलिए समझदार भी ज्यादा थी। अपनी बेटी यानी बिट्टा की मा की शादी एक होनहार युवक से करके दोनों खुश थे। मगर वह युवक मुबई ऐसा भागा कि लौटकर न आया। कुछ साल इंतजार करने के बाद बिट्टा की मा की शादी एक स्वजातीय अनाथ युवक से करके उसे घर-जमाई बना लिया, परतु बिट्टा और उसके भाई के जन्म के बाद उसका पिता तपेदिक से मर गया। बिट्टा बताती है कि जब वह 6 साल की थी तो उसकी नानी ने मां की शादी एक अपाहिज युवक से कर दी। आज मां वहां खुश है और बिट्टा और उसका भाई यहां नानी के पास पलकर अपने-अपने परिवार मे। क्या कोई सवर्ण अपनी बेटी के सुखी-संतुष्ट जीवन के लिए इतने जानदार निर्णय ले सकता है? शायद आधुनिक युग में भी नहीं।

सवर्णो में तो इसका उलटा है : पुरुष दो-चार शादिया करें तो स्वागत है, पर औरत निकम्मे, नपुंसक या शराबी पति को छोडने की बात भी जुंबा पर ले आए तो पतिता। समाज का हर दूसरा विधुर मुंह बाए नई शादी को तैयार दिखता है, चाहे खुद कब्र में पांव लटके हैं पर एक औरत की जीवन तबाह होता हो तो हो जाए, उनकी बला से।

मेरे एक दलित मित्र मानते हैं कि उनके परिवारों में घरेलू मारपीट मे काफी बराबरी का स्तर रहता है। यदि मर्द गाली-गलौज करता है तो औरत भी उसे पलटकर उतनी ही वजनदार गाली देती है। मजेदार व स्वागतेय यह है कि

परिवार उसका बुरा नही मानता, न ही उस ओरत को तिरस्कार या अपमान की नजर से देखा जाता है। जबकि सवर्णो मे इसका उलट है। यहा मर्द गाली-गलौज करने को स्वतत्र है, जबकि औरत के मुंह से निकली गाली अशोभनीय और अभद्रता मानी जाती है।

मेरे घर मे काम करनेवाली बाई भी इसी वर्ग से आती है। वह कहती है कि चूकि वह परिवार का खर्च उठाती है, इसलिए उसका मर्द, जो निकम्मा है, घर में बच्चे संभालता है और बासन मांजता है। दरअसल तो यही है असली प्रगतिशीलता, जहा न दावे हैं, न दावो की बू है। जहां बेहद ईमानदारी से सच्चाई स्वीकार करने की क्षमता है। यह सच है कि वहां भी मर्दवाद हावी होता है, वहां भी मर्द को अहम् टूटता या मसलता प्रतीत होता है, मगर अपने समाज की बंदिशो और पारिवारिक परंपराओं के आगे वे मजबूर हैं।

औरत को बेइज्जत करने से पहले ही वे जानते है कि हमारा यह प्रयास बेकार होगा। दलितों में आज भी बेटियों को जलील नहीं किया जाता, दहेज हत्याएं कम हैं, तलाक तक बात मुश्किल से पहुंचती है। गरीबी होने के बावजूद मध्यवर्ग जैसी क्षुद्रता नहीं है उनमें, औरत और मर्द आज भी एक चारपाई पर बैठकर बीड़ी का सुट्टा लेते हैं या थैली लाकर बराबर ठर्रा बाटते हैं। औरत के लिए 'निषेध' वहां कोई नही है। दरअसल तो लोकतत्र वहां ही है, जिसे सवर्णो के असर में आकर वे भी भुलाते जा रहे हैं खुद को प्रगतिशील बनाने के चक्कर मे उनकी ओरीजनलिटी पीछे छूटती ही जा रही है। उसे जब तक वे समझेगे, शायद देर हो जाए।

दुर्भाग्य से दलित समाज मे औरतों को जितना सताया या तिरस्कृत नहीं किया जा रहा है, सवर्ण उतना ही उन पर गिद्ध दृष्टि रखते हैं। अवर्णो की औरतों के साथ किए जाने वाले अपराधों में सवर्णो की भूमिका इसका उदाहरण है। मौका पाते ही बदले की भावना से, अपनी कुठाओं के चलते, उनकी गरीबी या लाचारगी का फायदा उठाने के लिए या झूठमूठ अपनी मर्दानगी का झंडा गाडने के लिए वे दलित औरतों को अपना निशाना बनाते हैं। कभी बलात्कार करके, कभी उन्हे नगा घुमाकर या कभी उनके साथ असामाजिक कुकर्म करके उन्हें अपमानित किया जाता है। देखने में आया है—जहां-जहां दलित एकजुट हुए हैं, सवर्णो के खिलाफ लामबंद हुए हैं या अपने अपमान का बदला लेने पर उतारू हो चुके हैं, वहा उनकी औरतें सुरक्षित होती जा रही हैं।

सवर्णो के इस तथाकथित समाज में अवर्णो ने सदियों उपेक्षा सही है, इसके बावजूद उनमें औरत की इच्छाओं, उसके सपनो, उसके मान–अपमान व उसकी स्थिति को जो जगह दी गई है, वह सवर्ण अपनी औरतो को कभी न दे पाए हैं और न देने के प्रति उत्सुक दिखते हैं। दलितों को दुत्कारने व उनको दोयम दर्जे पर ढकेलने की साजिश करने वाले सवर्णो को उनसे एक सीख तो ले लेनी चाहिए।



चर्चित होने का फूहड़ तरीका

परिपक्व सोच, दमदार विचारों और ठोस बातें करने के लिए एक समय मे चर्चित रही एक पत्रिका का स्तर इतना गिर जाएगा, किसी पाठक ने यह सोचा भी न होगा। एक जर्मन कार्टूनिस्ट टॉमी अंग्रर ने न्यूक्लियर वॉर पर व्यंग्य करने के लिहाज से एक बेहद अश्लील किस्म का कार्टून बनाया है, जिसे इस अग्रेजीछाप पत्रिका ने अपने एक अंक में न मालूम क्यों छापा है। यही नहीं, बल्कि यह भौंडे किस्म का कार्टून टी-शर्ट और कार्डो पर भी छापा गया है।

इस कार्टून में दो पुरुष एक-दूसरे को अपना पायजामा खोलकर दिखा रहे हैं और वे जिस स्तर के व्यंग्य कर रहे हैं, उसे यहां प्रकाशित करना हालांकि अभद्रता के दायरे मे आता है, मगर जरूरी भी है। मर्दानगी के प्रतीक को यहां न्यूक्लियर बम से जोडकर कटाक्ष किया गया, दिखाया गया है। चूंकि पश्चिमी समाज में नंगापन या यौन संबंध इतने खुले माहौल में हैं कि उनके लिए इस तरह के कार्टून चित्र, फोटो आदि आम हैं। हमारा समाज चाहे जितना भी आधुनिक हो चुका हो, मगर उसमें श्लील और अश्लील के बीच की दीवार अभी भी कायम है। क्योंकि इसे किसी प्रकाशक ने बिकाऊ बनाने के लिए नही बेचा, बल्कि औरतों के हक के लिए लडने का दावा करने वाली प्रबुद्ध किस्म की एक विदुषी ने इसे छापा है, इस पत्रिका की संपादक की औरतों के प्रति जिम्मेदारी को अजरंदाज नही किया जा सकता। यह बात अलग है कि अंग्रेजी दां टाइप पत्रकार आम भारतीय औरत के दर्द, उसकी समस्याओ पर मुंह बिचकाकर किनारा कर लेते हैं। उनकी दिमागी उपज है कि 'न्यूक' प्रतियोगिता पर इससे (इस अश्लील कार्टून से) बढ़िया बयान कोई नही हो सकता। यह सच है कि पश्चिमी समाज में गंभीर से गंभीर मुद्दे पर भोडे किस्म के फूहड मजाक या चुटकुले तेजी से फैलते है, जबकि हमारे यहां आज भी चोरी-चुपके से सुनने-सुनाने पर विश्वास किया जाता है। समझने वाली बात तो यह है कि इस तरह के प्रचार जनता में समझ कम, उन्माद अधिक पैदा करते हैं। अशिक्षितो की फौज से भरा हमारा देश अभी अपने ज्ञानी पुरुषों के साथ नही है कि इस तरह के

विज्ञापनो का मर्म समझ सके उनके लिए तो यह उत्तेजना का कारण बन सकता है, जिसे भोगना पडेगा एक मासूम औरत को। औरतो को इस छुछुआएपन से बचाने के बजाए और ढकेल देना कौन-सी समझदारी मानी जा सकती है।

अभी लोग भुला नहीं पाए होगे जब 'रीबक' जूते के एक विज्ञापन पर बवेला मचा था, जिसमें मधु सप्रे और मिलिंद सोमन एकदम नंगे बदन एक-दूसरे से लिपटे हुए थे। कंपनी को अपना यह विज्ञापन वापस लेना पडा तथा मिलिंद और मधु पर मुसीबतें टूट पडी थीं। इसी रीबक कंपनी के ताजा विज्ञापन मे एक दाढी वाला तकरीबन नंगा बुड्ढा मगरमच्छ जैसे किसी जीव को अपने बदन से चिपकाए है। शायद कंपनी अपने जूते की नगेपन से तुलना करना चाहती है या कुछ इसी तरह का मेसेज समाज को देना चाहती है। फिल्मो और टेलीविजन की बजाए विज्ञापन कंपनियां निहायत भांडे तरीके से पाठकों को आकर्षित करने की दौड में शामिल हैं। इनका एकमात्र मकसद अपना प्रोडक्ट बेचना है, इन्हे समाज या इसकी औरतों से कुछ लेना-देना नहीं है। ठीक इसके विपरीत जब कोई औरत समझदार मानी जाती है तो उससे तमाम दबी-कुचली औरते सहयोगात्मक रवैये की कल्पना करती हैं यदि वे भी इस अश्लीलता और नंगेपन की दौड़ मे शामिल हो जाएंगी तो उनकी बुद्धि पर तरस खाने के सिवा क्या किया जा सकता है। क्योंकि वर्तमान में दूर-दूरह तक कहीं न्यूक्लियर वार का खौफ नहीं है, हर राष्ट्र इससे होने वाले विनाश से वाकिफ है। राजनीतिक दबाव के लिए छोटे-मोटे झगड़े, बयानबाजी चलते रहते हैं, उसके लिए हमारे बड़े-बडे राजनीतिज्ञ ही काफी हैं, क्योकि उनके लिए भी औरतो या उनकी गिरती हुई स्थिति कोई मायने नहीं रखती। औरत को नंगा करके घुमाया जाए या जिंदा जला दिया जाए, कभी कोई नेता इस मामले में मुंह खोलता है? न्यूक्लियर वार को पुरुष अंग से जोड़ने के पीछे की मानसिकता ने जता दिया है कि केवल चर्चा के लिए ये घटिया हथकंडे अपनाए गए हैं। यौनांगों को हथियारों से जोड़ने की पीछे की मंशा कभी सकारात्मक नहीं मानी जा सकती, खासकर उन समाजों में जहां यौन अपराध चरम पर हों।

आज छोटी बच्ची से लेकर प्रौढा तक पुरुष की कुदृष्टि से बची नहीं है, रोज अखबारों तक बलात्कार या उसके प्रयास की दो-चार खबरें छपना आम हैं। ऐसे में लड़ाई औरत के हक के लिए लडी जानी ज्यादा जरूरी है या हथियारो की होड़ के लिए? औरतों के खिलाफ होने वाली हिंसा इस हथियारों की लडाई से ज्यादा भयानक है, क्योंकि एक औरत को इससे पूरा जीवन जूझना पड़ता है।

बलात्कार की शिकार किसी बच्ची की पीडा गोली खाए या तोप से उडाए गए व्यक्ति से कही ज्यादा होती है। औरत के विकास के नाम पर पैसा कूट-कूटकर तमाम लोगों ने खुद को आम औरत से इतना काट लिया है कि अब उसके दर्द, समस्याएं और बिखरे हुए सपने उन्हें कचोटते नहीं।

सडक पर चलती कोई लडकी हो या बस में सवार, कॉलेज कैंपस में हो या अपने पुरुष मित्र के साथ घूमती, उसकी टी-शर्ट पर दोयम दर्जे के प्रिंट आपको जरूर दिखते होंगे। विदेशी कंपनियों की आई बाढ ने ऐसी टी-शर्टो से बाजार ढांप दिया है। मुझे दबोचो, गले लगाओ, चूमो, मेरे पास आओ, कुचल दो, दे दो जैसे अंग्रेजी में छपे शब्द अनायास अपनी तरफ आकृष्ट करते हैं। अब तक गनीमत यही है कि किसी कंपनी ने अपने यह उन्मुक्त विचार हिंदी या अन्य किसी क्षेत्रीय भाषा में नहीं छापे, वरना सड़कछाप मजनुओं पर इसका कितना घटिया प्रभाव पडता, यह शोचनीय है। दुर्भाग्य से कोई महिला संगठन इसका विरोध नहीं करते। भारतीय परिधानों में खुद को लपेटकर टिकुली-चूड़ियां पहनने वाली पश्चिमी विचारो की औरतो के लिए यह सब बिलकुल साधारण हो सकता है, पर देश की आम औरत के लिए नहीं। ये चर्चा के लिए, प्रसिद्धि के लिए कहीं भी, कुछ भी कर डालते है। इन्हे कभी महसूस नही होता कि शिवलिंग की पूजा करने वाली हमारी औरतें उत्पत्ति पर विश्वास करती हैं, भावनाओं और प्रेम को पूजती हैं। उन्हे नरक से निकालने या उचित माहौल देने के प्रयास की बजाए, उपहास उडाने के लिए किए गए ये बचकाना प्रयास कुछ सकारात्मक तो नही कर सकते— बस, खीझ ही पैदा करते रहेंगे।

गाली नहीं है 'खांटी घरेलू औरत'

साहित्य जगत के चुनिंदा सितारों में से एक, प्रखर वक्ता और कभी-कभार औरतों के पक्ष में बढ़िया बोलने वाले राजेंद्र यादव अचानक एक घरेलू बुड्ढे की तरह बक-झक करने लगेंगे, इसकी उम्मीद न थी। स्वयं को चर्चित रखने के नुस्खों से लबालब रहने वाले यादव ने इस बार निशाना बनाया है अपनी पत्नी (मन्नू भंडारी) को। 'कथादेश' के एक अंक में ओमा शर्मा को दिए अपने लंबे इंटरव्यू मे श्रीयादव ने अपने जीवन के कुछ नितांत व्यक्तिगत वाकयात पर वाहियात टिप्पणी की। यही नहीं, उन्होंने हिंदी लेखिकाओं पर भी व्यंग्य करते हुए अनर्गल प्रलाप किया। उनके इस भाषण से स्पष्ट है कि वे औरत के हितों की बात कभी दिल से नहीं करते रहे हैं, उनके लिए यह मात्र लेखन का विषय रहा है, वरना 'सारा आकाश' जैसी कालजयी रचना का रचनाकार औरतों की रचनाशीलता या कार्यशीलता के समक्ष आने वाली सामाजिक, पारिवारिक व नैतिक कशमकश की पीडा समझता, उस पर व्यंग्य-बाण तो न ही कसता, खैर।

राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी लंबे समय से इसी दिल्ली शहर में अलग-अलग रह रहे हैं। मन्नूजी की साहित्य जगत में राजेंद्रजी से कतई कम हैसियत नहीं है। उनके मुरीद भले ही राजेंद्रजी की तुलना मे कम हों, मगर जो या जितने है वो उन्हें इज्जत की नजर से देखते हैं। यहां स्पष्ट कर दिया जाना जरूरी है कि साहित्यकार तो पति-पत्नी दोनों हैं, परंतु यादवजी 'हंस' के द्वारा पाठकों तक प्रतिमाह पहुंचने का मौका पा लेते हैं। हो सकता है, एक साहित्यिक पत्रिका का मालिकाना हक रखने के एवज में वे अपना पलड़ा थोड़ा भारी मानते हों, परतु तमाम अन्य पुरुषों की तरह राजेंद्रजी के सामने हमेशा मन्नूजी से अधिक अवसर रहे होगे। पुरुष होने-भर से मिलने वाली मानसिक और सामाजिक स्वतंत्रता के अलावा घरेलू और पारिवारिक जिम्मेदारियों से सृजन के नाम पर मुक्ति पाने के अवसर भी राजेद्रजी के पास रहे होंगे। राजेद्र यादव का मन्नूजी को भाजपाई मानसिकता वाली परंपरावादी, सरकारी, खाटी घरेलू औरत कहकर अपमानित करने का प्रयास बिला वजह ही नहीं, बचकाना भी है। यह यादवजी के संकीर्ण

सोच, रूढ़िग्रस्त मानसिकता और पिछड़ेपन का द्योतक है। लबी-लबी छोड़ने वाले यादव यह आरोप अपनी पत्नी पर लगाने मे पहले यह क्यों भूल गए कि जिस मा की कोख से वे जन्मे होंगे, वे भी परपरावादी घरेलू औरत रही होगी। परपरावादी, घरेलू औरत होना कोई पाप तो नही होता? न ही इसका रचनाशीलता से कोई संबध है। औरत को इस सांचे में ढाला किसने है? औरत को मात्र घरेलू, परपरावादी और वंशबेल सवारने वाली तो पुरुषों ने बनाया है। वरना जानवरो मे ऐसे रिवाज क्यों नहीं हैं? जानवरों की कई नस्ले तो मादा की इतना सेवा-सुश्रूषा करती हैं कि तमाम मर्दो को उनसे सीख लेनी चाहिए। क्यों हमेशा गौरया और चिडा मिलकर घोसला बनाते है? क्यो दोनों मिलकर अपने बच्चो का भोजन तलाशते है? वहां तो टांग-पर-टाग चढाए मर्द अखबार नहीं बांचा करते? मगर हमारे समाज के ये खाटी मर्दवादी मानसिकता के लोग हमेशा औरत को पीछे ढकेलने में जुटे रहते हैं— चाहे वह परिवार हो या साहित्य जगत या फिर राजनीतिक लडाई। मर्द तो औरत को अपनी बराबरी पर खड़ा देखने का साहस अब तक नहीं जुटा पाया है, फिर उसके आगे निकलने की कौन कहे।

हजारो रचनाशील, कर्मठ, विचारवान औरतें अपना परिवार, घर, बच्चो आदि के लिए अपना पूरा कैरियर दांव पर लगा देती हैं और इसका शिकवा भी नही करतीं। तो क्या उन्हें हम गालिया देने लग जाए? जिस समाज मे हम रहते है, वहा आज भी औरत चौतरफा लडाई लडती है। वह बेटी, बीवी, मां, बहू, रिश्तेदार सभी की भूमिकाओ के बीच अपने कैरियर, अपनी प्रोफेशनल लाइफ का सामंजस्य बिठाने का प्रयास करती है। वह अपने लिए गढ़े गए सांचे को तोड़ने के लिए हर सुबह एक नए सिरे से लडती है। दोस्तबाजी-यारबाजी में मशगूल रहने वाले मर्द के लिए 'खांटी घरेलू औरत' दोयम दर्जे की व्यक्ति इसलिए हो जाती है कि उनकी इस यारबाजी को सुबह-शाम के खानों और नाश्ते की उम्दा वैरायटियो को पेश करते-करते ऊबकर वह अपनी रचनाशीलता के प्रति समर्पित हो जाती है। अपने समाज मे हजारों ऐसे घर है, जहा मर्द अपनी शामें दारू में डुबाकर दुनिया-जहान की समस्याओं से खुद को ऊपर उठा लेते हैं, जब वे दफ्तर के टेंशन मे होते हैं तो सिगरेटें फूंकते हैं, प्रेम में विकल हो जाएं तो दाढी कटवाना छोड़ देते हैं।

मगर औरत! औरत कैसे अपना गम दूर करे? औरत किस नशे को अपनाए कि समाज उसे ताने न मारे?

दरअसल यही मर्दवादी मानसिकता है जो मानती है कि औरत कभी दुःखी

नहीं होती, वह हर स्थिति मे खुद को ढाल लेती है, उसे किसी तरह के गम गलत की जरूरत नही। और यदि फिर भी उसे कोई दु:ख या पीडा है तो वह शौक से जल मरे, कुए में छलांग लगा दे, रेल की पटरी पर लेट जाए। हो गये सब गम खत्म

चितनशील, विवेकी राजेद्रजी की एक अन्य टिप्पणी हास्यास्पद ही नहीं आपत्तिजनक भी है, जिस पर कोई भी सृजनशील औरत आक्रोश से भर उठेगी। अपने विवाहेतर सबंधों को ढांपने के लिहाज से ठेठ मर्दवादी, कहें तो खांटी मर्दवादी विचारधारा द्वारा यादवजी ने फरमाया है कि रचनात्मकता और सेक्स का गहरा संबंध है। हे, विचारवान राजेद्रजी! क्या आप अपनी पत्नी, बहन, बेटी को सेक्स के कंधों पर सवार होकर रचनाशील बनने देते। (क्षमा करे) औरत की रचनात्मकता से डरे हुए तमाम मर्दवादियों का यही दावा रहा है, राजेंद्रजी उनसे कतई अलग नहीं है। औरत यदि अपनी रचनात्मकता को धारदार बनाने के लिए उन्मुक्त सेक्स का सहारा लेती हैं तो वह कुलटा, कलंकिनी, बेहया हो जाती है। वहशी की तरह सेक्स के पीछे भागने वाले चरित्रवानों को यादवजी किस पंक्ति में रखते हैं, यह तो वही जानें। कोई भी सवेदनशील मर्द औरत की देह कभी इसलिए नहीं नोचेगा कि वह रचनाकर्म से जुड़ा है। सेक्स आनंद को रचनाधर्मिता से जोडकर राजेंद्रजी ने अपनी कुंठित पाशविकता को भी उघाड़कर, अनजाने मे ही सही, सामने रख दिया है। धन्य हैं, औरत के प्रति श्रीयादव के ये उच्च विचार।

हिम्मती मर्द को दाद दो

औरतों के लिए बल्लियों उछलने वाली एक खबर दुनिया-भर के पुरुषों के लिए चुनौती बन सकती है। खबर है कि ली मिंगवी पेट से हैं। ली मिंगवी का गर्भ ठहरना इसलिए एक बडी खबर है क्योंकि वे पुरुष हैं! पुरुष है, पर गर्भ भी ग्रहण किया है और जल्दी ही वे एक स्वस्थ बच्चे के पिता बनकर दुनिया-भर मे छा जाएंगे। कोई मजाक उडाए या अविश्वास करे पर, यह सौ प्रतिशत सच है—ली दुनिया के पहले गर्भिणी होने का ताज पहन चुके हैं। वह खुश हैं और उत्सुकता से कहते हैं कि यह गर्भ ग्रहण करने से उन्हें अद्‌भुत अनुभूति हो रही है और इस अनुभूति से अभिभूत वे मानते हैं कि सभी पुरुषों व औरतों को मरने से पहले इस अनुभूति से जरूर गुजरना चाहिए। दुनिया के इस बच्चा जनने वाले पहले पुरुष को 24 घंटों तक लगातार चिकित्सा-व्यवस्था से घिरे रहना पड़ता है।

दुनिया-भर को रामोचित कर, प्रकृति को मुंह चिढाने वाले ली बेहद सौम्यता से स्वीकारते हैं—'मेरे नजरिये से, चाहे जैसे भी हो, मैं इस बच्चे को दुनिया मे लाने का साधारण-सा काम कर रहा हूं, क्योंकि दुनिया में इससे ज्यादा प्राकृतिक और खूबसूरत कुछ भी नहीं है।' ली के ये विचार सौ प्रतिशत सच हैं कि मां बनने की अनुभूति वाकई इतनी जबरदस्त है कि उसे केवल महसूसा ही जा सकता है। परंतु दुर्भाग्य से अपने देश की हजारों-लाखो मांए बच्चा जनने के दौरान इतना तिरस्कार, कुपोषण, अव्यवस्था और अभाव झेलती हैं कि उनके लिए यह अभिशाप बन जाता है। हमारी लाखों प्रसूताएं आज भी उचित चिकित्सक के अभाव में अप्रशिक्षित दाइयो या बडी-बूढियों के निर्देशों पर बच्चा जनने को मजबूर होती हैं। इन प्रसूतियों से इस अनुभूति की आप कल्पना भी नही कर सकते। इसका यह मतलब न निकाला जाए कि उन्हें बच्चा जनने का आनंद नही होता, होता तो है, मगर वह बहुत पीड़ादाययक और रोंगटे खडा कर देने वाला होता है। आज भी देश के हजारों कस्बे व गांव ऐसे है, जहा उचित चिकित्सा-व्यवस्था तो क्या, ढग का एक डॉक्टर तक मौजूद नही होता। प्रसव-पीड़ा से छटपटाती प्रसूताए अनुभवी दाई या नर्स के अभाव में या तो जान से जाती हैं या

फिर नवजात की बेवजह मौत हो जाती है। यही नहीं, स्थिति इतनी खराब है कि कई-कई दिनों तक प्रसूताओ को भयानक दर्द से छटपटाते तक देखा जा सकता है।

देश की हजारो खेतिहर मजदूरिनें या श्रमिक, दिहाडी पर काम करने वाली औरते तब तक काम करती रहती है जब तक असहनीय प्रसव-पीडा न शुरू हो जाए। इनमें से हजारो अपने कार्य-क्षेत्र के आस-पास ही किसी आड़ मे या साथी श्रमिकों द्वारा ली गई चादर आदि की आड में बच्चा जनने को मजबूर हैं।

आप शायद ही भुला पाए हों कि जम्मू के एक जच्चा-बच्चा अस्पताल मे अप्रशिक्षित डॉक्टर ने एक प्रसव-पीडा से छटपटाती औरत के बच्चे को खींचकर निकालने का प्रयास किया, चूंकि बच्चा उलटा था इसलिए इस बेहूदा हरकत से नवजात का सिर उसके पेट में ही रह गया। घबराहट में अस्पताल कर्मी नवजात के गरदन के नीचे का धड़ छोड़कर प्रसूता को भी मरने के लिए छोड भाग खड़े हुए।

खैर, हिंदुओं की सीता देवी हो या ईसाइयों की मदर मेरी या भगवान कृष्ण की जननी— सभी को विषम परिस्थितियों में बच्चा जनना पड़ा था। पर लाखों लोगो के सौभाग्य से, जब पुरुष स्वयं प्रसव-पीड़ा से गुजरेंगे और बच्चा जनने की जटिल प्रक्रिया भोगेंगे तो शायद औरतों के प्रति उनकी सोच मे कुछ तब्दीली आ सके। औरत को कमजोर और नाजुक बताने वाले पुरुष जब स्वयं प्रसव-वेदना सहेंगे व बच्चे को गर्भ में रखने का सुख भोगेगे, तब शायद उनके पल्ले पड सके कि औरत दरअसल कितनी मजबूत और हिम्मत वाली होती है। स्वयं ली का मानना है कि 'इस विचार-भर से (गर्भ ग्रहण करने के) ही पुरुष स्वयं को सकट में समझने लगता है,' लेकिन अब सच में एक पुरुष गर्भ ग्रहण कर चुका है, इसलिए इस पर हँसने या व्यंग्य करने की आवश्यकता नहीं है।

ली जितने स्वाभाविक ढंग से बच्चा जनने की इस प्रक्रिया को स्वीकार रहे है, दुनिया-भर के लाखों मर्दवादी सोच से ऐंठ फिरने वालों के लिए यह उतनी ही पीड़ादायी खबर भी होगी। इन लोगों के नजरिये में औरत का काम केवल घरेलू व्यवस्था देखना और बच्चे जनना है। औरत यदि बच्चे जनने में भी बराबरी का हक मांगने लगे या यह काम पुरुष के सुपुर्द करने का निर्णय ले ले तो मर्दवादियों को तो मारे शर्म के अपने चेहरो पर कालिख पोत लेनी पड़ेगी। ली जैसे कुछ और मर्द यदि इस प्रक्रिया में अपनी रुचि रखते हैं तो औरतों का भी दायित्व काफी कुछ बट सकेगा। कैरियर की दीवानी हजारों या अन्य किसी

कारण से बच्चा जनन में सफल न होने वाली औरतों के लिए यह खबर आशा जगाने वाली है, तो मर्दों को भयातुर करने के लिए भी काफी है।

खा-खाकर अघाए, तोंदियल मर्दों को अब केवल चर्बी का बोझ उठाने से शायद निजात मिल जाए और वे इस बेवजह के वजन के बजाए अपने फूले हुए पेटों मे एक खूबसूरत बच्चा पलने की जगह पा सकें। कुतर्कियों तथा अविश्वास करने वालों के लिए जरूरी है, इस प्रक्रिया को संक्षिप्त मे समझा देना। मर्द को गर्भ ठहराने के लिए जनाना हारमोंस की कुछ खुराकें दिए जाने के बाद, चिकित्सक एक विशेष तकनीक, जिसे आईव्हीएफ के नाम से जाना जाता है, द्वारा पेट के खाली भाग में भ्रूण और अपरा (प्लेसेंटा) प्रत्यारोपित करते हैं। यह प्रक्रिया बिलकुल भीतरी सतह से लगी होती है। गर्भ ठहराने की यही प्रक्रिया अब तक सबसे जटिल है, क्योंकि इससे हैमरेज की आशंका बढ़ जाती है। इस प्रत्यारोपण के बाद भ्रूण के विकास की प्रक्रिया चालू रखने के लिए हार्मोंस देने की विशेष प्रक्रिया होती है, फिर भ्रूण की हृदयगति के साथ ही अल्ट्रासाउंड द्वारा उसकी बारीकी से जांच चालू रहती है। ली के पेट की लगातार जाच चालू है और आपरेशन द्वारा बच्चा पैदा करने के साथ ही चिकित्सक अपरा भी निकालने की बात कर रहे है।

ली द्वारा लिया गया यह निर्णय वाकई हिम्मत की मिसाल है। हम उनके सफल प्रसव की कामना करते हैं। साथ ही दुनिया के तमाम मर्दों को सचेत हो जाने की भी जरूरत है, क्योकि अधिकारों की लडाई लड़ रही जुझारू औरतो के लिए यह उम्मीद जागी है कि कोख व मातृत्व के नाम पर अब तक उन्होंने जो जलालत भोगी, जो पीडा सही, अब मर्द भी उसमे हिस्सेदार होगा। दूसरे, निःसंतान औरतों से उनके पति तलाक नहीं ले पाएगे या दूसरी शादी के सुख से वंचित रह जाएगे, क्योकि उन्हे अपनी पत्नी का ताना सुनने के लिए एकदम तैयार रहना पड़ेगा—'तो खुद क्यो नहीं जन लेते एक बच्चा।'

ताकि मर्दानगी का गुमान न रह पाए

मदिरो के शहर जम्मू मे अमरनाथ यात्रा पर गई एक 25 वर्षीया युवती के साथ दो दिन तक चार आदमी लगातार बलात्कार करते रहे। यात्रा के दौरान दिल्ली की यह युवती गुमर के त्रिकुटा होटल मे ठहरी थी, जहां दो युवकों सुनील नंदा और सुदर्शन कुमार भी ठहरे थे। अपनी पूर्वयोजना के तहत इन दोनों बददिमाग वहशियो ने युवती को बातों-बातों मे चाय पर न्योता दिया, फिर युवती की चाय मे कोई नशीला पदार्थ डालकर इन दोनो भद्र पुरुषों ने उसके साथ बारी-बारी से बलात्कार किया। होटल मालिक सुनील गुप्ता को जब इस भयकर घटना की भनक लगी तो युवती के प्रति सहानुभूति जागने की बजाए, उसके भीतर की मर्दानगी फूट पड़ी और वह अपने एक मित्र संजीव चिब के साथ इस कुकर्म मे शरीक हो गया। एक युवती के शरीर को ये चार मुस्टंडे दो दिन तक नोचते-खसोटते रहे।

ऐसी ही एक अन्य घटना मे, राजस्थान के प्रसिद्ध तीर्थ भर्तृहरि में अपने रिश्तेदारो के साथ गई एक 17 वर्षीय लडकी के साथ ग्यारह भद्र पुरुषों ने अपनी मर्दानगी का कई-कई दफा प्रदर्शन किया।

हिंदू धर्म के तमाम तथाकथित रक्षकों को शर्म में डूब मरना चाहिए, क्योंकि भर्तृहरि के मंदिर परिसर में हुए इस सामूहिक बलात्कार कांड में मंदिर के श्रद्धेय-पूज्य पुजारीजी भी शामिल हैं। प्रभु की सेवा में लिप्त इन पुजारी महाराज ने 200 रुपये लेकर दुष्कर्मियो को कमरा मुहैया कराया, जहां लडकी के रिश्तेदारो ने उसके साथ अभद्रता की। बहती गंगा में हाथ धोने को उतावले पुजारी ने न सिर्फ उन्हें अपराध-स्थली मुहैया करवाई, बल्कि वह खुद भी वासना मे डूब गया।

इसी बीच चमोली के कर्णप्रयाग की दो लडकियां लक्ष्मण झूला पर आई तो जैगो, जुगल और सुशील उन्हें फुसलाकर एक होटल में ले गए। जहा रात-भर इनके साथ पांच युवकों ने मिलकर व्यभिचार किया।

कुछ दिनो के अखबार पलटें तो हर दिन दो-चार बलात्कार या सामूहिक दुष्कर्म की घटनाएं प्रमुखता से छपी मिल जाएंगी। कहीं तीर्थस्थली में औरत से

जबरन देह सुख लिया जा रहा है, कहीं अपनी वासनापूर्ति के लिए बच्चियां बरगलाई जा रही है। जम्मू यदि मंदिरों का शहर है तो वहां देखें या भर्तृहरि जैसी तीर्थस्थली को— सब जगह औरत को उसकी देह के रूप में आंका जा रहा है। होटल मालिक, जिसका काम है अपने ग्राहक को संतुष्ट करना, हैवान बन गया, पुजारी जो भक्त और प्रभु के बीच की कड़ी है, पूजनीय है, औरत की अस्मिता की चिंता किए बगैर भोग में डूब जाता है। मर्दानगी से ओत-प्रोत इन तमाम दरिंदों को यूं छुट्टा घूमने देने के मायने क्या हैं? एक-एक औरत के शरीर को नोचते यह सब मर्द किसी न किसी रूप मे समाज के प्रति उत्तरदायी हैं, परंतु देह के प्रति अपनी भूख को ये शांत नहीं रख पाते।

सड़क पर छुट्टा घूमते इन सांडों से औरत का बचना नामुमकिन होता जा रहा है। कानून-व्यवस्था की बात करना अब केवल मन बहलाने-भर की बातें रह गई है। यह साफ हो चुका है कि औरत जब तक स्वयं जोरदार तरीकों से इनके विरोध मे नही आएगी तब तक ये हैवान इसी तरह मौके-बेमौके टूट पड़ते रहेंगे। व्यवस्था यदि औरतो की सुरक्षा के प्रति जरा भी जागरूक होती तो आतंकवाद की चपेट में रहने वाला जम्मू क्षेत्र कैसे इस घटना को मूछ के नीचे झेल सकता था, क्योंकि इस घटना से कुछ ही दिनों पहले इसी क्षेत्र के एक अन्य होटल में एक तीर्थयात्री औरत के साथ चार दिन तक व्यभिचार होता रहा था।

इन घटनाओं का सीधा अर्थ तो यही हुआ कि औरत किसी होटल के कमरे से लेकर तीर्थस्थली तक अकेली न जाए, उसके साथ चार सुरक्षा गार्ड हों। हालांकि भर्तृहरि वाली घटना मे ये सुरक्षाकर्मी रिश्तेदार ही लड़की को अपना शिकार बना बैठे। कुल मिलाकर आज जो स्थिति है, यही कहा जा सकता है कि औरतों को अपनी शारीरिक सुरक्षा करनी है तो उन्हें हथियारबंद होना होगा। हथियारों के आगे किसी की मर्दानगी यूं भी नहीं टिक सकती। यह सच है कि हथियारों द्वारा समस्याएं नहीं सुलझाई जा सकती, परंतु खुद को इन वहशी दरिंदो से बचाने के लिए उसे स्वयं ही कोई कदम उठाने होंगे। प्राकृतिक रूप से यदि मर्द ताकतवर है तो सुरक्षा के लिए औरत को कोई तो कानूनी मदद मिलनी ही चाहिए। इस तरह के व्याभिचारो को रोकने के लिए यदि जल्दी कड़े कानून नही बनते तो तमाम महिला संगठनों व समाजवादियों को यह तय करना होगा कि इन छुट्टों को सजा कैसे दी जाए, ताकि ये जीवन मे दोबारा ऐसी गुस्ताखी करने के लायक भी न बचें। इनके घरो की औरतें तक समझ लें कि उनका पति-परमेश्वर कैसा दुराचारी है।

औरत शिक्षित हो या अशिक्षित, गरीब हो या अमीर, गांव की हो या शहर की, मर्दो की इस दुनिया में अपनी जगह बनाने के लिए उसे कई मोर्चो पर जूझना पडता है। खासकर जब उसे सरकार व व्यवस्था से कोई उम्मीद न हो। हजारो खबरें छपती है, पुलिस द्वारा सालाना (खौफनाक) आंकडे पेश किए जाते हैं, कुछ लोग गिरफ्तार होकर छूट जाते हैं पर सताई गई औरत न्याय के अभाव में ही इस भीड़ में गुम हो जाती है। कुछ हिम्मतवाली औरतें यदि जूझकर बलात्कारी को जेल के सीखचों के पीछे भिजवाने मे कामयाब भी होती हैं, तो उनका अपना भविष्य चौपट हो चुका होता है। उन पर एक बदनुमा धब्बा होता है, जिसे समाज कभी नहीं स्वीकारता, पर जब बलात्कारी लौटता है तो यही समाज उसे सांत्वना देता घूमता है और गलबहियां तक कर डालता है।

इसका ताजा उदहारण है 4 जुलाई को सामूहिक बलात्कार की शिकार हुई दिल्ली के सुलतानपुरी इलाके की 14 वर्षीय बच्ची, जिसकी निठारी सर्वोदय कन्या विद्यालय ने (घटना के बाद) उपस्थिति तक नहीं दर्ज की। मायूस, डरी हुई बच्ची ने आत्महत्या कर ली और इस निष्ठुर समाज के मुंह पर अपराधियों के नाम की पर्ची लिखकर करारा तमाचा लगा गई। बलात्कारी तो कभी शर्म या खौफ से मरते नहीं सुना गया होगा, जबकि प्राय: औरतें/लड़कियां बदनामी, बेइज्जती, समाज की चुभती नजरों और अनुत्तरित सवालों के डर से मौत के मुंह मे जा समाती है। इसीलिए केवल कानूनी न्याय ही नही, सामाजिक न्याय की गुहार भी लगाई जानी आवश्यक है। यहां तो शिकार ही अपराधी हो जाता है, जबकि शिकारी अपने पैने पजों के साथ बेखौफ घूमता फिरता है।

हिंदूवादियों का तालिबान बनने का शौक

उत्तर प्रदेश के एक सम्मानित डिग्री कालेज (कानपुर शहर) में लडकियों के साथ जैसा व्यवहार हुआ, वह तमाम प्रगतिशील महिलाओं व उनके संगठनो के गाल पर करारा तमाचा है। एस.एन सेन बालिका डिग्री कॉलेज के नाम से मशहूर इस वर्षो पुराने कॉलेज में हुआ बवाल उन तमाम शिक्षिकाओं के मानसिक दिवालियेपन का नमूना बना, जो आज भी औरत को मर्यादा, शालीनता व शुचिता के नाम पर शोषित, दमित और उत्पीड़ित करता है। विद्यार्थी परिषद के वैलेंटाइन डे पर किये गए उपद्रव से प्रेरित भाजपाई मानसिकता वाले कॉलेज प्रबंधन ने कुछ ही दिनो पूर्व एक आदेश लागू किया था। जिसके अनुसार, कॉलेज परिसर में जींस पहनने पर मनाही थी। घटना वाले दिन यानी एक मार्च को कॉलेज में कोई जलसा आदि था, जिसमें कॉलेज की दो छात्राओं को जींस पहनकर आने के अपराध मे गेट से अदर नही घुसने दिया जा रहा था। उक्त दोनों छात्राएं-चेतना भरतिया और हिना कौसर चपरासी व छात्रसंघ की अध्यक्ष से भिड़ गई। बहस अंततः मार-कूट में बदल गई और प्राचार्या मधुलेखा विद्यार्थी को बीच-बचाव के लिए आना पड़ा।

यह लड़ाई दो विचारधाराओं की नहीं, बल्कि औरत के वजूद की, उसके स्वतंत्र अस्तित्व की और आत्म-निर्णय की थी। दूसरे दिन शहर से छपने वाले तमाम अखबारों में यह घटना प्रमुखता से तो छपी, किंतु दुर्भाग्य से सभी खबरकारों की सवेदनाएं कॉलेज प्रबंधन की तरफ साफ थी, किसी ने उन दो साहसी, अपने अधिकार के लिए भिड़ने वाली बालाओं की तसवीर नही छापी थी। क्यों? क्योंकि ये तमाम लोग दोनों को बहादुर मानने की बजाय उद्दंड, बेवकूफ और उपद्रवी मानते हैं।

औरतें क्या पहनें, इसका निर्धारण हमेशा से पुरुष ही करते हैं चाहे वह विद्यार्थी परिषद् हो, संघ हो या अन्य कट्टरपंथी ताकतें। ये कभी लड़कियों को स्कूल सलवार-कमीज पहनकर आने का नियम बनाते हैं, तो कभी जींस को भारतीय परिधानों से बाहर कर देते हैं। पंजाब में उग्रवाद के दौरान स्कूली लडकियों के लिए ऐसी ही आदेश दागे गए थे कि सलवार-कमीज के सिवा वे कोई और ड्रेस न पहनें। ठीक यही तरीका है तालिबानों का। वे भी औरतों को

जब देखो बुरका ओढ़ने, सिर से पाव तक नकाब के भीतर रहने और सिर उघारा न रखने जैसी नसीहतें देकर सता रहे हैं। ये मर्दवादी ताकतें अपने लिए कोई ड्रेस कोड क्यों नहीं बनातीं? इनमें से किसी भी कट्टर संस्था ने आज तक यह रूल क्यों नही लागू किया कि मर्द केवल भारतीय पोशाकें ही पहनेगें। पैंट पहनने वालों को छांट-छांटकर मारा जाएगा, या सरेआम बेइज्जत किया जाएगा।

कुछ ही समय पहले दिल्ली तथा मध्य प्रदेश के कुछ कॉलेजों में भी इसी तरह के बेतुके कानून बनाए गए थे, कि लडकियां कॉलेज परिसर में जींस आदि परिधान न पहने। मगर वहां भी कुछ जागरूक छात्राओं ने विरोध-प्रदर्शन किए। शायद सबसे उग्र विरोध सेन वाला ही है, जहां मार-पीट तक की नौबत आ गई। भरतिया और कौसर द्वारा दिए गए तर्कों का जवाब चूंकि कॉलेज प्रबंधन, व प्राचार्या के पास नहीं थे, इसलिए दोनों लडकियों के खिलाफ नजदीकी थाने मे रपट दर्ज की गई और उन्हें कॉलेज से निकालने की धमकी भी दी गई। दोनों लड़कियों ने कहा यहां (कॉलेज में) जींस पहनना मना हैं तो हमारे घरों में सलवार-कमीज पहनना मना है, हम क्या पहने। उन्होंने प्राचार्या पर दूसरा सवाल दागा—जब कॉलेज की शिक्षिकाएं खूब कसे, नीचे, फैले गले वाले या बिना बाजू के ब्लाउज आदि पहनकर शरीर का प्रदर्शन कर सकती हैं तो वे नियमबद्ध क्यो?

यह तथ्य कतई नकारा नहीं जा सकता था कि रूढ़ियों और परंपराओं से लदी-फदी इन प्रौढ़ शिक्षिकाओं से खुलेपन की उम्मीद बेकार है। परतु समय और सोसायटी की मांग को समझते हुए उन्हें पहले अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए, न कि प्रतिभाशाली, स्वप्निल लड़कियों की संवेदनाओं पर कुठाराघात करने में जुटे रहना चाहिए। प्रतियोगी परीक्षाएं हों या शिक्षा-क्षेत्र, जब लडकियां सभी जगह लड़कों से बाजी मार रही हैं, ऐसे में तो उनका उत्साहवर्धन किया जाना चाहिए।

अपने समय में दबाकर रखी गई, इस तरह की तमाम पुरातनपंथी, संकीर्ण शिक्षिकाएं अपनी छात्राओं को 'आदर्श पत्नी/बहू बनाने के उपदेश' झाड़ती फिरती है, उन्हें भान नही कि आधुनिक विकासशील समाज में लडकियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना कितना जरूरी है। लड़कियों के पहनावे पर बवेला खडा करने वाले ये तमाम कुंठित लोग दरअसल इस डरपोक समाज का वह गला हुआ अंग हैं, जिसके संक्रमण का डर हमेशा बना रहेगा। ये लोग भरतिया और कौसर टाइप की साहसी, विद्रोही और अन्याय के खिलाफ लडने वाली लड़कियो के भीतर ही भीतर घबराते है। निश्चित रूप से उक्त दोनो बहादुर लडकिया अपने घरवालों से भी बहस मे जीती होंगी या इस चर्चित घटना के बाद उन्हें अपने परिवार के सामने लज्जित होना पडा होगा। औरत जब तक अपने प्रति

होने वाले अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठाएगी, मर्दवादी ताकतें हमेशा पीठ पीछे ऐसे ही प्रहार करती रहेंगी। ढेर सारी औरतों की प्रतिनिधि कोई एक औरत ही होती है।

अपने अधिकार के लिए लड़ने वाली औरत कभी उद्दंड, झगडालू या उपद्रवी नही कहला सकती, हालाकि यह डरपोक समाज उसे इन्हीं अलंकारो से महिमामंडित करेगा। संस्कृति और सभ्यता के नाम पर महिलाओं को प्रताडित करने वालों को समझ लेना चाहिए कि जींस पहनने का यह अधिकार एक तरह से अंतरराष्ट्रीय लड़ाई का एक हिस्सा है। जिस दिन सेन कॉलेज की ये दो छात्राए जींस पहनने के कारण बेइज्जत की जा रही थीं, उसी दिन हजारो मील दूर बैठी एक श्वेत कन्या स्कूल प्रबंधन के स्कर्ट पहनने के नियम के खिलाफ जंग जीतकर खुद को गौरवान्वित महसूस कर रही थी। इस छात्रा ने स्कर्ट पहनने के खिलाफ मुकदमा लड़ा और दलील दी कि टांगों मे सर्दी लगती है, इसलिए लड़कियों को पैंट पहनकर स्कूल आने की इजाजत दी जाए। उसने मुकदमा जीता और अंतरराष्ट्रीय समाचार एजेंसियों ने पैंट पहने उस बाला की तसवीर पूरी दुनिया के प्रेस को प्रसारित की।

मगर दुर्भाग्य से यहां भारत में सीन एकदम उलटा है, यहां दोषी छात्राए है, उन्हें मूक रहना चाहिए, अतिवादियों के अव्यावहारिक रूल चुपचाप झेलने को तैयार रहना चाहिए। जब तक औरत जात सामूहिक रूप से इस अव्यवस्था से नही भिडती, तब तक मुट्ठी-भर कूढ़मगज अपनी दादागिरी यूं ही दिखाते रहेगे। तालिबानों और इस्लामिक कट्टरवादिता की खिचाई करने वालों को आईना दिखाना इसलिए जरूरी है कि अपनी इन्हीं ओछी हरकतों से वे खुद को इनसे अलग नहीं रख पाएंगे।

इस तरह की बेहूदा हरकतों की बजाय यदि यह लडाई अश्लीलता और अराजकता के लिए हो तो बेहतर। लड़कियो को टाइट करने के बजाए, समाज में फैली अश्लीलता, नग्नता का विरोध करे तो बेहतर समाज तैयार हो सकेगा। ऐसे ही कॉलेजों की कुछ छात्राएं आस-पास के होटलो में जिस्मफरोशी तक करने जाती हैं। घरवालो की समझ मे जिस वक्त उन्हे कॉलेज में होना चाहिए, वे क्लास छोडकर होटल के कमरों में होती हैं। इस पर कभी कडाई क्यों नहीं की गई? प्राचार्या को एल आई.सी. भवन के इर्द-गिर्द प्रेमालाप में मग्न छात्राए क्यों नहीं दिखती? क्या जितना विद्यार्थी परिषद् टाइप संस्थाएं दिखाएंगी, वही ये समाज-निर्माता देखेंगे .

प्रेम में भी मर्दवादी रवैया

इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए काम करने वाली एक स्मार्ट, समझदार पत्रकार कुछ दिनो डरी-सकुचाई-सी अपने मिलने वालों से मुंह छिपाती फिरती रही। उसका अपराध था—प्रेम। अपने ही एक साथी से उसके काफी समय से प्रेम संबध थे। जल्दी ही दोनों विवाह-बंधन में बधने को तैयार थे। अतिमहात्त्वाकांक्षी व पश्चिमी संस्कृति का लबादा ओढ़े वह युवक, समाज में पनप रहे एक नए तबके की तरह, लड़की के शरीर पर नजर गड़ाने लगा। इतना ही नहीं, लडकी के निर्णयों पर भी वह अपना जबरदस्त हस्तक्षेप करने लगा। उसने तमाम संकेतों से उसे धमकी तक दे डाली कि यदि मेरे बताए रास्ते पर न चली तो मैं तुझे बदनाम कर डालूंगा, (प्रेम)पत्रों को सार्वजनिक कर दूंगा तथा सारे संबंध खत्म कर दूंगा। लड़के के इस तरह के व्यवहार से युवा लड़की इतनी भयभीत थी कि उसका अपने काम, परिवार और संबंधो से मन उचाट हो गया।

दूसरी घटना कानपुर (नवाबगंज) की है, जहां एक युवक ने साथ पढ़ने वाली छात्रा पर तेजाब फेंककर उसे मारने की कोशिश की। लडकी का गुनाह था यहां—आकर्षक होना। करीब एक वर्ष से उस लड़की का पीछा करने, उसे आकृष्ट करने, बहलाने में फेल हो चुके इस युवक को जब अपनी दाल गलती नहीं लगी तो उस पर तेजाब फेंककर अपनी इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास किया। 80 प्रतिशत जली स्थिति में लडकी कई दिनों तक अस्पताल मे मौत से जूझती रही और उसका परिवार गहरे सदमे में आ गया।

इससे कुछ ही दिनों पहले मुंबई में धनाढ्य परिवार एक लड़के ने पड़ोस की एक लड़की के नाम लंबा-सा खत लिखा और कोई जहरीली दवा खा ली। दोनों बचपन के दोस्त थे, पर जब लड़की को लगा कि वह उससे कुछ और चाहता है तो उसने लड़के को झिड़क दिया, जिसके परिणाम में लड़का मरने चल पड़ा, उसके घरवालों ने लड़की को अनाप-शनाप कहा और लांछन लगाए। इधर जनवरी के अंतिम सप्ताह में ओखला (दिल्ली) के आसिम ने अपने ताऊ, भाई, बहन और एक किरायेदार की सामूहिक हत्या कर दी, क्योंकि उसकी प्रेमिका के

साथ शादी के लिए ये लोग तैयार नहीं थे। इस हत्या से पहले एक दफा वह आत्महत्या का प्रयास भी कर चुका था।

ये सिर्फ कुछ ताजा घटनाएं हैं. आज के समय में ऐसी घटनाएं आम हो चुकी हैं। प्रेम करने वाले ये तमाम प्रेमी पुरुष अहम् के चलते ऐसे-ऐसे कारनामे कर डालते हैं जो औरतों को जीवन-भर आत्मग्लानि में कुढ़ने के लिए छोड़ देते है। प्रेम की आड़ में लड़की से उसका शरीर मांगना, उसे भावनात्मक रूप से ब्लैकमेल करना, उसे बदनाम करने का भय दिखाना, लड़की का नाम लेकर मरने का प्रयास करना या उस पर घातक प्रहार करना पुरुषवादी मन:स्थिति के प्रमाण है। बातों मे भले ही औरत को मर्द के बराबरी का व्यक्ति मान लिया जाए, मगर परिस्थितियां अभी भी औरत के विपरीत ही हैं।

प्रेम हो या शारीरिक सबंधों का मामला हो दोनों ही स्थितियो में मर्द-औरत की बराबरी की हिस्सेदारी होती है,पर भुगतना केवल औरत को पड़ता है। मर्द प्रेम पत्र लिखे, फूहड़-भोंडे तरीकों से प्रेम प्रदर्शित करे या कामुक हरकतें करे, उसकी बदनामी कभी नहीं होती। वह हमेशा औरत को अपने अनुरूप ढालने का प्रयास करता है। यह प्रयास वह आग्रह से, मनुहार से, दबाव से करे या धमकाकर, डराकर या क्रोध से करे, यह उसके विवेक पर निर्भर करता है। कभी शरीर न परोसने के लिए, कभी प्रेम न स्वीकारने के लिए या कभी परिस्थितियां अनुकूल न हो पाने के लिए औरत के मत्थे दोष मढ़कर पुरुष उसे उलाहने सहने, बदनाम होने, बेइज्जत होने के लिए छोड देता है।

प्रेम हो या विवाह पुरुष हमेशा एकतरफा ही सोचता है। उसका दावा होता है कि यदि वह प्रेम कर रहा है, तो औरत को उसे बदले में प्रेम देना ही चाहिए। अपने प्रेम के एवज में वह औरत से उसका शरीर मांगता है और अपने प्रयास में असफल होने पर वह बदला लेने पर उतारू हो जाता है। यही नहीं, इसका दूसरा पहलू इससे भी जटिल है, जो औरतें प्रेमवश प्रेमी के समक्ष बिछ जाती हैं, उन्हें कुछ समय बाद सुनना पड़ता है कि 'उसकी तो आदत है', 'आसानी से मिल सकती है' या 'संयम नहीं है।' ऐसे वाकये क्या समाज में कम हैं, जब प्रेमी सब कुछ कर गुजरने के बावजूद प्रेमिका से मुकर न गए हों? प्रेमिका को बेहाल छोड़ने वाले ये मंजनू अपना तबू भले ही कहीं दूसरी जगह गाडकर निश्चिंत हो जाएं, मगर औरत को ताउम्र उनका नरक भोगने को अभिशप्त रहना पडता है। एक औरत को कुछ दिन पहले उसके नवविवाहित पति ने सिर्फ इसलिए घर से निकाल दिया कि शक की वजह से कराए गए मेडिकल परीक्षण में उसे 'सेक्स

का आदी। बताया गया था। दरअसल एक विवाहित पुरुष से लंबे समय तक प्रेमसंबंध रहने के बाद त्यागी उस औरत ने समाज में जीने के लिए विवाह करना उचित समझा था, पर एक पुरुष द्वारा सताई गई औरत, दूसरे पुरुष द्वारा लगभग दुत्कार दी गई।

सेक्स की आदी बिनब्याही औरतें तो इस समाज के लिए त्याज्य है, मगर दस जगह मुंह मारने वाले पुरुष के लिए सब क्षम्य है। त्याज्य प्रेमिका पर सब उंगली उठाते हैं पर त्याज्य प्रेमी नि:सकोच, स्वतंत्र, मस्त घूमता-फिरता है। सारे नियम, अनुशासन, कायदे केवल औरत पर क्यों लागू हों? क्यों सिर्फ औरत को बदनामी के भय के साथ जीना पड़े? क्यों ब्लेकमेल किए जाने से डरी औरत अपने खोल मे रहने को मजबूर हो? क्यो मर्दो के अपराधों का बोझ उसे अकेले ढोना पडे? मर्द के लिए समाज द्वारा सीमाएं तय किए जाने का रिवाज क्यों नहीं शुरू होता है?

ऐसे सैकड़ों सवाल हैं जो मर्दों के खिलाफ खड़े हैं। डरे हुए मर्द हमेशा औरतों की आड़ में कुकर्म करते रहे हैं। उन्हें इस तरह के अपराध करने की स्वतंत्रता देने वाला यह समाज सिर्फ औरत का मुंह काला करता है, मर्दों को उनके किए की सजा दिया जाना आखिर कब शुरू होगा? संबधो के नाम पर औरतों को बदनाम करने की सोचवाले दंभी पुरुषों को समझना चाहिए कि किसी भी रिश्ते में औरत-मर्द दोनों बराबरी के हिस्सेदार होते हैं। खासकर प्रेम के मामले में कुछ भी बलपूर्वक असंभव है। जानवर भी इतना समझते हैं, तभी तो मादा को रिझाने के लिए नर प्रेमानुराग से भरकर लगातार मिन्नतें करता है, वरना वह भी पुरुषों की तरह ताकत का रौब दिखा सकता है। और किसी से न सही, मर्दो को (नर) जानवरों से ही सीख लेनी चाहिए।

अपने भीतर झांकें मर्द

नाइजीरिया में विवाहपूर्व गर्भवती हुई एक 17 वर्षीय बच्ची को इस्लामी कानून शरियत के तहत 100 कोड़े लगाए जाने की सजा पूरी दुनिया में बहस का विषय बनी। मानवाधिकार उल्लघन से जुड़ी यह शर्मनाक घटना तमाम दबावों को ठेगा दिखाते हुए दोहराई गई। बलात्कार की शिकार इस बच्ची को गांव के कुछ सम्मानितो द्वारा 180 कोडो की सजा सुनाई थी। कनाडा के दबाव के चलते नाजीरियन सरकार के हस्तक्षेप करने के बावजूद. पीड़ित बच्ची को एक हजार की भीड के सामने 100 कोडे मारे गए। इसकी सफाई मे कहा गया कि उसे कभी माफ नही कीजिए जिसने खुदा का कानून तोडा है।

अब इन मुल्ला-मौलवियों या तिलकधारी पंडितो को कौन किस भाषा मे समझाए कि खुदा के कानून में केवल औरत ही गुनहगार नहीं है। मर्द की गुस्ताखी को औरत के कंधों पर डालकर यह वहशियाना हरकत क्या धर्मभीरु समाज को शोभा देती है? यह वही नाइजीरिया है जहां पर 1,000 औरतों में से 31 को उनका शौहर जब मरजी तब पीटता है। लेकिन जो समाज बलात्कार की शिकार गर्भवती बच्ची को क्रूरता से सरेआम कोडों से मार सकता है, उससे बीवियो की पिटाई का विरोध सुनना ही असभव है। पुरुषों ने सारे नियम, सारे कानून केवल औरतो के लिए ही बनाए हैं, अपनी गलतियों के लिए वह न केवल औरत को जिम्मेदार ठहराता है, बल्कि उलटा सीना फुलाकर उसे सजा देने को भी अपना अधिकार समझता है। बेहयाई का चोला पहने फिरने वाले ये मर्द किसी विशेष धर्म में नही पाए जाते, बल्कि ये हिदू, ईसाई, बौद्ध, सिख सभी धर्मों मे बराबर फिरते हैं।

एक तरफ तो दुनिया-भर में तरक्की के ढोल पीटे जा रहे हैं, दूसरी तरफ विकसित से लेकर पिछडे मुल्कों तक में औरतों के साथ जानवरों जैसा सुलूक किए जाने की प्रवृत्ति यथावत है। मर्दो में हिंसा की यह प्रवृत्ति घर से शुरू होती है, उनका सबसे पहला और शायद निरीह शिकार भी उसकी अपनी बीवी ही बनती है और इस घरेलू हिसा की शिकार बीवियां पूरी दुनिया के सभी मुल्कों में पाई जाती है।

दुनिया-भर के मर्द अपनी मर्दानगी दिखाने के लिए औरतों को किस बेदर्दी से अपना शिकार बनाते हैं— पिछले दिनों खुलासा किया है 'सेंटर फॉर हेल्थ एंड इक्विटी' द्वारा जारी पापुलेशन रिपोर्ट ने। उसके अनुसार दुनिया की हर चौथी औरत जीवन में एकाध बार जरूर पीटी जाती है। इस हिंसा का औरतों की सेहत पर बहुत खतरनाक असर पड़ता है। मार-पीट का यह असर केवल शारीरिक नहीं होता, बल्कि इसके कारण दर्द, शारीरिक अपंगता व तेज तनाव तक हो जाता है, जिससे उनका जीवन लंबे समय तक प्रभावित रहता है। मार-कूट करने वाले मर्द प्रायः अपने बचाव में कुछ न कुछ अनर्गल तर्क ढूंढ़ ही लेते है, पर अपनी गलती मानने में उनका अहम् आड़े आता है, जबकि वे नहीं जानते कि उनके द्वारा की गई ये वहशियाना हरकतें उनकी अगली पीढ़ी तक को प्रभावित करती हैं।

औरत दरअसल तो पुरुषों के लिए महज प्रापर्टी है, वह उसे जैसे चाहे, जब चाहे इस्तेमाल करने के लिए स्वयभू मालिक होता है। किसी खुर्राट कसाई के मानिंद वह औरत का भरपूर इस्तेमाल करने की जुगत में लगा रहता है। पुरुषों के लिए औरत के शरीर पर नोंचने-खसोटने व लात-घूंसे चलाने से सुविधाजनक और आसान कुछ और नहीं हो सकता। सर्वेक्षणों मे पाया गया कि जिन औरतो के साथ मारकूट या यौन हिंसा होती है, उनमें अनचाहे गर्भ, यौन सक्रमण व अपरिपक्व बच्चे जनने की आशंका बहुत बढ़ जाती है।

अकसर पिटाई करने वाले पतियों को शायद मालूम न हो कि इस पिटाई के कारण औरतो के अवचेतन में खतरनाक किस्म की निराशा घर कर जाती है, जिसका खामियाजा पूरे परिवार को भुगतना पड़ता है। ये पीड़ित औरतें चिडचिड़ी, झगड़ालू, असामाजिक, झक्की और शक्की हो जाती हैं। हमारे देश में यूं भी ऐसी औरतों की समस्याएं सुनने, उन्हें सुलझाने और उनके हिंसक पतियों पर अकुश लगाने के प्रति प्रायः उदासीनता ही बरती जाती है। नशेड़ी, चिडचिड़े, शक्की और प्रायः असफल मर्द कुठाएं निकालने के लिए जाने-अनजाने अपनी बीवी को ही शिकार बना लेते हैं, परंतु दुर्भाग्य से उन्हें अपनी इस गलती का कभी भान नही होता और गाहे-बगाहे वे इसे बिना किसी संकोच या लोकलाज के दुहराते ही रहते हैं। यही नहीं अपने समाज में कुछ खतरनाक किस्म के मर्द ऐसे भी है, जो पत्नी की पिटाई को अपना अधिकार समझते हैं।

उत्तर प्रदेश के कुछ इलाकों में ऐसे ही हिम्मती मर्दो के बीच किए गए सर्वेक्षणों के आधार पर यह निर्णय लिया जाना शायद स्वाभाविक है। पापुलेशन रिपोर्ट के ही अनुसार—अलीगढ, बांदा, गोंडा, कानपुर व नैनीताल शहरों मे

क्रमश: 15, 50, 27, 11 और 10 प्रतिशत मर्दो ने माना कि पत्नी की पिटाई की जानी चाहिए और इनमे से 17, 33, 20, 10 व 11 प्रतिशत ने यह भी स्वीकारा कि पिछले एक साल के दौरान उन्होंने अपनी पत्नी को पीटा है। इन महानतम पतियों से कैसे यह उम्मीद की जा सकती है कि एक दिन वे अपनी पत्नियों को सम्मानित जगह देने को राजी हो जाएंगे! दुर्भाग्य से ऐसे कोई सामाजिक या पारिवारिक दबाव भी नही है, जिनके चलते पुरुषो को डर हो कि यदि बीवी पर हाथ उठाया तो उन्हें इसका फल भुगतने को तैयार रहना पड़ेगा। यह बेहयाई बढती जाती है और अपनी मर्दानगी दिखाने का अवसर वे चूकना नही चाहते। परिवारों में भी पत्नी पर हाथ उठाने वाला पति कभी दुत्कारा नही जाता, घर के बडे कभी उसके इस घिनौने बरताव के लिए लताड़ते नहीं, इसलिए पीढी दर पीढी यह प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है।

दुनिया के तमाम विकसित व विकासशील देश भी इस मामले में कतई पीछे नहीं हैं। कोलबिया में किए गए एक अध्ययन 15 से 49 वर्षीय औरतों पर किया गया, जिनमें से 19 प्रतिशत इस हिंसा का शिकार थीं। निकारागुआ और उरुग्वे के केवल एक-एक शहर में पाया गया कि वहा 10 से 33 प्रतिशत औरतो को यह हिंसा झेलनी पड़ती है। कनाडा (अकेले टोरंटो) में 29 प्रतिशत औरतों को पति या प्रेमी की मारपीट बरदाश्त करनी पड़ती है। अमेरिका की 22 प्रतिशत, स्विटजरलैंड की 21 प्रतिशत, तुर्की की 58 प्रतिशत, उतरी लंदन की 30 प्रतिशत, फिलिपींस की 26 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया की 47 प्रतिशत औरतें अपने पति या प्रेमी द्वारा शारीरिक, मानसिक व यौन रूप से सताई जाती हैं। अलग-अलग सर्वेक्षणों के आधार पर जुटाए गए ये आंकड़े औरतों के हकों के लिए लड रहे संगठनों व महिलावादियों के लिए शर्मनाक हैं। केवल झंडे गाडने, भाषणबाजी व सम्मेलन करवाने से ये अपराध थमते नहीं नजर आते। पूरी दुनिया की औरतें जब तक इस अपराध के विरुद्ध एकजुट होकर अपना जोरदार विरोध नही दर्ज करवाती तब तक पति के आवरण में छुपे ये अपराधी उत्पात मचाते ही रहेंगे।

पति बनने-भर से किसी को यह हक नहीं मिल जाता कि वह अपनी पत्नी के साथ पालतुओं जैसा बरताव करने लगे। जब मरजी हो पुचकार लिया और जब जी चाहा, दुत्कार दिया।

औरतो की बराबरी की मांग को मसखरी मे उडाने वाले मर्दो की भीड दरअसल दुस्साहस से भरी होती है, जो अपने अपराध स्वीकारने को कतई तैयार नही होती। पढे-लिखे, सम्मानित ऊचे ओहदों पर बैठकर समाज को सही दिशा

देने वाले मर्द हो या ठेली–खोंमचा लगाने वाले, मजदूर, गरीब व अनपढ हो, अपने इस गुनाह को स्वीकारने को तैयार नहीं दिखते, बल्कि उनकी नजर में तो पत्नी को पीटना उनके अधिकारों मे आता है। जो पत्नियां इसका विरोध करती हैं, उन्हे ये लोग खूखार, झगडालू, अपराधी प्रवृत्ति की औरतों में शामिल कर देते हैं, जबकि उन्हें समझना चाहिए कि जिस दिन भी वे मर्दो के ये हथकंडे अपनाने पर उतारू हो जाएंगी, उस दिन उनका घर में ही नहीं, समाज में इज्जत का लबादा ओढ़कर फिरना उडन छू हो जाएगा।

केवल विरोध या कानूनों से यह भयावह मारपीट नहीं थमनी है, क्योंकि विकसित देशो की पारंगत, कमाऊ और दक्ष औरतों को जब यह हिंसा अब तक सहनी पड़ रही है तो हमारी घरेलू–मूक, सहमी–सी रहने की आदी औरतें कैसे कर पाएंगी विरोध? दरअसल मर्दो को बचपन से ही यदि औरतों की इज्जत करनी और बराबरी का हक देने की सीख दी जाए तभी स्थिति बदल सकती है क्योंकि आखिर कितनी पीढियां तक ये जुल्म सहेंगी, कभी न कभी तो लगाम कसनी ही होगी।

कट्टरवादी पाकिस्तानी मर्दों की घटिया करतूतें

मोहम्मद साहब ने जब इस्लाम की नींव रखी होगी तक उन्हें जरा भी इल्म न होगा कि कट्टरवादी मुसलमान इतने क्रूर हो जाएंगे कि वे झूठी शान-बान के लिए अपनी औरतो को खौफनाक जीवन जीने के लिए मजबूर कर देगे। राजनीतिक बवेला मचाने वाले पाकिस्तान में ढेरों मुसलमान मर्द अपनी औरतों को इज्जत के नाम पर मार डालते हैं या उनसे इतना क्रूर बरताव करते हैं कि वे किसी को अपना चेहरा दिखाने लायक नही बचतीं। 32 साला जाहिदा परवीन रावलपिंडी से 20 कि.मी. दूर गुजरखान नामक इलाके में रहती है। उसके पति महमूद इकबाल ने करीबन डेढ साल पहले उसकी नाक एक उस्तरे से तराश दी थी।

उसका आरोप था कि जाहिदा के उसके बहनोई के साथ अवैध संबध हे। रोज मारपीट करने वाला यह क्रूर शख्स एक दिन जब मस्जिद से लौटा तो उसके हाथ में उस्तरा था। उसने जाहिदा के हाथ-पांव बांधकर उसकी नाक (हड्डी के पास से) तराश दी और भाग गया। यह घटना सिर्फ एक उदाहरण है, क्योंकि ऐसी घटनाए वहां चोरी-छिपे प्रतिदिन घटती रहती हैं। एक अन्य घटना मे 37 साल की परवीन अख्तर पर उसके पति ने इतना तेज एसिड फेंका कि उसका चेहरा, छाती और पिछला हिस्सा बुरी तरह झुलस गया। उसका पति अपनी पहली बीवी के पास लौटना चाहता था, इसलिए काफी सोच-समझकर उसने यह वहशियाना कदम उठाया। परवीन जब पुलिस में रपट लिखाने गई तो वहा उसके पति ने पहले ही घूस दे दी, जिससे कोई पड़ताल तक नहीं की गई। 40 साल की जरीना को घर से इसलिए निकाल दिया गया कि वह अपनी बेटी की उसकी पसद के लड़के से शादी करने के पक्ष मे थी, जबकि उसका सौतेला बेटा इस बात से नाराज था। गुस्से में उसने जरीना को पीटा और जब उसने पति से तलाक मागा तो उसकी दो साल की बच्ची को मार डाला।

ये कुछ ऐसी वहशियाना हरकतें हैं जिनके प्रति सारी दुनिया बेरुखी-भरा नजरिया रखती है। बेखौफ पाकिस्तानी मर्द अपनी औरतो को कसाइयों की तरह कुचल रहे हैं, मगर धर्म की आड मे कहर ढाने वालो के खिलाफ कही से भी

एक लफ्ज नही सुनाई देता। दुनिया का कोइ धर्म इतना क्रूर तो नही हो सकता कि वह अपनी औरतों को ऐसे अमानवीय सबंध ढोने को मजबूर करे। लेकिन सदियो से ऐसा सिर्फ इसलिए होता आ रहा है, क्योकि कोई इसका विरोध नही करता। मानवता के नाम पर दुनिया मे करोड़ रुपया फूंकने वालो का सबसे ज्यादा इसका जवाबदेह होना चाहिए। क्यो वे इस पीड़ा को हाशिये में सरका देते है? क्यों नही उनका दिल इस अमानवीय बरताव पर पिघलता?

एमनेस्टी इंटरनेशनल की ताजा रिपोर्ट-2000 मे माना गया है कि दक्षिण एशियाई औरतों की स्थिति दयनीय हे, परतु सरकारें इन्हें रोक पाने में नाकाम है। रिपोर्ट मे साफ उल्लेख है कि पाकिस्तान में मान-मर्यादा के नाम पर हर वर्ष हजारों औरते मार डाली जाती हैं। यह रिपोर्ट निश्चित रूप से पूरी दुनिया में जारी की गई होगी, कुछेक अखबारों में इसके अश छपेंगे और (इसी तरह) कुछ लेख भी लिखे जाएंगे। लेकिन प्रति वर्ष की तरह इस वर्ष भी उतनी ही औरते मारी या प्रताड़ित की जाएगी, यही दुर्भाग्य है, औरतों का। उन्हे कभी इज्जत के नाम पर तो कभी मान-मर्यादा बचाने के लिए, कभी बदला लेने या दुश्मनी निभाने के लिए हमेशा ही सताया जाता है। पाकिस्तान मे धर्म के नाम पर कट्टर मुसलमानो द्वारा हजारो औरतें या लडकियां जला डाली जाती हैं या छुरा आदि भोंककर घायल कर दी जाती हैं या उनका अंग-भग कर दिया जाता है, वे सारी जिदगी अपाहिज बनकर बिताती हैं। ऐसा क्रूर हैवानियत-भरा बरताव करने वाले ये मर्द रिश्ते में औरतों के पति, भाई, पिता, चाचा, मामा कुछ भी हो सकते है। रिश्ता चाहे फर्क हो, मगर सीने में पत्थर और दिमाग में कचरा भरे ये सब मर्द एक-सा सोचते हैं। वहां चरित्र पर लांछन लगाए जाने पर, तलाक मांगने पर, पुरुष मित्र बनाने पर या परिवार द्वारा निश्चित रिश्ता न मानने पर औरतों को प्रताडित होना पड़ता है। चूंकि वहां पुलिस भी मर्दवादी रवैये का शिकार है, इसलिए प्रायः वे औरतों द्वारा की गई शिकायतें दर्ज ही नहीं करते। यदि दर्ज भी कर ली तो पतिपक्ष द्वारा मोटी घूस वसूलने के बाद मामला दबा दिया जाता है या घरेलू दुर्घटना कहकर टाल दिया जाता है। कुछ ऊचे दर्जे के अधिकारी व मजिस्ट्रेट आदि यदि औरतो के पक्ष मे कुछ करना भी चाहें तो गवाहों के अभाव में मामला टल जाता है। सामाजिक दबाव व कटमुल्लापने के चलते इस तरह की घटनाओं के खिलाफ गवाह इकट्ठा करना वहां आज भी नामुमकिन है।

मर्द जो कुछ करते हैं वह उनका अधिकार होता है पर औरतों के लिए यहा कोई अधिकार तय नहीं हैं। वे बस बरदाश्त करने के लिए शापित हैं।

इन पुरातनपथी कट्टर मुसलमानो ने जिस संस्कृति को पोसा है, उसके अनुसार, यदि सताई जाने वाली औरत इस क्रूरतापूर्ण रवैये के कारण मर भी जाए तो इसे बाइज्जत मौत कहकर पल्ला झाड लिया जाता है। यही नहीं बल्कि 'कयाम' और 'दियात' जैसे इस्मामी कानूनो के जरिये पीडिता का कोई भी रिश्तेदार अपने अपराध पर कुछ धन चुकाकर व माफी मांगकर खुद को पाक-साफ जता सकता है। औरत के शरीर के हर टूटे-क्षतिग्रस्त भाग के लिए अलग-अलग रकम निश्चित की गई है मानो वह कोई इमारत हो जिसे जब चाहा गिरा दिया, जब जरूरत पड़ी दोबारा ईट-रोडी से बना लिया।

जाहिदा की नाक तराशकर उसे ताउम्र कुरूप बनाने वाला इकबाल अपना जुर्म कुबूलते हुए बेशर्मी से कहता है—'जो मैंने किया वह गलत है पर मैं अब संतुष्ट हूं क्योंकि यह मैंने अपनी इज्जत और प्रतिष्ठा के लिए किया।' यही असलियत है मुसलमान मर्दो के सोच की। अधी-लूली-लंगड़ी, बेसहारा औरत यदि तलाक भी मांगती है तो उसे जेल में डाल दिया जाता है। चार शादियां करने को स्वतंत्र मर्दो की इस दुनिया में औरत के लिए दूसरी शादी के बाबत सोचना भी पाप है। पैगंबर द्वारा औरतो को तमाम अधिकार दिए जाने के बावजूद मुल्लाओं-मौलवियों द्वारा पुरातनपंथी, परंपराओ को लादकर औरते सताई जा रही है। पाकिस्तान के मानवाधिकर आयोग के अनुसार, अकेले '98-99 मे 850 औरते मारी गई। वहीं के प्रगतिशील महिला संगठन ने '94 से '99 के बीच साढे तीन हजार औरतों को बचाया। इन पर इनके संबधी मर्दो ने पेट्रोल, किरोसिन या एसिड डालकर जलाने का या किसी धारदार हथियार से मारने का प्रयास किया था।

मगर ऐसी किस्मत वाली कितनी औरते होती है जो इस तरह के क्रूरतम प्रहार से बच पाती होंगी। पति द्वारा सतायी जाने वाली औरतो के मां-बाप भी उन्हे वहां पनाह देना अपनी बेइज्जती समझते है। ऐसे में औरत मार खाती-कुटती, दुर्व्यवहार सहती चुपचाप शौहर के घर सडती रहती है।

केवल मानवाधिकार आयोग या महिलाओं के सगठनो द्वारा छिटपुट आवाज उठाने से वहां कोई सुधार नहीं आना है, यह सत्य है। इसे घिनौना कहा जाना शायद ज्यादती न हो। शरीर के अंगों का भाव तय करके मुल्ला-मौलवियो ने दिखा दिया कि वे औरत को जानवर से भी नीचे के पायदान पर रखते हैं। खुदा ने शायद कही भी यह मशविरा नहीं दिया होगा कि अपनी औरतों अंगों का भाव तय करो और सुविधानुसार उन्हे काट-पीटकर तबाह करो। खुदा के लिए उसके

बदे औरत-मर्द मे नहीं बंटे हैं, लेकिन वाहियात कट्टरपंथियों ने तमाम भ्रम फैलाकर सुविधानुसार नियम गढ लिए हैं।

साथ ही कट्टर मुसलमानों और मौलानाओं-मौलवियो को खुश रखने वाली वहा की सरकारे औरतों के हित में कदम उठाने वाली नहीं हैं। सैनिक शासक मुशर्रफ तक का कहना है कि ये मामले घरेलू हैं, इसलिए इनमें हस्तक्षेप करना लाजमी नहीं है। ऐसे में मुसलमान औरतें यह घटिया बरताव मुंह सिए सहते जाने को बेबस रहने के सिवा क्या कर सकती हैं!

विश्व-मंच पर स्यापा

दुनिया-भर की औरतों की दुर्दशा पर स्यापा करने के लिए सयुक्त राष्ट्र महासभा की न्यूयॉर्क में चल रही बैठक में जब औरतों को बराबरी पर लाने के लिए बहस चल रही थी, तभी यहां—हमारी जन्मभूमि भारत में—औरतो को नगा करके सडकों-गलियो में घुमाया जा रहा था। बैतूल (मध्यप्रदेश) की महिला पंच की वहीं के एक युवक वासुदेव कुनबी ने पूरी रात और दूसरे दिन इज्जत लूटी। पंच को दिलासा देने या हिम्मत बांधने की बजाए गांव-भर ने मिलकर उसके हाथ-पीछे बांधकर उसे जूतों की माला-पहनाई और सारे कपड़े उतारकर गांव-भर मे घुमाया। पंच के साथ यह अभद्र व्यवहार करने वालों में उसका पति और भाई भी शामिल थे। उनका आरोप था कि उसने खुद को अपवित्र कर लिया और परिवार को बदनामी का दाग लगाया।

औरत के साथ इससे ज्यादा वहशियाना हरकत और क्या हो सकती है? इस लिजलिजे समाज मे औरत के प्रति तनिक भी लिहाज, व्यावहारिकता की उम्मीद बेमानी है। इस पंच के साथ जो कुछ भी हुआ उसका विरोध घर के मर्दो ने इसीलिए नहीं किया होगा, क्योंकि पूरे गाव से पंगा लेने से तो अच्छा है कि वे एक औरत से छुटकारा पा लें। क्योंकि औरत तो कभी भी, कहीं भी फिर पाई जा सकती है, पूरा समाज नहीं!

दुर्भाग्य से हमारे समाज में सारे दोष औरत के ही मत्थे मढ दिए जाते हैं ऐसा पहली बार नही हुआ है कि बलात्कार के लिए दोषी बलात्कारी नही है। तिरस्कार, अपराधबोध केवल औरत को ही भोगना होता है। बलात्कार की शिकार औरत को कई दफा कानून की नजर में भी दोषी बताकर बलात्कारी को बाइज्जत बरी कर दिए जाने के सैकड़ों उदाहरण हमारे सामने है। जब विद्वान कानून विशेषज्ञ इस तरह के अव्यावहारिक निर्णय सुना सकते है तो एक पिछड़े इलाके के पुरुषो ने सामूहिक रूप से जो वहशियाना कृत्य किया, उसकी निंदा कौन करे?

ऐसे समय में जब महिलाओं के साथ भेदभाव वाले कानूनों को खत्म करने के लिए चीखा-चिल्लाया जा रहा है, इस तरह की घटनाएं हमारी असलियत खोल

रही है। अपनी औरतो की दुर्दशा को रंगीन पन्नी में लपेटकर अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सामने पेश करने से या विकासवादी रवैया अपनाने का ढोंग-भर कर लेने से जमीनी स्तर पर सुधार की कतई गुंजाइश नही रह जाती है। 1995 में हुए बीजिंग सम्मेलन मे बनी कार्ययोजना लागू करने संबंधी दबावो के बावजूद सरकारी उदासीनता और प्रशासनिक लापरवाही का नतीजा है कि हमारी औरते आज भी जिंदा जलाई, सताई या बहशियाना तरीकों से मारी जा रही हैं। पिछले पांच सालो मे ही अपने देश में औरतों को लिंग के आधार पर सताए जाने के 40 प्रतिशत मामले बढ़े है। बदले की भावना से या परिवार को नीचा दिखाने के लिए औरतो को सरेआम कपड़े उतारकर घुमाया जाता है या उनके साथ दुराचार किया जाता है।

स्थिति इतनी ज्यादा बिगड़ चुकी है कि औरतें अब इन स्थितियों का विरोध तो क्या चर्चा तक नहीं करना चाहतीं। वे जानती हैं कि मुंह सिए रखकर सब कुछ बरदाश्त करने मे उनकी ज्यादा भलाई है। कई दफा जरा-सा भी विरोध उन्हे भारी कीमत चुकाने पर मजबूर कर सकता है। सामाजिक ताने-बाने से हारी ये औरते इन बेढब चर्चाओं मे खुद को इसलिए नही बचातीं कि वे चर्चा नही करना चाहतीं, बल्कि उन्हें भय रहता है कि कहीं इसका खामियाजा जीवन-भर न भोगना पड़ जाए, क्योकि मौत से भी भयानक यातनाएं देने वालों से यह समाज ठुंसा पड़ा है।

सयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष द्वारा आयोजित एक कार्यशाला में सामने आया है कि देश की तकरीबन 5 करोड औरतें लापता है, जिनकी न पुलिस-प्रशासन को खबर है, न सरकार को उन्हे खोज निकालने की फिक्र। क्या दुनिया में ऐसा कोई समाज होगा जहां औरतों के खो जाने या लापता होने के प्रति इस तरह की असवेदनशीलता बरती जाती है? हमारे यहां देहरी लांघी औरत को अपवित्र समझने वालों की कमी नही है। मानसिक रूप से अस्वस्थ औरतों को इलाज के नाम पर अस्पताल या मनोपचार केंद्र में छोड़ गए अमूमन लोग उन्हें वापस लेने कभी नही लौटते, क्योंकि पागलपन या विधवा हो जाने की आड में वे इनसे छुटकारा पा जाना चाहते हे। औरतों की बदतर स्थिति के जिम्मेदार लोग तब भी अपनी सोई सवेदनाएं नहीं जागने देते, जबकि राष्ट्रीय क्राइम रिकार्ड ब्यूरो ने अपनी रपट मे स्वीकार किया है कि पिछले 5 सालों मे दहेज हत्या के मामलो में 15 प्रतिशत की बढोत्तरी हुई है। 41 हजार से ज्यादा औरतें सताई जाती हैं, तो 16 हजार के करीब औरतो का प्रतिवर्ष अपहरण कर लिया जाता है। हजारो की सख्या मे

प्रतिवर्ष बलात्कार होते हैं तो 15 साल की उम्र से पहले ही हर चौथी बच्ची मौत के मुंह में चली जाती है।

हमारे समाज में औरतों का शारीरिक-मानसिक दोनों तरफ से शोषण होता है, यह शोषण प्रायः परिवार द्वारा ही किया जाता है। लेकिन परपराओं और नैतिकता का चोला ओढ़े हम दुनिया के सामने सीना ताने खड़े रहना चाहते हैं। हमारे यहा मध्यप्रदेश के कुछ इलाकों तथा दक्षिणी बिहार में औरतों को डायन बताकर, पत्थरो या अन्य औजारों से सार्वजनिक रूप से मार डाला जाता है। बेटी जनने वाली औरत को जुए में बैल के साथ जोतकर खेत जुतवाया जाता है, या दहेज की मांग पूरी न होने पर बहू को दो साल तक एक कमरे मे कैद रखा जाता है (ज्योति धवन)। जिस समाज मे आईएएस अधिकारी 15 से 25 लाख, डॉक्टर-इंजीनियर 8 से 14 लाख और सरकारी नौकरी में चतुर्थ श्रेणी कर्मी 2-4 लाख दहेज के नाम पर बिकते हो, जहा औरतों की खरीद-फरोख्त के लिए मडियां हों, जहां बेटी जन्मने की आशंका से गर्भ गिराया जाता है, और तो और, जहां नवजात बच्चियों को 50 से 200 रुपये मे गला दबाकर मरवा दिया जाता हो, पति हिंसक रूप से शारीरिक संपर्क करने को स्वतंत्र हो, उस समाज को सुधारने के लिए सिर्फ कागजाती कानून क्या कर पाएंगे?

सरकार व उसके पैसों पर पलने वाले तमाम संगठनो तथा विदेशी मदद के लिए मुंह बाए फिरते गैरसरकारी संगठनों की बढती भीड़ विश्व-मंच पर अपनी फजीहत होने से बचाने के लिए उत्सुक क्यों नहीं है—अभी तो यही अनसुलझी गुत्थी मुंह बाए खड़ी है। औरतों के साथ होने वाली शृंखलाबद्ध घटनाएं, सरकारी आकड़े, रोजाना अखबारी कागज पर पसरने वाली बलात्कार, दहेज हत्या, व्यभिचार की खबरें इन समाज-सुधारकों का खून क्यों नही खौलातीं? औरतो के खिलाफ होने वाले हर तरह के अपराधो से निपटने के लिए सरकार पर महिला सासदों द्वारा कड़े-कानून, दड विधान लागू करने के लिए दबाव क्यो नही दिया जाता?

इतनी खौफनाक स्थिति को कालीन के नीचे छिपाकर, विश्व मंच पर खडी हमारी महिला एवं बाल विकास राज्यमंत्री सुमित्रा महाजन दावा करती हैं कि वह बीजिंग दस्तावेजों के अनुपालन में किसी प्रकार की ढील नही आने देंगी। उन्होंने यह भी माना की बीजिंग में लिए गए निर्णयों और तय प्रावधानों का भारत पूरी तरह समर्थन करता है व उनका अनुपालन कर रहा है। अपनी आंखों पर पट्टी बाधे, कानों मे रुई ठूसे बैठी गूंगी सरकार के बिनब्याहे प्रधानमंत्री यदि इस तरह के

दावे-पेश करते तो उतना कष्ट नही होता मगर महाजन ने औरत होने के बावजूद जेसी दिखावटी बातें और दावे पेश किए, वे हैरतंगेज है। हो सकता है, सरकारी प्रतिनिधि होन के कारण उन्हें दबाव के चलते अपनी जुबान रटतू की माफिक चलानी पडी हो, मगर यह करोडों भारतीय औरतों के प्रति किया गया क्रूर अपराध है। इस सरकारी दौरे पर गई 18 प्रतिनिधियों का क्या यह नैतिक दायित्व नही बनता था कि वे अपने यहां की औरतों की स्थिति को महसूसे, उनकी पीडा को समझें, उनसे मिलें, उनके दु:ख-दर्द को अखबारों, मैग्जीनो. टीवी या कंप्यूटर स्क्रीन पर देखने-पढने की बजाए अपनी आंखों-कानों से देखें-सुनें? क्या उनका फर्ज नही बनता था कि वे यहां से रवाना होने से पहले धरातली असलियत से जूझती औरतों की पीड़ा से निपटने के उपायों पर देसी मंच पर बहसें? क्या वे सरकारी प्रतिनिधि बनने से वंचित रह जाने के लालच में मुंह सिए रखकर करोड़ों औरतो के साथ अन्याय नहीं कर गई? यदि बीजिंग सम्मेलन के बाद भी हमारी औरतों की दुर्दशा में रत्ती-भर फर्क नहीं आया तो हम बार-बार विश्व-मंच पर स्यापा क्यो करें?

उत्सवमग्न मर्दो होश में आओ

हिंदू समुदाय को उत्सवप्रिय माना जाता है। सदियो से वह विभिन्न ऋतुओं मे पारपरिक त्योहार मनाता आ रहा है। वैश्वीकरण, बाजारवाद और अर्थ की बढती महत्ता भी इस समुदाय से उत्सवों को अलग नही कर पाई है। आधुनिकीकरण, शहरी चकाचौंध और विदेशी संस्कृति के प्रचलन ने इन त्योहारों के पारंपरिक रूप में भले ही परिवर्तन ला दिया हो, मगर सदियो से औरत और मर्द के बीच का जो भेद इन त्योहारों और पर्वो में था, वह आज भी ज्यों का त्यों है। औरत को भुलावे में रखकर, उसकी भावनाओं के साथ छल करते हुए इन उत्सवों का मजा दरअसल हमेशा मर्दो नें ही लिया है।

आज भी यही परंपरा कमोबेश कायम है। कार्तिक का पूरा महीना पर्वो से भरा होता है, मगर इसमें पति के नाम पर पूजा, बेटों के लिए व्रत, परिवार की समृद्धि और सुख की उपासना होती है। यहां एक भी त्योहार औरत के सुख, उसकी शांति, उसकी समृद्धि के लिए नहीं है। यह सच है कि परिवार के सुख में औरत का सुख समाहित होता है, फिर मर्द के लिए अलग और बेटो के लिए अलग से पर्व क्यों हैं?

दीपावली सुख-समृद्धि की कामना का त्योहार है, मगर इसमे लक्ष्मी के साथ पहले गणेशपूजा का प्रावधान जुडा होना बताता है कि पुजारियों-पुरोहितो ने इस भय से यह परंपरा बनाई होगी कि अकेली लक्ष्मी क्यो पूजी जाए। यह ठीक है कि गणेश प्रथम पूजनीय देवता हैं, मगर गणेशोत्सव (गणेश चतुर्थी) के दौरान तो उन्हें अकेले पूजे जाने का प्रावधान है। खैर, पंडे-पुजारियों को यह तर्क बुरे लग सकते हैं, वे इन अतार्किक प्रथाओं पर उंगली उठाने-भर से ही रूठ जाया करते हैं। इसी से जुडा एक अन्य मुद्दा है पूजा का।

पूजा-अर्चना करना मुखिया के क्षेत्राधिकार ही हुआ करते है। यह सच है कि उसकी पत्नी को बाएं बाजू में बैठने का प्रावधान है, मगर सर्वाधिकार तो मर्द के खाते में सुरक्षित हैं। दीपावली हो या होली इन त्योहारो में आनंद, मस्ती और उल्लास तो मर्दो की झोली मे आता है। चलिए, एक पटाखा चलाने को ही उदाहरण मान लीजिए। पटाखे कितनी औरते चलाती दिखती हैं?

इस मामले मे दिमाग पर ज्यादा जोर नहीं डालना पडेगा। पटाखा जलाकर मौज मारने वाले मर्दो ने कभी पलटकर यह सोचा है कि औरत का उत्साह-उल्लास कहां है? होली के रंगों मे डूबे, पटाखे और रोशनियों से आनंदित तमाम मर्दों के दिमाग मे क्या कभी ये सवाल नहीं कौंधते कि उनके और औरतों के उत्सव मनाने मे इतना अंतर क्यों है? कि औरतें हमेशा उनकी और परिवार की खुशियों और सुखो से सतुष्ट क्यो है? कि औरते भी उनकी तरह आनदित और उल्लसित जीवन जी सकें? कि औरते भी उनके पेट और जीभ के अलावा कुछ सोचने को स्वतंत्र हो सके? कि औरतें भी उनकी तरह खुलकर मौज-मस्ती को भोग सके? जिस दिन मर्दो के दिमाग मे ये सवाल कौंधने लगेंगे, उस दिन से ही औरतो के पर्वो और त्योहारों को मनाने के तौर-तरीके बदल जाएंगे।

हर उत्सव, हर पर्व में औरत तो मर्द की खुशी का केवल आधार ही बनकर रह जाती है। वह तो रोजमर्रा की तरह चौके में ही खटने को मजबूर होती है, बल्कि कहिए तो रोज से भी ज्यादा। पकवान-मिठाइयां और भी जाने क्या-क्या पकाकर घर के मर्दो और उनके मित्रों-रिश्तेदारो की आवभगत में उसे खुद का खयाल ही नहीं रह पाता है। अकसर देखने में आता है कि समाज की चिंता में घुलने वाले बाजारीकरण के विरोध में गाते घूमते हैं कि अब तो घरों मे पकवान बनाने की बजाय बाजार से खरीदने के प्रचलन ने परंपराओं पर प्रहार किया है।

उनके अनुसार तो एक सुगढ़ औरत का दायित्व है कि वह घर-परिवार के मर्दो के मोटी तोदें और चमडे की जीभ के रसास्वादन के लिए दिन-रात हाडतोड़ मेहनत करे। उस पर भी यह उम्मीद 100 प्रतिशत रहेगी ही एक मेहमान के आने पर उसके होंठ मुसकराते मिलें, पकवान लज्जतदार दिखें और पूरी चुस्ती-फुर्ती से वह अपनी सारी ऊर्जा का उम्दा प्रयोग करती दिखे।

दरअसल यह औरत विरोधी प्रवृत्ति है, वे नहीं चाहते कि औरत चूल्हे से छुट्टी पाए। वे नहीं चाहते कि औरत को अपने बारे में सोचने की फुरसत मिले वरना यह न कहते कि तीज-त्योहारों के मौके पर नई परंपरा के अंतर्गत मर्द कुछ नया कर दिखाएं, कुछ पकाएं, साज-सज्जा करें, क्योंकि केवल रंग-बिरंगे कपडे और गहने लाद लेने से औरत के उत्सवमय हो जाने पर विश्वास करने वाले यह स्पष्ट रूप से जान लें कि जब तक औरत अपनी भावनाओं पर रिश्तों और अपनत्व के दबाव में यह सब बरदाश्त कर रही है, तभी तक मर्दों की मौज-मस्ती कायम है। जिस दिन उसे अपने इस दोयम दर्जे का अहसास हो जाएगा, वह मर्दो के द्वारा सुखी, खुशी और उल्लसित होना छोड देगी।

होली पर भी मर्द दारू, गांजा, अफीम में डूबकर सड़कों पर हल्ला करते

हे, उत्पात मचाते हैं, छेडखानी करते है और औरतें घरों में दुबकी उनके लिए पकवानो की झडी लगा रही होती हैं, घर सजा रही होती हैं और उन्हें खुश करने के लिए बन-संवर रही होती है। होली को औरतों का त्योहार तो बिलकुल ही नही माना जा सकता। उल्लास, उमग, मजा शब्द तो औरतों से बचपन मे ही छिन जाते हैं। उसके हिस्से तो केवल घर सवारना, पकवान बनाना और मर्दों की सेवा मे तत्पर रहना ही आता है।

पीढ़ियों से बनी इस सरचना को जीते हुए औरत इससे बाहर प्राय: सोच भी नहीं पाती। हुल्लड़ मचाते मर्द छेडछाड, भद्दी बातों, मजाक, फूहड मुहावरों या गानों के मार्फत अपनी कुंठाए तक निकाल लेते हैं पर औरतों के लिए यह सब भी निषिद्ध है। यहां तक की जरा घरवालों की नजर पडी तो लड़ाई-झगडो की नौबत आते भी देर नहीं लगती।

यही नहीं हमारे समाज में भाषा का स्तर भी बंटा हुआ है। मर्दो की भाषा औरत की भाषा से बहुत अलग है। मर्द आपसी बोलचाल में गाली-गलौच, घटिया शब्द, छींटाकशी करने को स्वतत्र है, जबकि औरत पर जबरदस्त पाबंदी कायम है।

जहां तक संभव है मर्द उत्साह, उमंग का चरम भोग लेता है, तो अपने अदर की खटास इस भाषाजन्य क्षुद्रता के साथ निकाल लेता है। लेकिन औरत कहां जाए, उसके लिए तो न तो खुलकर हॅसने का मौका है, न ही अपनी पीड़ा व्यक्त करने की छूट ही। उसे तो बस मर्दों द्वारा, मर्दों के लिए गढ दिया गया है। एक पारंपरिक सोच मे ढाल कर, उसे न बोलने की छूट दी गई है, न सोचने-समझने की। पति, भाइयों और बेटों के सुफल जीवन, उनकी लंबी उम्र और उनकी समृद्धि के लिए करवाचौथ, भैया दूज और अहोई-आठे या छठ मनाने वाली यह तथाकथित आधुनिक औरतो की भीड यह नहीं सोच पाती कि उसे माध्यम बनाया जाता रहा है।

परपराओं और रूढ़ियों को भोगती इन औरतों को जिस दिन अपनी स्थिति का भान हो जाएगा, उस दिन मर्दो के हाथ से सत्ता स्वयं ही खिसक जाएगी। औरत को पग-पग पर ठगने वाले ये भद्र मर्द भूल चुके है कि औरत की खोपडी मे भी वैसा ही दिमाग है, जैसा उनकी खोपडी में है, वैज्ञानिक रूप से थोडा छोटा ही सही (वे न भूलें कि मोटा दिमाग क्या होता है) उसकी कपाल की भीतरी जगह खाली नही है, जैसा वे अब तक समझते आए हैं।

बीना रमानियों से 'लड़कियां' बचाइए

बीना रमानी के रेस्तरां में पूर्व मॉडल जेसिका लाल की 35-40 लोगों की मौजूदगी में आधी रात को गोली मारकर की गई हत्या, महीनों चर्चा का विषय रही। इस एक घटना से केवल उच्च वर्ग के तमाम गोरखधंधे ही नहीं उजागर होते हैं, बल्कि मध्यमवर्गीय अति महत्त्वाकांक्षी लडकियों के रातोंरात स्टार बनने के चस्के के पीछे की असलियत भी फूट गई है। हजारों-लाखों लडकियों को इस चंगुल से बचाया जाना बहुत जरूरी है। सिर्फ मॉडलिंग ही नही, बल्कि छोटा परदा-बडा परदा सब जगह रमानी जैसियों के मजबूत हाथो की जकडन हैं। इस स्थिति को तोडना तो आज की व्यवस्था में नामुमकिन है, मगर हम अपनी लड़कियों को यदि इनसे बचाकर लें तो यही हमारी जीत होगी और हमारी बच्ची की जीवन-रक्षा भी।

56 वर्षीय रमानी देशी खाल में विशुद्ध रूप से एक विदेशी महिला है। वह, उसका कनाडाई पति और अमेरिकी पासपोर्टधारी उसकी बिटिया मालिनी रमानी, रेस्तरां तो अवैध रूप से चलाती ही थीं, उसी से जुडे उनके बाकी सारे धंधे भी अवैध और अनैतिक आचार की जद में हैं। अब जब पूर्व मॉडल की मौत ने इनके गोरखधंधों की परतें उधेडनी शुरू कर ही दी है तो पुलिस के आला अधिकारी यह भी बयां कर रहे हैं कि रमानी पर मात्र अवैध रूप से शराबखाना चलाने का आरोप नहीं है, बल्कि विदेशी नागरिक होकर भारतीय कानून तोडने की जांच भी की जाएगी। रमानी का वीजा काफी समय पहले ही समाप्त हो चुका था। (रमानी) बीना वल्द तीरथ सिंह ललवानी ने अपना उपनाम (सरनेम) अपने पूर्व पति एन डी. रमानी से लिया है, हालांकि उनसे संबध विच्छेद हुए लगभग पंद्रह साल हो चुके हैं। शरीर, विचार और जन्म से विदेशी मूल की रमानी से भारतीय समाज, संस्कृति, मूल्यों और सस्कारों की समझ होने की उम्मीद रखना बेवकूफी है। विदेशी रंग में रंगी इस अधेड़ उम्र की महिला के लिए औरत के शरीर का इससे अच्छा इस्तेमाल और क्या हो सकता है कि उसे बदनउघाड़ू लिबास में दारू समेत परोसा जाए। रमानी सपरिवार शराब-शबाब के इस धधे मे न मालूम कब से लिप्त है, यह न तो अब खुला है और न ही भविष्य में खुलेगा, क्योंकि ऐसी जगहो

पर इज्वाय करने जाने वालो के पास रुतबा, पहुंच, पैसा सब कुछ है। यदि रमानी की पोल खुली तो वहां लुत्फ उठाने वालो की भी लिस्ट सामने आ जाएगी और ऐसा कौन चाहेगा कि उसके मुंह पर सरेआम कीचड़ पड़े।

शायद ही किसी में इतनी क्षमता होगी कि वह तदूर में फूंकी जाने वाली खूबसूरत औरत नैना साहनी को भुला पाया हो। रोएं खड़ी कर देने वाली यह घटना शायद वीभत्सता का चरम रही होगी। औरतों के जिदा जलाने का रिवाज तो अपने समाज मे खूब है, मगर नैना की तरह टुकडे-टुकड़े काटकर बटर के साथ तंदूर में फूंकने का प्रचलन नही हो पाया है। सुशील शर्मा भी कोई कम पहुच वाला आदमी नहीं रहा, कांग्रेस पार्टी और वरिष्ठ राजनीतिज्ञों तक उसकी खासी पहुच रही है। यही कारण है कि खौफनाक कारनामे के बावजूद उसके चेहरे पर कभी शिकन नहीं दिखी। सुशील को तो उसकी हिम्मत और मर्दानगी के लिए तमगे दिए जाने चाहिए। पर हुआ क्या? तमाम खबरों-बहसों के बावजूद वह एक मामूली जेबतराश की माफिक जेल के सीखचों के पीछे धकेल दिया गया और कुछ दिनो बाद ढर्रे की जिंदगी अपनाकर फिर सफेदपोशो के बीच अट्टहास करता दिख जाएगा। न तो उसमें स्वयं अपराधबोध पैदा होगा और न ही यह क्रूर समाज उसकी हैवानियत के लिए उसे कोंचेगा।

इस चर्चित और विवादास्पद मामले में शराब, बिगड़ैल रईसजादो, ऊची पहुच और व्यवस्था को ठेगा दिखाने वालों से बहुत अलग एक सच्चाई और भी है, जिसे अलग-अलग ढंग से दबा-छिपाकर रखने का प्रयास किया जा रहा है। यह भी असंभव नहीं है कि मामला उधडकर सामने आए ही। रमानी और मृतका के संबंधी कभी नही चाहेंगे कि उनकी दरिंदगी समाज के सामने खुलकर आए। यहां मामला शराब परोसने का नहीं, बल्कि शुद्ध रूप से लड़कियां परोसने का है। रमानी रेस्तरां की आड में क्या-क्या करती थी इसकी विस्तृत जानकारी तो जांच से पता चलेगी, पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि रमानी की ही तर्ज पर उनके स्तर की कई हस्तियां, पार्टियों की आड मे लड़कियां परोसने का धंधा करती रही हैं। अब इससे भी मुकरा नहीं जा सकता कि हत्यारे की माग शायद शराब नहीं जिस्म थी, चूंकि मॉडल ने खुसर-फुसर के बाद मना किया था, तो कौन कह सकता है कि सौदा न पटने पर या लड़की के राजी न होने पर लडके को तैश आ गया और उसने गोली चलाकर उसका अहम् चकनाचूर करने की कोशिश की। एलीट वर्ग की इस तरह की पार्टियों में मध्यम तथा उच्च वर्ग की औसत दिखने वाली अति महत्त्वाकांक्षी लड़कियों को भड़कीली पोशाको मे

यू ही शराब या कबाब परोसने के नाम पर पेश किया जाता है। यहा खासी मोटी रकम चुकता करके अपनी पसंदीदा लड़की को अपने साथ ले जाने की छूट होती है। घर-परिवार और रिश्तों से ऊबे इन बिगडैल, उफनाते पैसावालों का यह रोजमर्रा का शौक बनता जा रहा है। दरअसल तडक-भड़क और चकाचौंध की आड़ में ये इंसटेट चकलाघर चलाने का उदाहरण है। इन पर न तो कोई उंगली उठा सकता है और न ही इनकी परतें खोली जा सकती हैं, क्योंकि इन्हें चलाने और यहां आने वाले दोनों ही ऊंची पहुंच के मालिक होते हैं। डंडा खटखटाता कोई दरोगा इनकी देहरी लांघ नहीं सकता, इसलिए ये बेधडक, सीना फुलाए अपने धंधे चलाने मे मशगूल रहते हैं। वरना क्या वजह है कि ऊंची पहुंच वाली जानी-मानी हस्ती होने के बावजूद रमानी ने मीडिया को न तो कोई स्पष्टीकरण दिया और न ही मॉडल के घरवालों ने तमाम आरोपों-प्रत्यारोपों का कोई प्रत्युत्तर दिया या पलटकर जवाबी बयान दिए।

गैरकानूनी रूप से चाहे शराब परोसना हो या जिस्म, दोनों ही काम जिस समाज में घृणित माने जाते हैं, ये लोग उससे बहुत ऊपर हैं। उच्च वर्ग से आने वाले इन तमाम लोगों के लिए यह मात्र लुत्फ उठाने तथा 'फॉर ए चेंज' का मामला है। इनके लिए एक गिलास विदेशी वाइन का हाथ में होना या एक आकर्षक लडकी का बगल में सोना, बराबर ही है। जिस्म का इससे अच्छा और सफाई से चलाया जाने वाला धंधा कोई दूसरा नहीं हो सकता। शार्टकट में पैसा कमाने की चाह में सैकडो मध्यवर्गीय आकर्षक लडकियां रमानी जैसियों की सिरफिरी बातों में आ जाती हैं। यहां शुरू होने वाले चंगुल का कोई अत नहीं होता, वे पहले लालच फिर ब्लैकमेलिंग के चलते इसमें धंसती ही चली जाती हैं। एक दिन उकता-कर कोई बिगडैल इन्हें मार डालता है या घबराहट में ये खुद ही मौत को गले लगा लेती हैं। ऐसा ही कुछ करने का बीना ने भी प्रयास किया था, फर्श वगैरह धुलवाकर सबूत मिटाए पर बात न बन पाई। शारीरिक आनंद लूटने वाला यह वर्ग पैसा फेंककर सब्जी-तरकारी की माफिक लडकी लाता है, बिना किसी संवेदना या तर्क के उसे इस्तेमाल करता है और फेंक (छोड़) देता है।

सबसे दुर्भाग्यपूर्ण है समाज में इस तरह की लड़कियो के एक पूरे वर्ग का पनपना। ये लडकिया अति महत्त्वाकांक्षी हैं, सुविधाभोगी हैं—पैसा, ऐशोआराम, अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त लेबल वाले कपडे और पांच सितारा होटलों का सुख इनको यह सब करने के लिए विवश कर देता है, जो सामाजिक दृष्टि से हेय है। थोड़े से पैसे और सुख के लिए ये अपना शरीर नुचवाती हैं और बाहर की दुनिया

में खुद की सुखी, ग्लैमरस और आजादखयाल, बिंदास छवि पेश करती है। इनमें से कुछ लड़किया पारिबारिक दबाव या जरूरत के चलते, कुछ अनजाने मे तो कुछ ब्लैक मेल किए जाने के डर से इसमें फंसती चली जाती है।

रमानी जैसी महिलाएं चमक-दमक और ऐशो-आराम की इस दुनिया के पीछे क्या-क्या गुल खिलाती हैं, इसका खुलासा होना नामुमकिन है। सामाजिक रूप में प्रतिष्ठित ये बिगडैल लोग अपनी इच्छाएं तृप्त करने लालबत्ती इलाको मे इसलिए नही जा सकते क्योकि इनकी प्रतिष्ठा को चोट पहुंचती है तथा शरीर की दुकान लगाने को मजबूर वे औरतें इनके स्टैंडर्ड से बहुत पीछे होती हैं। ऐसे मे इस तरह के रेस्तरां, मसाज पार्लर और खास पार्टियां इन्हे मनचाही मुद्रा के एवज में वह सब मुहैया कराती हैं, जिसके लिए तमाम मौसियों को पुलिस वाले सरेआम जलील करते है और डंडा फटकारते थाने तक घसीट लाते हैं।

संवेदनशील लड़कियां कहां जाएं?

हमारे पडोस की एक लड़की ने आत्महत्या कर ली। आत्महत्या करने की वजह कोई मामूली-सी बात बताई गई। कुछ दिन पहले ही अखबारों में खबर थी कि बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले के कुमारी गांव में तीन नाबालिग लडकियो ने खुदकुशी कर ली थी। पुलिस के अनुसार, उनके मां-बाप गरीब बीड़ी मजदूर थे, जिनके लिए बच्चियों की पढ़ाई बेकार थी। इसलिए वे चाहते थे कि बच्चियो की शादी कर दी जाए। शादी के विरोध में बच्चियों ने खुद को खत्म करने का कडा निर्णय ले डाला।

बीते साल कानपुर के पास के एक कस्बे में एक मेधावी युवा लडकी ने भी इस बात पर खुदकुशी की थी कि उसके मां-बाप नहीं चाहते थे कि वह नौकरी की चाह में ज्यादा पढ़े। उन्होंने लड़की पर दबाव बनाया कि वह शादी के लिए हां कर दे, क्योंकि नौकरी मिलना आसान नहीं है। लडकी के दिल को यह बात छू गई। किसी से बिना कुछ बोले उसने खुद को कमरे में बंद कर लिया और पंखे से लटक गई। कुछ दिन पहले ही हरियाणा के एक जाट परिवार की बहू ने जहर इसी विरोध मे खाया कि परिवार वाले उसे औरत की तरह रहने पर मजबूर कर रहे थे।

ये या इस तरह की अन्य घटनाएं, जो लगभग हर वर्ष देश के किसी न किसी कोने में दोहराई जाती हैं, सबूत हैं संवेदनशील लडकियों के समाज में जीने के हक छीनने के। ये समाज किसी लड़की को अधिकार नहीं देता है कि वह अपने दिमाग से कुछ सोचें, सपने देखें और भविष्य की कल्पनाएं करें। लडकी जन्मते ही परिवारवाले एक सांचा बना देते हैं और चाहते हैं कि लड़की उसी साचे मे दुबककर अपना जीवन काट दे। चाहे पढाई का मसला हो या नौकरी चुनने का, गृहस्थी बसानी हो या जीवन साथी का चुनाव करना हो, सब जगह घर-परिवार हावी रहता है। उन्हें लगता है, उनके बनाए रास्तों पर लडकियां भेडो की तरह चलती चली जाएं। कानपुर की तीन लड़कियों द्वारा की गई सामूहिक आत्महत्या का मामला हो या आगरा की दो बहनों का, इन पर लगातार बहस हुई

व लबे-चौडे बयान छपे। परंतु अंततः लड़कियो के हिस्से क्या आया। आज भी कानपुर की तीन बहनों की आत्महत्या की कडी में लडकियां द्वारा दहेज के विरुद्ध आत्महत्याएं जारी हैं। दुर्भाग्य से ये खबरें छिट-पुट ही छप पाती हैं, बल्कि कई दफा छापने के लिए इन पर तवज्जो ही नहीं दी जाती।

हजारों संवेदनशील लडकियो को विवाह की उम्र मे आप जबरदस्त डिप्रेशन का शिकार पाएगे। इसका कारण उनका अविवाहित रह जाना नही होता, बल्कि अपने परिवार को दहेज के लिए दर-दर की ठोकरें खाता देख वे स्वयं को अपराधी समझने लगती हैं। हद तब होती है जब तमाम कर्जा लेने, घर गिरवी रखने, सारी जमा-पूंजी लगाने के बावजूद लड़के के घरवाले सतुष्ट नही होते और उठते-बैठते लड़की को ताने सुनाते हैं कि वह पूरा दहेज नहीं लाई। हारकर कुठित लड़की मौत को गले लगा लेती है, जिसे बाद में यह कहकर प्रचारित किया जाता है कि वह मानसिक बीमारियों से पीडित थी या कहा जाता है कि लडकी गुस्सैल, चिड़चिड़ी और सनकी थी। ऐसा क्यों था, इसके कारणो पर कोई चर्चा नहीं की जाती।

भोपाल के नजदीक एक गांव में एक औरत को उसके पति ने बैलगाडी मे बैलों की जगह जोतकर खेत में दौड़ाया। उस औरत का जुर्म इतना था कि वह बेटा नहीं जन सकी थी, उसकी सभी औलादें बेटियां थी। बेटा या बेटी जनना औरत के हाथ नहीं होता, यह कौन समझाएगा पुरुषों को। विज्ञान बार-बार चीख-चीखकर कहता रहे कि आदमी के क्रोमेजोन ही बेटा-बेटी का निर्धारण करते है, मगर पुरुष के संकीर्ण मगज में यह तर्क कहां घुसने वाला? चूंकि हमारी परंपरा है कि हर दोष के लिए औरत को लांछित करो, औरत को ताने दो, गालियां दो, पीटो, जबरन घर से निकाल दो या मरने के लिए छोड दो। खूंटे से बंधी गाय या पिंजरे में कैद तोता और घर की औरत इस समाज मे एक ही वर्ग में आते हैं।

तमाम अधिकार और आरक्षण सरीखी बाते करने से पहले हमे चाहिए कि लडकियों को अपनी तरह से खुलकर सोचने, पंख फैलाने का मौका दें तभी दब्बू पिछडी और कुंठित लड़कियों को नए सिरे से सोचने का मौका मिल सकेगा। बदिशें, दबाव, छींटाकशी और कड़ा अनुशासन लडकी के व्यक्तित्व के विकास मे बाधक होते हैं। मनोचिकित्सकों का मानना है कि ऐसी ही संवेदनशील महिलाएं हिस्टीरिया जैसे रोगों की चपेट में आ जाती है। पुरुष अपनी इच्छाए येन-केन-प्रकारेण पूरी करने को स्वतंत्र है तो औरत सीधे और सरल रास्तो से भी क्यो न

आगे बढे! बच्चियो की पढाई से लेकर उनके खेलने-कूदन, विषय चुनने यहा तक दोस्त बनाने में भी घरवालो का हस्तक्षेप होता है। उसके कपडे, फ्राक की लंबाई, ब्रा का साइज, बालकनी में खडे होने के टाइम से लेकर साथी चुनने तक परिवार की घुसपैठ लगातार बनी रहती है।

परिवार का सबसे छोटा मर्द भी उसके उठने-बैठने, मनोरंजन और जाने-आने पर आपत्ति करने को भरपूर स्वतंत्र होता है। अपना समाज लडकी के जन्मते ही उसके इर्द-गिर्द एक तालिबानी शासन-सा गढ देता है जिसे पार करना उनके लिए लगभग असंभव हो जाता है।

समानता को ठोकर मारिए, प्रकृति से मिले गुणों को यदि स्वत: प्रवाहित होने दिया जाए तो लड़की किसी से कम नहीं होती—यह संस्कार डालने की बजाए, समाज मे उसे डराया जाता है। स्थितियों से लड़ने के बजाय उसे कैद मे रहने की नसीहत दी जाती है। छेड़छाड़, छींटाकशी, अशोभनीय टिप्पणी, सवेदनशील अंगो पर प्रहार, कामुक निगाह से देखने या घूरने, अभद्रता से पेश आने वालों से मुकाबला करने या आपत्ति दर्ज किए जाने के बजाए उसे ऐसी स्थिति से दुबकने का पाठ पढाया जाना कतई अनुचित है। क्योंकि अभद्र पुरुषो को ऐसे मौकों की तलाश हमेशा ही रहती है, एक लड़की दुबकी तो दूसरी को शिकार बनाया। यदि पहली बार में ही इन्हे करार झटका पड़ जाए तो क्या मजाल कि दोबारा ऐसी हरकत का प्रयास भी किया जाए।

इस सबके लिए जरूरी है कि स्कूली शिक्षा में बदलाव लाया जाए। संवेदनाओं के साथ खिलवाड़ करने वाली स्थितियों से जूझने लायक लड़की को सख्त बनाया जाए। उनकी भावनाओ की कद्र करना समाज और परिवार को सिखाया जाए। सरकारी प्रचार माध्यमों के द्वारा पुरातनपंथी मान्यताओं को तोड़ने का प्रयास हो। उच्च पदों पर बैठे लोगों को संदेश दिया जाए कि लड़की के पंख काटने जैसी स्थिति न आए—इसके लिए हमें उसे खुला, स्वच्छंद और स्वच्छ आकाश देना चाहिए। उसकी प्रतिभा को निखारने देना चाहिए, घर के लड़के की तरह उसे खाने, पहनने, घूमने, सोचने से लेकर अपना भविष्य संवारने का मौका देना चाहिए। उसकी सुरक्षा का कर्तव्य केवल ऐसे ही निभाना चाहिए जिससे उसकी भावनाएं आहत न हों, संवेदनाएं बिखर न जाएं। घुटन और बंदिशें उसे शरीर से मुक्ति पाने के रास्ते पर न धकेल दें। उसे वैचारिक स्वतंत्रता का अधिकार हो।

जीवन की जग मे बच्चा भटक न जाए, इतना अनुशासन ही पर्याप्त होता

है। पर जब यह अनुशासन लिग-भेद पर सिमट आता है तो इसका तात्पर्य बदल जाता है। लड़की के प्रति सामाजिक नजरिये मे जबरदस्त बदलाव यदि जल्द से जल्द लाने के प्रयास न हुए तो तमाम संवेदनशील लडकियां इसी तरह के हादसों का शिकार होती रहेगी या फिर मानसिक रूप से बीमार होकर तिरस्कार सहने को अभिशप्त होगी।

औरत की दुश्मन औरत हो ही नहीं सकती

महिलाओं के विकास से, महिलाओं के स्वभाव से, महिलाओं के प्रभाव से घबराने वाले तमाम उक्त पुरुषवादी सोच वाले पुरुष महिलाओं को आरोपों, प्रलापों और व्यंग्य-बाणों द्वारा भेदने से नहीं चूकते। ऐसे विचारों वाले धुरंधरों का दावा होता है कि महिलाओं की दुश्मन नंबर वन महिलाएं ही होती हैं। अपने कुतर्कों, गढे हुए किस्सों और इस्तेमाल किए जा सकने वाले नुक्तों के द्वारा वे लगातार इसे प्रमाणित किए जाने के लिए प्रयासरत रहते हैं। जबकि सत्य तो यह है कि औरत ही औरत का दु:ख समझती है, उसमें ही इतनी भावनात्मक गहराई होती है कि वह किसी भी मादा का दर्द महसूस कर सकती हैं।

औरत जात कहीं एक होकर मर्दो के खिलाफ लामबंद न हो जाए, इसी भय से मर्द इन्हें घर-बाहर सब जगह लडाता रहता है। चूंकि आम भारतीय परिवारो मे घर का मुखिया मर्द होता है अतः वह औरतों से एक-दूसरे के खिलाफ हमले करवाता है, सिर्फ इसलिए कि उसकी सत्ता कायम रह सके। सुगढ, नवेली, पढी-लिखी जवान बहू के खौफ से वह सास को हथियार बना लेते हैं।

औरत को औरत के प्रति भडकाने वाले, लड़ाने वाले, उसे इस्तेमाल करने वाले डरे हुए पुरुषों के समूह उसका प्रयोग लोहे से लोहा काटने के फलितार्थ करते फिरते है। जहां वे स्वयं को औरत की तुलना मे कमजोर पाते है, वहीं दूसरी औरत से उसे रेलने का काम शुरू कर देते हैं। मां हो या सास जब वह नवयुवती या नववधू पर व्यंग्य बाण कसती है, उसे टाइट करने का प्रयास करती है, घुडकती है, धमकाती है या कभी धौल भी जमाती है तो उसके पीछे उस औरत के मुह में उसके पुरुष की जुबान काम करती है। पुरुष औरत का इस्तेमाल सिर्फ शारीरिक जरूरतों के लिए नहीं करता—यह हमारा भ्रम है। पुरुष अपने आसपास की औरतों को दिमागी तौर पर लगातार अपाहिज बनाने का प्रयास हरदम, हर वक्त करता रहता है। वह चाहे चेतन रूप में हो या अवचेतन मे, जब वह मा और बीवी में संतुलन नहीं बना पाता तो दोनों को लड़वा देता है और खुद बदरवाली जगह बैठ जाता है। उनका झगडा सुलझाने की बजाए वह उसे हर बार

और हवा देता है, क्योंकि उसे इससे संतुष्टि मिलती है। उसके अहम की सतुष्टि उस झगडे से इसलिए भी होती है, क्योकि यहा वह न्याय की कुरसी पर बैठा स्वयं को गौरवान्विन समझता है। अपनी महत्ता को इस झगड़े से बढ़ते देख वह चुप कैसे रह सकता है। वह इस घरेलू झगड़े मे स्वय को सिकंदर मान बैठता है।

दूसरे, सास-बहू, की लडाई को औरत-औरत की लडाई के परिप्रेक्ष्य में देखने वाले निहायत कुंद है। यह लड़ाई औरत जात की औरत जात से नही है, यह लड़ाई अधिकार और प्राप्ति की है, भावना की है। मनोवैज्ञानिक रूप से देखें तो औरत और आदमी के बीच नर-मादा का ही रिश्ता शाश्वत है, बाकी सारे रिश्ते तो केवल नामकरण मात्र हैं। फ्रायड का मानना था कि मां का बेटे से जबरदस्त लगाव उसका अपना खून होना नहीं है, बल्कि उन दोनो मे विपरीत सेक्स वाला आकर्षण होता है। सीधा-सा मनोवैज्ञानिक तर्क है—अपने द्वारा तैयार किए गए मर्द को झटके से एक अनजान (बहू) औरत के सुपुर्द करने में मां अचकचाती है और पुरुष इस भावना का लगातार खिलवाड करता है। वह कभी मां तो कभी बीवी के पाले में गेंद-सा लुढ़कता रहता है।

ज्ञानी और समझदार मर्द औरतों को कभी प्यार से तो कभी चतुराई से एक-दूसरे के खिलाफ भडकाकर अपने तमाम काम बना लेते है। युवा होती खूबसूरत बेटी के प्रति किसी भी पिता का आकर्षण मर्दाना ही होता है। यही कारण है कि वह बेटी के प्रेमी, सड़क छाप मजनुओं से खौफ खाता है और बीवी के जरिये उन्हें दूर करने का प्रयास करता रहता है।

औरत को स्वजातीय दुश्मन ठहराने वालों का अकेला तर्क होता है—दहेज हत्या। दहेज हत्याकांड की अमूमन घटनाओ मे सास, ननद आदि को दोषी पाया जाता है, जिसे देखते हुए यह धारणा बन गई है कि औरत ही औरत को मारती है। सच तो यह है कि इस सारे षड्यंत्र के पीछे भी पुरुष का शैतानी दिमाग काम करता है। बिलकुल नए और भिन्न वातावरण मे स्वभावत: नवविवाहिता समायोजित नही कर पाती। एक पलड़े पर पूरा परिवार और दूसरे पर वह अकेली। अगर उससे ब्याहा पुरुष उसके पलड़े में आ जाए तो संतुलन तो स्वत: ही हो जाए, मगर वह तो तराजू का काटा बन जाता है, जिधर भार देखा उधर ही झुक लिया। किसी भी दहेज हत्याकाड के मामले को छानें तो पाएगे कि मामले को अजाम देने से लेकर भूमिका बनाने तक में पुरुष नेपथ्य में रहने के बाद भी केंद्रबिंदु होता है। मां को लगातार उकसाना हो या अपनी पत्नी की जडो पर तेजाब डालना, यह काम वह

भरपूर बारीकी और सफाई से करने के बावजूद पुलिसिया छानबीन मे झट पकड लिया जाता है।

कोई भी सास, चाहे वह कितनी ही ताकतवर क्यों न हो, बहू के खिलाफ तभी तक साजिश कर सकती है, जब तक बेटे की शह हो। बेटे के मुंह फेरते ही उसके हाथ खाली हो जाते हैं।

पुरुषवादी सोच के शिकंजे में जकडे ये तमाम लोग क्या इस बात का कोई जबाब देंगे कि दहेज हत्याएं महिलाओं के कारण होती हैं, तो बलात्कार, छेड़छाड, व्यभिचार, ईवटीजिंग, पति द्वारा पिटाई या जबरन सेक्स की घटनाओं में दिनोंदिन इजाफा क्यों होता जा रहा है? क्या ये सारी घटनाएं महिलाओं की महिलाएं दुश्मन हैं, इसलिए बढ रही हैं? लाखों महिलाओं को प्रतिवर्ष वेश्यावृत्ति जैसे धंधे में झोंकने का काम पुरुषों के महिमामंडित हाथों द्वारा ही होता है। लालबत्ती इलाकों को भोगने वाले पुरुष ही होते हैं। वहां तो औरतें नहीं जातीं और जो पहुंचाई भी जाती हैं, वे समाज को (निश्चित रूप से पुरुषों के इस समाज को) औरत के रूप में स्वीकार्य नहीं होतीं। उन्हे तमाम अलंकरणों से सुशोभित किया जाता है।

खैर, यह अलग बहस का मुद्दा है। ज्यों ही औरत दूसरी औरत के जख्मो पर मरहम पट्टी करना शुरू करती है, पुरुषों के समूह के समूह घबराकर उस पर प्रहार करना चालू कर देते हैं, (इसे 'फायर' के संदर्भ में भी समझा जा सकता है)। औरत कभी औरत की दुश्मन नहीं होती, उसे बनाया जाता है, उसे इस्तेमाल किया जाता है—हथियार की माफिक। अपनी कमजोरियां अपने डर, अपने वहम, अपनी गैर-जिम्मेदाराना हरकतो के बचाव के लिए एक औरत को दूसरी औरत के खिलाफ पुरुष स्वार्थवश इस्तेमाल करता है, वे स्वयं कभी नहीं लड़तीं।

हिंदू धर्म की बेचारी देवियां

प्रतिवर्ष नवरात्रों के दिनों दुर्गा यानी शक्ति की पूजा में हिंदू समाज डूबा रहता है। श्रद्धालुजन कन्याओं की एक दिन (!) पूजा करते है, उनके पांव छूते हैं और उन्हें जिमाते हैं। शक्ति यानी देवी की पूजा करने वाला यह समाज निहायत चालाक, धूर्त और पाखंडी है। यह देवी की पूजा करता है पर घर मे पत्नी की कुटाई भी करता है, इन्हीं में से कोई बच्ची से बलात्कार करता है या उसे जन्मने से पहले ही गर्भ से गिरवा देता है या जन्म लेते ही उसका टेंटुआ दबा देता है।

कुल मिलाकर इस हिंदू समाज का कोई चरित्र नहीं है, यहां कोई तर्क नहीं चलते। खैर, यहां बहस का विषय यह सब कदापि नहीं है। देवी पूजन करने वालो ने कभी यह सोचा है कि जिन देवियों को पूज रहे हैं उनमें से कोई किसी पुरुष की ब्याहता या बहू नहीं है। दुर्गा, चडी या काली को लें। मूल रूप से देवियो के नाम पर दुर्गा और काली दो ही देवियों का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। ये दोनों सेल्फ मेड टाइप देवियां हैं। इनमे भी अकेली काली अवतारी है यानी उनको जन्म देने वाली कोई औरत (देवी) नहीं है और दूसरी हैं दुर्गा, जिन्हे पार्वती के रूप में गिन लिया जाता है।

हिंदू धर्म ने काली और दुर्गा को न किसी की बेटी बनाया, न ब्याहता और न ही बहू। यानी इनका स्वतंत्र अस्तित्व है। इनके ऊपर कोई पुरुष रूपी अंकुश तो नहीं ही है, इसीलिए ये बलशाली है। काली ने तमतमाए, गरमाए, हुड़दंग मचाते शिव को अपनी शक्ति के आगे धाराशायी करके जो क्रांति की थी, वह तमाम औरतों के लिए शक्ति का आधार बन सकती है। मगर यहां सबसे बडा अंतर्विरोध क्या यही है कि इतनी शक्ति बटोरने के लिए औरत को पुरुष के चंगुल से मुक्त कराना होगा? उन्मुक्त, स्वतंत्र, अंकुशविहीन जीवन ही औरत के अंदर की शक्ति, उसके तेज, उसकी ऊर्जा को पुरुष के मुकाबले खडा कर सकता है? पुरुष का दबाव, उसका दंभ, उसकी अधिकार जताने और शोषण करने की प्रवृत्ति इतनी हावी होती है कि उसके सानिध्य में स्त्री-चरित्र का उभर पाना नामुमकिन हो जाता है।

हालांकि आधुनिक समाज स्त्री के मामले में आज भी इतना सकीर्ण है कि वह कभी एकल स्त्री का वजूद खुले मन से नही स्वीकारता। वह उसे लांछित करता है, तरह-तरह के आरोप मढ़ता हे, हेय नजर से देखता है, समाज में ब्याहता की बराबरी का दर्जा देने में सकुचाता है। हालांकि ब्याहताए किसी ऐसे तमगे से नहीं सुशोभित होती जो अप्राप्य हो। पर अपनी सत्ता के प्रदर्शन के लिए पुरुषों ने अपनी ब्याहताओं को अलग कर लिया।

ब्याहता का अपना कितना अस्तित्व होता है यह तो किसी आमंत्रण आदि पर अक्षरित ही रहता है। जहां वह सिर्फ श्रीमती रह जाती है, बाकी का परिचय श्री साहब के खाते में ही जाता है। यूं भी संभ्रांत वर्ग हो या गली-मुहल्लों का प्रतिनिधित्व करने वाला आम भारतीय वर्ग, सभी मिसेज शर्मा, मिसेज अरोड़ा, मिसेज बनर्जी या शर्माइन, अरोडाइन, बनर्जिन रह जाती हैं। खासकर कुछ वर्गों मे तो लड़कियों का शादी के बाद बाकायदा एक अनुष्ठान मे ससुरालियों द्वारा नाम बदले जाने का आज भी रिवाज है। जाति नाम बदलने को स्वाभाविक ढंग से लेने वाला यह समाज कभी इस पर मुंह नहीं बिचकाता कि एक लडकी को उसके जन्मना नाम से ही जाना जाना चाहिए।

देवी यानी दुर्गा और काली के मंदिर को छोड दें तो बाकी किसी देवी का स्वतंत्र अस्तित्व नही है। सीता, राधा, लक्ष्मी, पार्वती आदि के चरित्र में उनका त्याग केवल पतिप्राप्ति के लिए है। उनका प्रेम प्रगाढ़ है, पति के लिए सौ प्रतिशत समर्पित हैं, पर उनकी अपनी कोई विशिष्ट पहचान नहीं है। सीता ने राम के लिए (बनवास) तमाम कष्ट सहे, राजसी ठाठ-बाट छोड़ दिए पर अंततः उन्हें औरत होने की सजा भोगनी पड़ी। राम ने उन्हें घर से निकाल दिया, वह भी मात्र एक लांछन के चलते। दूसरी तरफ राधा का प्रेम है, जबरदस्त, असीम, अनत। वह कृष्णप्रेम में दीवानी है, मगर कृष्ण 16 हजार रानियो के शौहर, लीलामग्न हैं। राधा उनकी ब्याहता कभी नहीं बनी, इसीलिए राधा को देवी का दर्जा भी नहीं दिया गया। हिंदू धर्म का शायद यह बडप्पन ही है (या हो सकता है यहा कोई चूक हो गई हो) कि मंदिरों में कृष्ण के साथ में राधा भी हैं। मंदिर में आकर वह पूजनीय हो जाती हैं, वरना अकेली, असहाय, आंसू बहाती वह प्रेम-अगन मे तडपती रहती। लक्ष्मी— हिंदू समाज की परम पूजनीय देवी, धन बरसाने वाली, किंतु शेषनाग पर पांव पसारे विष्णु की दासी। धन-धान्य की इस देवी का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वह कभी विष्णु के साथ तो कभी गणेश, जो उनके दामाद हैं, के साथ पूजी जाती हैं। वहां भी गणेशपूजन पहले है, पीछे लक्ष्मीपूजन।

पार्वती का प्रेम भी राधा से कम नही है—शिव को पाने के अथक प्रयास, पीडा, पूजन, तप और अतत: समर्पण। उनका सारा तप शिव की अर्द्धांगिनी बनने तक सीमित रहा। खैर, इतने के बाद भी पार्वती का कोई मंदिर नही है। वह पूजनीय है, मगर शिव की बगल मे बैठकर। धन की देवी लक्ष्मी की ही तरह विद्या की देवी सरस्वती है। कुछ जगहो पर बसंत-पंचमी पर उन्हें पूजा भी जाता है, मगर उनके मंदिरो का शायद कहीं अता-पता मिलता है। जबकि धन ओर विद्या का जीवन मे बढता महत्त्व भी इन देवियों को कुछ विशेष नही दिलवा सका।

शोभा डे ने एक बार अपने कॉलम में लिखा था कि हिंदू-धर्म मे देविया तो ढेर हैं, मगर उनमे से किसी ने बेटिया क्यों नही जनीं। यह सवाल लाजिमी है, हालांकि लक्ष्मी की ऋद्धि-सिद्धि नामक दो पुत्रियों की चर्चा धर्मग्रथों मे है, जिनका विवाह मोदकप्रेमी गणेश से हुआ है, मगर इनकी अपनी कोई पहचान नही है यानी इनका महत्त्व कहीं नहीं है। लक्ष्मी के अतिरिक्त शायद ही किसी अन्य देवी ने पुत्रियां जनी हो—इसका क्या तात्पर्य है? देवियां ही नही, हिंदू धर्म मे देवताओ को भी प्राय: पुत्र ही प्राप्त हुए हैं, पुत्रियों की चर्चा यदा-कदा ही है।

जिस धर्म में पुत्रियों की इतनी उपेक्षा हो, उसके अनुयायियो से पुत्री की कामना करना या उसे उच्च स्थान देने की कल्पना करना, बुद्धि जैसी बात ही कहलाएगी। धर्मभीरु समाज को समझाने का अकेला जरिया है धर्म, लेकिन उसकी खामियों को कौन चैलेंज करने की हिमाकत कर सकता है?

जहां देवी-देवता तक में लिंगभेद हो, उस समाज से आप क्या आशा रखेंगे कि वह औरत को न्यायोचित और बाराबरी का दर्जा देने में कुनमुनाएगा नहीं। यह खुर्राट समाज जिसकी रग-रग में पुरुषो के लिए ही जमीन तैयार की गयी है, औरत को बस अपनी सुविधा से बित्ते-भर का स्थान देता है। वह भी कभी भी छीनने का अधिकार वह अपने पास ही सुरक्षित रखता है। इसीलिए शक्तिशाली चडी या काली जैसी दीप्तिमान औरत पुरुषों के बुने इस समाज में पैदा हो ही नही सकती, उसे तो अवतारी ही होना होगा।

मुसलमान क्यों हुईं कमलादास?

माधवी कुट्टी उर्फ कमलादास यानी आज की सुरैया अंग्रेजी की सिर्फ चर्चित ही नहीं, बल्कि विवादास्पद लेखिका भी हैं। अपनी लेखनी से उन्होंने अब तक कई बार साहित्यिक जगत में सनसनी पैदा की है। मगर अचानक 67 वर्ष की (सठियाई) उम्र में उन्होंने मुसलमान बनने का एलान कर सबको चकित कर दिया। कमलादास जितनी प्रगतिशील और खुले विचारों वाली महिला के रूप में अपना जीवन बिता चुकी हैं, उसे देखते/जानते हुए यह कल्पना करना लगभग नामुमकिन है कि कमलादास उस धर्म से प्रभावित हो सकती हैं, जिसमें हिंदू धर्म जैसी ही संकीर्णता हो और महिलाओं को दोयम दर्जा दिया जाता हो।

कमलादास अंग्रेजी की बडी साहित्यकार है। उन्होंने अपनी रचनाओं से समाज को झकझोरा है। उनकी प्रतिभा या रचनाशीलता पर शक की कोई गुंजाइश नहीं रही। मगर अचानक लिया गया उनका यह निर्णय न सिर्फ कौतूहल पैदा करता है बल्कि उनके भीतर पल रहे बचपने को भी उकेरता है। ऐसा न होता तो इतनी बड़ी लेखिका स्वयं को सनातन धर्मनिरपेक्षतावादी जताने का प्रयास करती, बजाए इस सनक-भरे-से निर्णय के। वे कहती हैं कि 27 साल पहले ही उन्होंने मुसलमान बनने का निर्णय ले लिया था, लेकिन उनके बच्चे उस समय 'सैटल' नहीं हुए थे या उनके विवाह नहीं हुए थे, इसलिए उन्होंने इतने दिन इंतजार किया। कितनी अजीब बात है एक (अति) प्रगतिशील महिला को अपने अंतर्संबंध लिखने के बारे में तो किसी से सलाह नहीं लेनी पडी, अपने उन्मुक्त जीवन को किसी दबाव के कारण टालना नहीं पड़ा, फिर धर्मपरिवर्तन मे इतना समय क्यों लग गया। दरअसल, कमलादास टाइप की महिलाएं जिस मुकाम पर पहुंच चुकी हैं, उससे उन्हे ऊब होनी स्वाभाविक है। अपना सारा जीवन स्वतंत्र विचारों, उन्मुक्तता, स्वच्छंदता और खुलेपन के साथ बिताने के बाद एक सम्राज्ञी की तरह यह एलान करना बड़ा सुखद व मनोहारी होता है कि मैं धर्मपरिवर्तन कर रही हूं या बुढ़ापे में ब्याह कर रही हूं।

उन्होंने कैसे भुला दिया कि जिस धर्म की वे इतनी तरफदारी करते नहीं

अघा रही हैं वहां औरत की स्थिति हिंदू, ईसाई, सिख या अन्य धर्मो के अपेक्षा बहुत दयनीय है। उन्हें चाहिए था कि एक बार वे मुसलमान औरतों से उनकी मन:स्थिति पूछ लेतीं तो शायद लौट आतीं अपने धर्म में। बिंदास जीवन बिताने के बाद ऊबी हुई कमलादास को इस्लाम की बंदिशें और नियम अचानक इतना लुभा गए कि उन्होंने अपना जन्मना धर्म छोड़ दिया। अद्‌भुत तर्क है यह।

दास कहती हैं—इस्लाम मे उन्हें जो सबसे ज्यादा आकर्षित करता है वह परदा प्रथा। मुसलमान औरतों का बुरके में रहना उन्हें प्रभावित करता है, इसीलिए पिछले 24 सालों से वे स्वयं परदा करने लगी हैं। उनका तर्क है कि उन्हे खुलापन नहीं, सुरक्षा चाहिए। उन्हें एक मालिक चाहिए जो उन्हें सुरक्षा दे। वह ऐसे कपड़े पहनना चाहती हैं कि कोई उन्हें छू तक न सके। सारे कारण जो उन्होंने गिनाए निहायत बचकाने और बेतुके हैं क्योंकि दुनिया का कोई धर्म औरत को खुली छूट नहीं देता। सब धर्मो मे औरत के लिए कडे नियम और सजाएं शामिल है। जिस धर्म से कमलादास पीछा छुड़ा रही हैं, जरा उसके भीतर झांकतीं तो वहा भी उन्हें वही संकीर्णताएं और बंदिशें साफ मिलतीं, जो उन्हें मुसलमान बनकर मिलेंगी।

कमलादास टाइप के प्रबुद्ध लोगों को तो इस धर्म, जाति, संप्रदाय से ऊपर उठना चाहिए। हिंदू धर्म में कौन-सा खुलापन दास को चुभ गया, यह तो वही जाने। हिदू धर्म में परदा प्रथा इस्लाम से ज्यादा ही है, रही सुरक्षा के लिए एक मालिक की जरूरत तो आंख मूंदकर किसी को भी स्वीकारा जा सकता है, क्योंकि भगवान तो केवल आस्था का रूप है, उसे अल्लाह मानो या जीसस। दास ने अपने पूर्ण जीवन में जो कुछ जिया है वह इस्लाम में हराम है। कुरान में साफ लिखा है—''आस्तिक स्त्रियों के लिए निर्देश : आकर्षण से दृष्टि हटाएं और सतीत्व बचाएं, साज-श्रृंगार रखें ढका, सीने पर ओढनी रहे, साज-श्रृगार सिर्फ दिखाया जा सकता—पति, पिता, ससुर, पुत्र को।''

लेकिन क्या सब मुसलमान औरतें आज के समय में इसका पालन करती है या कर सकती हैं। ये बातें किताबी हो चुकी हैं। संभ्रांत समाज में यह नामुमकिन है। हिदू धर्म में चाणक्य जैसा नीतिवान भी औरतों के लिए ऐसे ही कठोर नियम बना गया था।

कुरान में एक जगह साफ लिखा है कि ''पुरुषों को अधिकार है स्त्रियों पर, एक को बनाया दूसरे से श्रेष्ठ. .भली स्त्रियां हैं आज्ञाकारी, जिनसे अवज्ञा का भय उन्हें अलग पलंग पर भेजो और पीटो उन्हें।''

हिंदू धर्म उससे दो कदम आगे है, महाभारत में एक जगह भीष्म पितामह कहते हैं—'पति को चाहिए वह स्त्री को संपत्ति समझे।' यही नहीं हिंदुओं के परमप्रिय देवता भगवान रामचंद्र ने रामायण में कहा है—'मैं अपना समस्त राज्य, उत्तराधिकार, यहां तक कि अपनी पत्नी और सभी मूल्यों को भरत को स्वेच्छा से प्रदान कर सकता हूं।'

उधर कुरान का कहना है—'यदि भय हो बेसहारा कन्याओं से उचित व्यवहार में रहने का, जो भली लगें ब्याह लो, इनमे से दो, तीन या चार।'

महाभारत मे स्पष्टतः कहा गया है—'स्त्रियो से अधिक पाप की अन्य कोई वस्तु नही, स्त्री सभी बुराइयों की जड है, स्त्री प्रज्वलित ज्वाला है, वह माया-रचित भ्रम है, उस्तरे से तेज धार है, वह अग्नि है।' इन उदाहरणों का मकसद यह साफ करना है कि औरत को धर्मो ने सिवाय एक चीज से ज्यादा कुछ नही समझा है। औरते सिर्फ मर्दो के सुविधानुसार इस्तेमाल की जाने वाली एक चीज हैं! धर्म चाहे कोई भी हो, कभी औरत को मर्द जैसा रुतबा नहीं देता।

दुनिया के हर धर्म में औरत को मर्द से नीचे ही रखा गया है। उसे कभी-कहीं बराबरी का स्तर नहीं दिया गया है। ऐसे में दास को चाहिए था कि वे औरत को उचित स्थान दिलातीं, न कि संकीर्णता की वकालत करती फिरतीं।

इसीलिए कमलादास जैसी तेज-तर्रार, प्रबुद्ध, खुले विचारो वाली महिला का अतार्किक तरीके से धर्म बदलना अजीब नही, घटिया मजाक जैसा लगता है। 1934 में जन्मी कमलादास ने मलयालम में लघुकथाएं और कविताएं लिखने से अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत की, पर 'द ओल्ड प्ले हाउस' और 'अदर पोयम्स' (1973) ने उन्हें चर्चा में ला दिया। ये कविताएं एक अतृप्त औरत की संवेदनात्मक भूख के इर्द-गिर्द रची गई थीं। इसलिए साहित्य जगत में कमला के खुलेपन—असल मायने में नग्नता—पर जमकर बहस हुई। प्रेम और विवाह के इर्द-गिर्द खूब रस ले-लेकर उन्होंने रचनाएं परोसीं और जबरदस्त चर्चा पाई। 1974 मे अपनी आत्मकथा 'माई स्टोरीज' से उन्होंने तहलका मचा दिया और स्थापित कर दिया कि वो बोल्ड लेखिका हैं।

खुलेपन की दुनिया मे क्रांति लाने वाली यही लेखिका अचानक इतनी रूढिग्रस्त और पुरातनप्रेमी कैसे हो सकती है, यह एक गंभीर मुद्दा है। लेखन के लिए '85 में साहित्य अकादमी के अवार्ड से नवाजी गई दास से दुनिया-जहान यह उम्मीद करता है कि वे महिलाओं के हित में इस शताब्दी की संध्या बेला पर कुछ ठोस करेंगी। अभी भी हमारे समाज में सती, दहेज हत्या, मादा भ्रूण-

हत्या जैसी वीभत्स घटनाए आम हैं। औरते आज भी दोयम नहीं, बल्कि चतुर्थतम् जीवन बताने को अभिशप्त हैं। औरतें अभी भी खरीदी और बेची जाती हैं, ऐसे में दास औरतो के सुफल जीवन की कामना करतीं या इस तरफ दो कदम उठातीं तो अधिक तर्कसंगत होता। एक अंधेरी गली से दूसरी संकरी गली में घुसना कौन-सा दुस्साहसिक कार्य है?

कमलादास तुम सुरैया बनो या सूजन, रहोगी तो औरत ही न।

नारी देह पर पुलिसिया नजर

हिंदू संस्कृति औरत को पूजनीय मानती है और उसे देवीतुल्य समझा जाता है। इसी महान हिंदू संस्कृति में स्वर्ग-नरक की अवधारणा भी है। मृत्योपरांत पापियों को नरक भोगना होता है, जहां उन्हें उनके किए के अनुपात में तरह-तरह की क्रूर यातनाएं दिए जाने का प्रावधान है—ऐसा गरुड़ पुराण में वर्णित है। इतनी सब व्यवस्थाओं (धमकियों) के बावजूद पुरुषों (खासकर पुलिसियों) की यातनाए इतनी बर्बर और भयानक हैं कि नरक देवता भी दहल जाएं। कानपुर के ककवन थाना क्षेत्र में तमाम कुंवारी लडकियो और विधवाओं के साथ और इधर उरई में एक दलित महिला के साथ पुलिसियो ने जो क्रूरतम बरताव किया उससे नरक के देवताओं ने भी तौबा करके आंखें मींच ली होंगी।

ककवन की घटना अगस्त 1999 की है, जब पुलिस को एक नवजात शिशु के झाडियों में पडे होने की सूचना दी गई। पुलिसियों ने अपनी दिमागी सोच का इस्तेमाल कैसे किया, इसका गांव की एक-एक कुंवारी लड़की की आंखें बखान कर सकती हैं। पुलिसियों ने सारे गांव के सामने कुंवारी लड़कियों और विधवाओं को एकत्र करवाया और एक दाई को आदेश दिया कि वह उसके स्तन दबाकर दिखाये कि उनसे दूध निकलता है या नहीं। उनकी दलील थी कि ऐसा करने पर लावारिस शिशु को जनने वाली कुलटा का पता आसानी से लग जाएगा। घटना की जानकारी कानपुर से छपने वाले एक साप्ताहिक अखबार 'सोशल ऑडिट' ने प्रमुखता से दी, चूंकि उसका पुलिस द्वारा कोई खंडन या सफाईनामा नहीं आया इसलिए उनकी शर्मनाक हरकत की पुष्टि स्वतः ही हो गई।

यदि किसी गाव में बलात्कार हो जाए तो क्या आज तक के इतिहास में कभी पूरे गांव के मर्दों को इकट्ठा करके उनका वीर्य निकलवाया गया है—इस नाम पर कि शिकार औरत के कपड़ों पर लगे वीर्य से उसका मिलान किया जाएगा? कुटिल, कामी, घिनौने, औरत को भोग का सामान समझने वाले कूढ़मगजों की ही उपज हो सकती है यह।

सैकडों गांववालों के सामने लड़कियों के साथ यह कुकर्म उस समाज में

हुआ जहा महिला आयोग और मानवाधिकार आयोग टाइप की सस्थाओं में लोग जनसेवा के नाम पर मोटी-मोटी रकमें वसूल कर रहे हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग को शायद इस वीभत्स घटना की भनक भी न रही हो, क्योकि वे मीडिया के बवेला करने के बाद ही नींद से उठ पाते हैं। कलफलगी कडक साडियां पहनकर ए सी. कमरों मे बैठकर औरतो की पीडा नहीं समझ आएगी इन्हें। यह सब उस समाज में हो रहा है जहां वाई2 के, डल्ब्यू. टी.ओ., परमाणु बम की चर्चाएं आम हैं और नई सहस्त्राब्दी में जाने की जोरदार तैयारियां की गईं। ये आयोग क्या सिर्फ नैना साहनी, जेसिका लाल जैसी नामी-पैसेवाली हस्तियों के लिए ही बवेला मचाते रहेंगे। इनके कानो में गांव-गली में होने वाली ये दर्दनाक घटनाएं क्यो नही गूंजतीं? करोडों रुपया इन आयोगो पर बरबाद करने वाली सरकार का एक भी सांसद इन विषयो पर सवाल क्यों नहीं उठाता? क्या हम इस तरह की घटनाओं को सामान्य मान चुके हैं या इस तरह के वहशियाना बरताव के लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर चुके है? तभी तो ये घटनाएं हमें दहलाती नही, हमारे अंदर सिहरन पैदा नहीं कर पातीं।

इस घटना के एक पखवाडे पहले पुलिस ने एक ऐसी ही घिनौनी करतूत उरई में दोहराई थी। यहां के गाधीनगर इलाके की एक महिला को पुलिस वाले दरिंदों ने कपड़े उतारकर पीटा, इस पर उनकी भड़ास नहीं निकली तो एक पुलिसवाले ने उसके गुप्तांग मे रायफल की नाल घुसेड़कर अपनी आत्मा तृप्त की। अवैध शराब बनाने के बारे मे छानबीन करने आई पुलिस टीम को जब उस महिला के पति नृपत कोरी के बारे में कोई सुराग नहीं मिला तो खिसियाकर उसने वह कुकर्म किया, जिसके लिए समाज उसके दरवाजे खटखटाने को बेबस है। उक्त औरत के साथ वहशियाना हरकत करने वाला सिपाही सगर्व दलील देता है कि 'साली को मासिक धर्म आ गया और वह झूठ बोल रही है कि रायफल की नाल उसके गुप्ताग में घुसेड़ी गई।' जबकि महिला अस्पताल की डॉक्टर (सुशीला वर्मा) ने अपनी जांच रिपोर्ट में साफ लिखा है कि उसका गुप्तांग कट गया है, उस पर चोट के निशान हैं और उसे रक्तस्राव हो रहा है। खुद को पाक-साफ दिखाने के लिए पीडिता के पति पर डकैती व आगजनी का मामला दर्ज किया है।

औरत के गुप्तांग को लहूलुहान करके अपनी घिनौनी करतूतें ढांपने के लिए दी जाने वाली ये दलीलें क्या विश्वास के काबिल हैं? नाजुक अगो पर हैवान जैसी करतूत किया जाना और मासिक स्राव का खून आना दो अलग-

अलग चीजें हैं, जिन्हें कोई अंधा भी महसूस कर सकता है। इसके लिए दीदे फाड़कर भीतर झांकने की जरूरत बिलकुल नहीं पड़ती।

पुलिस की हैवानियत के इन दोनो मामलों (ककवन और उरई) मे अंतत क्या होगा? यदि ज्यादा बवाल हुआ या राजनीतिक पार्टिया बीच मे कूदीं तो एकाध सिपाही या दरोगा को स्थानातरित करके हाथ झाड़ लिए जाएंगे। बलात्कारी को फांसी की सजा दिए जाने के हिमायती हिंदूवादी नेता लालकृष्ण आडवाणी, जो वर्तमान मे देश के गृहमंत्री भी हैं, शायद दोनों घटनाओं से अनजान होंगे। हो सकता है, उनकी नजर में बलात्कार की घटना के सामने ये घटनाएं साधारण और छोटी हों, इसलिए वे इनकी जानबूझकर अनदेखी करते हों।

एक औरत की छातियों के साथ या उसके गुप्तांगों के साथ सरेआम की जाने वाली ये घटनाएं किसी स्वस्थ समाज के मुंह पर करारा चांटा हैं। देवियों की पूजा करने वाले इस समाज में जिन पुलिसवालों ने इस तरह का दुर्व्यवहार किया, उनमें से अधिकतर जिस थाने या कोतवाली के अंतर्गत आते हैं, वहां प्रायः रामभक्त हनुमान की मूर्ति गेरुए रंग मे पुती प्रतिष्ठित होती है। बाल-ब्रह्मचारी, सात्त्विक देवता के ये भक्त ऐसा उपद्रव क्यो मचाते हैं? औरत का शरीर उनके लिए जग जीतने का जरिया कैसे बन जाता है?

सहस्राब्दी के अंत में घटने वाली ये केवल दो घटनाएं नहीं है, मीडिया के प्रयास से उभरे मात्र दो उदाहरण हैं, क्योंकि गांवों-गलियों के कोने-अंतरों मे न जाने कितने वर्दीधारी हमारी रक्षा की एवज में मोटी रकमें डकारने के बावजूद सरेआम बेइज्जत करने और औरत की देह का मजा लूटने से ज्यादा कुछ नहीं करना चाहते। पिछले दिनों दिल्ली के पुलिसवालों की डॉक्टरी जांच में पाया गया कि उनमें से 80 प्रतिशत पुलिसिये मानसिक रोगों से त्रस्त हैं। देश-भर में यदि इस तरह की जांच कराई जाए तो इससे भी भयानक नतीजे सामने आएंगे, मगर यह हैवानियत के विरुद्ध दिया जा सकने वाला सबसे घटिया तर्क होगा, क्योंकि मानसिक रूप से ढुलमुलाए सारे पुरुषों को झेलने का ठेका केवल महिलाओं के हिस्से ही क्यों आता है?

बिनब्याही औरतों की बढ़ती भीड़

बिनब्याही औरतों का जीवन पुरुषों की बेवजह ताक-झांक से हमेशा त्रस्त रहता है। विवाह नितांत व्यक्तिगत मसला होने के बावजूद परिवार व समाज से सीधा जुडता है। किसी समाज में यदि बिनब्याही औरतों की संख्या तेजी से बढने लगे तो उसकी गभीरता खंगालनी जरूरी हो जाती है। खासकर हमारे दकियानूस रूढिग्रस्त समाज मे यह जानना बहुत जरूरी है कि अचानक हमारी औरतो मे विवाह के प्रति विरक्ति क्यों पैदा हो रही है, क्योकि यह समस्या अब तक केवल पश्चिमी देशों तक फैली रही है, एशिया मे जापान ऐसा देश है जहां औरते विवाह के बंधन से भरसक बचती है। हमारी संस्कृति में औरतो के जीवन मे विवाह और बच्चे जनना सबसे महत्वपूर्ण रहे है। ऐसे मे यदि अचानक औरते विवाह-बधन से अछूती हैं तो हमें सतर्क होना होगा।

फेमिली हेल्थ सर्वे द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि 36 प्रतिशत औरते बिन-ब्याही रह जाती हैं। यह सर्वेक्षण केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार मंत्रालय की पहल पर कराया गया था। अब तक पुरुषो के मुकाबले महिलाओं की सख्या कम होने पर चिता की जा रही थी कि यह चौंकाऊ तथ्य सामने आ गया। खासकर मणिपुर और नगालैंड की 50 प्रतिशत औरतें शादी नही करतीं, वहीं पूर्वोत्तर के सात राज्यों की 45 प्रतिशत औरतें कुंवारी रह जाती है। सरकारी तौर पर यह स्वीकार किया जाता है कि प्रति हजार पुरुष 73 औरते कम है यानी हर हजार पुरुषों मे 73 को तो कुवारा रहना ही पडेगा और अब 36 प्रतिशत औरतों के कुवारी रह जाने पर ऐसे पुरुषो की संख्या और अधिक हो जाएगी।

औरतों के बिन-ब्याही रह जाने के पीछे तमाम कारण हो सकते हैं, जिनमे सबसे पहला और बड़ा कारण तो अपने समाज में दहेज है। हजारों लड़कियां ब्याह की उम्र मे मानसिक अवसाद और पारिवारिक उपेक्षा का शिकार इसीलिए बनती हैं कि उनके मां-बाप लडकेवालो के चौडे मुंह दहेज से भरने लायक धन नही जुटा सकते। कानूनी रूप से दहेज लेना अपराध होने के बावजूद यह विकराल

समस्या लड़कियों का जीना मुहाल किए हुए है। दहेज न लाने वाली बहुए मारी जाती हैं, प्रताडित की जाती हैं, वह तो कानून की नजर में गंभीर मामला बनता है, मगर दहेज की आड में मानसिक रूप से कुवारी लड़कियों को सताया जाना आम बात होने के बावजूद किसी पर आरोप नहीं मढा जा सकता है। दहेज न जुटा पाने वाले मा-बाप की हताशा देखकर हजारों लड़कियां अब तक मौत के मुह में समा चुकी हैं, मगर इसका जिम्मेदार कौन माना जाए?

कानपुर की तीन बहनों द्वारा की गई आत्महत्या हो या आगरा की तीन बहनो का मामला। मीडिया ने तमाम बवेला मचाया, संपादकीय लिखे गए, टी वी कवरजे हुई मगर स्थितियां कितनी बदली हैं? तीन बहनें दहेज के लिए मर जाती हैं तभी मीडिया का ध्यान उधर जाता है, मगर रोजाना मरने वाली एक अकेली लड़की की मौत की खबर में प्राय: कारण अनजान ही गिन लिए जाते हैं। घरेलू कलह, मां-बाप की परेशानियां, ताने और रोज-रोज की नुमाइश उसे विवाह न करने जैसे निर्णय के लिए बाध्य कर देती है।

समय और विकास की मार ने लडकियों को सुंदर दिखने, आकर्षक बनने पर मजबूर किया है। हर लडका रूपवान, गोरी, आकर्षक लडकी चाहता है, ऐसे में औसत या खूबसूरती की कसौटी पर खरी न उतर सकने वाली लड़कियां बिन ब्याही रहने को मजबूर हो जाती हैं। सयुक्त परिवार बिखरने का असर भी लड़कियों के जीवन पर पडा है। घर के मुखिया की मृत्यु के बाद तमाम परिवारो में बडी बेटी के कंधे भार उठा लेते हैं, मगर जिम्मेदारियों को निभाते हुए वह स्वय प्राय: विवाह-बंधन से वंचित ही रह जाती है। हमारे यहां यूं भी औरत की विवाह की उम्र सीमा तय है, बच्चा जनने की उम्र तक यदि विवाह न हुआ तो उसे आजीवन अविवाहित रहने को छोड़ दिया जाता है। परिवार बिखरने के कारण उचित वर की तलाश मुश्किल होती ही है, साथ ही जाति, कुल, गोत्र आदि बंधन भी एक सीमा बांध देते हैं। यह भी सच है कि कुछ लड़कियां पढ़-लिख जाने के कारण अति महत्त्वाकांक्षाएं पाल लेती हैं। उन पर खरा न उतरने के कारण वे बिनब्याही रह जाती है।

आधुनिक माहौल में तमाम लडकियां घर की देहरी फलांगकर स्वावलंबी हो रही हैं, उनके लिए विवाह से कैरियर कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे किसी बंधन में बधकर अपना कैरियर तबाह नहीं करना चाहतीं, बुलदी पर जाने या प्रतियोगिता मे अव्वल रहने के लिए अकेले रहना ज्यादा पसंद करती हैं। बच्चे जनने घर गृहस्थी सभालने के प्रति जब तक वे अपने आपको तैयार कर पाती

है, तब तक अपना हम-उम्र और बराबरी के तबके का पति मिलना मुश्किल हो जाता है। इसके साथ ही एक अहम कारण समाजशास्त्री व सेक्स विशेषज्ञों द्वारा यह भी माना जाता हे कि लडकियों में सेक्स के प्रति अरुचि, बचपन के कटु अनुभव, किसी भी तरह का दुर्व्यवहार उनके मन में पति के प्रति विरक्ति पैदा कर देता है। मां-बाप का असफल दांपत्य या आपसी तनाव लडकियों के मन मे पति के प्रति नैराश्य पैदा कर देता है।

बंधनों वाला हमारा समाज आज भी प्रेम-विवाह की अनुमति नहीं देता। ऐसे मे कुछ लडकियां असफल प्रेम के सदमे में विवाह नही करतीं। घरवालों के प्रति विरोध-प्रदर्शन वे बिनब्याही रहकर करती हैं। ऐसी भी औरतें शादी नही करती या शादी के प्रति उनका आकर्षण खत्म हो जाता है जिनके समलैंगिक संबंध हो जाते है। हालाकि अभी अपने देश मे समलैंगिक औरतें ज्यादा मुखर होकर समाज से मोर्चा नहीं ले पाई है, इसलिए इनका लुकाछिपी का खेल ही चल रहा है। यही नही, बल्कि यदि बचपन में ही लडकी किसी बड़ी बीमारी या अपंगता की शिकार हो जाए तो उसको ब्याहना नामुमकिन हो जाता है, क्योंकि हमारे यहां के बीमार व अपग मर्द भी सुदर-आकर्षक बीवी चाहते हैं।

कुछ भी हो, औरतो की यू विवाह संस्था के प्रति निराशा या कटुता दूर की जानी चाहिए, वरना-स्त्री विरोधी अपराधो मे तेजी आने को कोई रोक नहीं पाएगा। केरल, दिल्ली और पंजाब जैसे सभ्रांत व प्रगतिशील राज्यो की 39 प्रतिशत औरते बिनब्याही रहती हैं तो आंध्र प्रदेश जैसे तकनीक-पसंद राज्य की 32 प्रतिशत औरते ब्याह नहीं करतीं। मगर वहीं बिहार जैसे पिछडे राज्य की 37 प्रतिशत औरतें कुंवारी है, इसलिए इस समस्या का कोई एक हल नहीं निकला जा सकता, बल्कि सरकार और गैरसरकारी संगठनो को चाहिए कि वे सामाजिक कुरीतिया दूर करने की तरफ पहल करे और औरतों के विकास के रास्ते बिना परिवार तोड़े दुरुस्त बनाएं, क्योंकि अकेली औरतों के दुश्मनों से पटा पडा यह समाज उन्हे शिकार बनता तो देख सकता है, उनके अकेलेपन को और किसी तरह नहीं ढो सकता।

संपत्ति के बंटवारे में भी भेदभाव जारी है

अप्रैल 2000 के दूसरे पखवाडे में सुप्रीम कोर्ट ने हजारों बेसहारा औरतों के पक्ष मे फैसला देकर कट्टर हिंदूवादियो को झकझोर दिया। इस फैसले के अनुसार, बेसहारा विधवा औरत अपने पिता से गुजारा भत्ता मांग सकती है। सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस एस.बी. मजूमदार और जस्टिस एम जे राव की खंडपीठ ने कहा कि पति की मौत के बाद यदि औरत के पास आय के कोई साधन नहीं है और मृत पति कोई संपत्ति भी नहीं छोड़ गया है तो वह गुजारे के लिए पिता से दावा करे। सुप्रीम कोर्ट के इस निर्णय से अब तक गुजारे के लिए ससुरालियों की गालिया-तिरस्कार सहती तमाम औरतें सुकून का जीवन जी सकेंगी। बेटी को पराया धन बताकर उसे ढकेलने वालों के लिए भले ही यह गले की घंटी साबित हो, मगर दो वक्त की रोटी के लिए पिता पर अपना अधिकार जताने में बेटी के लिए यह निर्णय जीवन- यापन का जरिया तो बन ही जाएगा। संविधान में औरत को बराबरी का हक दिए जाने के बावजूद हमारी सामाजिक व्यवस्था उसे उसके अधिकार कभी नहीं देती। इसीलिए बार-बार सुप्रीम कोर्ट को औरत को उसका हिस्सा दिए जाने का निर्णय देना पडता है।

संविधान के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम एक (अनुच्छेद-6) में स्पष्ट व्याख्या है कि संयुक्त परिवार की औरतों को संपत्ति में बराबरी का अधिकार है। हालांकि केंद्र सरकार समय-समय पर राज्य सरकारों पर इसे संशोधित करने के निर्देश देती रही है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु ही ऐसे राज्य है जिन्होंने औरतों को उत्तराधिकार देने वाले इस अधिनियम में समय रहते संशोधन कर लिया है। तमाम कानूनी निर्देशों के बावजूद, हमारी औरतें उत्तराधिकार से वचित हैं। मां-बाप दहेज चुकाने के बाद बेटी के प्रति अपने उत्तरदायित्व से मुह मोड़ लेते हैं। दूसरे, हमारे समाज मे पुत्रमोह इस कदर हावी है कि उसे सिर्फ कानूनों के द्वारा खत्म करना नामुमकिन है। जब तक लडके-लड़की की समानता का विचार नहीं कौंधेगा, तब तक इस तरह के विभेद जीवित रहेंगे। मां-बाप या भाई-भौजाई से संबंध खराब होने के डर से औरत चाहकर भी संपत्ति मे दावे की

बात जबान पर नही हिला सकती। बेटी के मा-बाप ही अब तक उसे अपनी सपत्ति मे हिस्सा देने को तैयार नहीं दिखते। दक्षिण दिल्ली में एक चालीस लाख की कोठी के मालिक एक बेटे और एक बेटी के पिता है। बेटे के खराब बरताव तथा बहू के दिन-रात के तानो के बावजूद किराये के लिए भटकती अपनी बेटी को वह अपनी कोठी में दो कमरे भी नहीं दे सकते? यह कैसा विभेद है? अपने ही बच्चो को लिंग के आधार पर बांटने की यह व्यवस्था आज के समाज में फिट न होने के बावजूद जारी है। पढ़े-लिखे दंपती भी बेटी को संपत्ति में हिस्सा देने से हिचकते हैं, क्योंकि रूढ़िवादी कायदों के अनुसार पिता की संपत्ति का वारिस केवल बेटा है, भले ही वह नालायक हो।

कन्या के जन्म लेने पर सभी हेय दृष्टि से देखते हैं। 'वह अवहेलना की पात्र है, लेकिन पुत्र अवहेलित होने की वस्तु नहीं। इसीलिए कन्या को उत्तराधिकार प्राप्त नही है, पुत्र को है'—मैत्रेयिणी संहिता (464) में यह स्पष्ट वर्णित है। चूकि धर्मपरायण हिंदुओं को बेटी को सपत्ति में अधिकार दिया जाना अजीब लगता है, वह इसे स्वाभाविक नहीं मान पाते, इसीलिए वे इसके विरोध में तर्क प्रस्तुत करते है। चूंकि बेटी का विवाह इस दकियानूस समाज में बिना दहेज सभव नही है, इसलिए मा-बाप इसे बेटी का हिस्सा मान लेते हैं। शेष अन्य चल व अचल संपत्ति का भागीदार वह बेटा होता है, जिसके विवाह में दहेज की मोटी रकम सूती गई। जब दहेज दो और लो के चक्र का हिस्सा है तो उसे संपत्ति के अधिकार से जोड़ा जाना बचकाना तर्क हुआ न!! रही बात बेटे पर आश्रित होने के चलते उसे संपत्ति देने की, तो यदि आप अपनी बेटी को संपत्ति का अधिकार देगे तो आपकी बहू को भी तो उसके मायके से संपत्ति मिलेगी।

अभी ज्यादा दिन नही हुए हैं, जब कारगिल युद्ध में शहीद हुए सैकडो जवानों की (विधवा) पत्नियो को सरकार ने सहायतार्थ कुछ धनराशि दी थी। उस समय ऐसी खबरें गांव-गांव से आ रही थीं कि जवान की विधवा की शादी जबरन छोटे देवर के साथ कर दी गई। उनमें से कुछ औरतों की तसवीरें अपने नए-नवेले शौहरों के साथ छपी भी थीं। दो बच्चों की मां का यह शौहर अभी दाढ़ी-मूंछ का मालिक भी नहीं बना था। बेटे के बदले मिली मोटी धनराशि बहू के हिस्से जाने देने से बचाने के लिए परिवारवालों ने यह दांव चला था। यही है औरत के खिलाफ चलाई जाने वाली मुहिम! पति की मौत पर कोई औरत उत्सव तो नहीं मना सकती। मगर गहरी चाल चलते हुए घर का पैसा घर में रखने की साजिश मे छोटे बेटे को खूंटा बनाकर अपनी ओछी मानसिकता प्रदर्शित की गई। ऐसे

मामलात मे कोई कानून या पाबदी क्या कर पाए? यह तो परंपराओं के नाम पर औरत से छलावा किए जाने की प्रवृत्ति है।

देश के कुछ क्षेत्रों में सदियों से यह परापरा लागू है, जहां औरत की उम्र से बहुत छोटे देवर से उसका विवाह सिर्फ इसलिए किया जाता है कि अपने पति के हिस्से की माग करती हुई वह जमीन-जायदाद पर अपना हक न जता दे। यहा भी हक की लडाई के लिए औरत की हसरतों, उसके सपनों, उम्मीदो और अधिकारो की वलि चढ़ाकर उसे बरगलाया जाता है।

शहीदों की विधवाओं के साथ भी यही हुआ। बेटियों के साथ भी यही होता है। बेटी को उसके हिस्से की जमीन-जायदाद देने का अर्थ है उसे सुख चैन-से जीने देने का माहौल तैयार करना। सरकार को चाहिए कि वह ईमानदारी के साथ उत्तराधिकार कानून में तब्दीली लाए और बेटे चाहने वाले इस समाज पर दबाव बनाए, ताकि वे पूरी सपत्ति बेटे-बेटियों में बराबर बांटने को कानूनी रूप से बाध्य हो जाएं। जब तक औरत आर्थिक रूप से पुरुष के बराबर ताकतवर नही होगी, तब तक उसे इसी तरह की परपराओ के नाम पर घुटना पड़ेगा। हारी हुई औरत के पल्ले क्या पड़ता है— खालीपन, उलाहने, तिरस्कार और दो जून की रोटी के लिए खटना।

पाप कैसे है विधवा होना?

इस्लाम को कोसने वाले हजारों-लाखों कट्टर हिंदूवादियों को अपनी आख, नाक, कान खोलकर समझ लेना चाहिए कि कुछ मामलों में उनका धर्म निहायत बचकाना, पुरातनपंथी और अव्यावहारिक है। हिंदू धर्म अपनी विधवाओ के साथ जिस तरह का व्यवहार करता है, वह क्रूर और घृणित है। उसकी जितनी निंदा की जाए, कम है। इस्लाम को पिछड़ा, दकियानूस और कट्टर धर्म मानने वालों को समझ लेना चाहिए कि उनकी ये अवधारणाएं अज्ञानता के चलते ही अब तक नही टूटी है।

कुछ मामलों मे इस्लाम औरतों के काफी नजदीक का तथा व्यावहारिक धर्म है। सहिष्णु और उदार हिंदू धर्म विधवाओ को सामाजिक रूप से लगभग बहिष्कृत कर देता है। उन पर तमाम तरह के प्रतिबंध व नियम कस दिए जाते हैं। खाने-पहनने से लेकर रहन-सहन संबंधी पाबंदियां जबरन उन पर लाद दी जाती हैं। इस समाज में विधवा होने का अर्थ है एक जिंदा लाश बन जाना। जहा औरत की भूख, इच्छाएं, सपने सब रौंद दिए जाते है। केवल उसका शरीर जिंदा रहता है, पर दिलोदिमाग कुचल दिया जाता है।

हमारे श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ चाणक्य कह ही गए है—पति स्त्री का परमदेवता है। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ जब देवता ही नहीं है तो स्त्री के जीने का क्या औचित्य! महान हिंदू धर्म विधवाओं को कानूनी रूप से तो नही, मगर सामाजिक रूप से घरनिकाला देता है। उसके रहने-पहनने, खाने-पीने, उत्सव मनाने तक कर प्रतिबंध लग जाते है।

धर्म सब तय करता है और झिंकाता है उसे जीवन-भर। विधवा होने का अर्थ है—नंगे पांव चलना, एक वक्त रूखा-सूखा खाना खाना, प्रभु भजन करना, मैले कपड़े पहनना, आभूषण या सौंदर्य संबंधी चीजों से दूर रहना, केश-सज्जा न करना, उत्सव आदि से दूर रहना, मंगल कार्यो मे न शरीक होना आदि। ऐसी हजारों पाबंदियां उस पर लाद दी जाती हैं। इतना ही नहीं, हजारों परिवार अपने घर की विधवा स्त्रियों को काशी, वृंदावन, मथुरा या हरिद्वार तक जो धकिया आते हैं, तो

पलटकर कभी झांकते नहीं। इन शहरों में विषम स्थितियों में जीवन काटने को अभिशप्त ये विधवाएं मौत के इंतजार में दिन बिता रही हैं। उन्हें भ्रम है कि प्रभु-भक्ति से वे मोक्ष को प्राप्त होगी। मोक्ष के लोभ में पीडा सहती ये औरतें अपनी योनि से भी निचले पायदान पर खड़ी हैं। अपने शरीर को यातनाएं दे-देकर ये औरतें लगातार ईश-प्राप्ति में जुट जाती हैं। इन्हे भ्रम है कि इसी के माध्यम से मोक्ष प्राप्त होगा। इनकी बाकी जीवन या शायद अगला जीवन कल्याणकारी बन जाए, जबकि समाज इन्हें औरत नही केवल विधवा मानता है।

हिंदू विधवा तिरस्कृत है। त्याज्य है। अछूत है। घृणा की पात्र है। अमंगलकारी है। उसका विवाह निषिद्ध है। जबकि इस्लाम में स्थितियां एकदम विपरीत हैं और कुछ हद तक स्वागतेय भी। इस्लाम विधवाओं को सम्मान देता है। उन्हें पुनर्विवाह का अवसर देता है। वहां मगलकार्यो तथा उत्सवों में विधवा की उपस्थिति सम्मानजनक मानी जाती है। इस्लाम विधवाओं से विवाह करने वाले पुरुष का भी सम्मान करने की नसीहत देता है। इस्लाम मे विधवा अछूत नही बनती। वह परिवार के अन्य बुजुर्गो की तरह ही पूज्य होती है। आदरणीय होती है बल्कि पारिवारिक कार्यों मे उसे अतिरिक्त सम्मान दिया जाता है, ताकि अपने दुःख-पीडा भुलाकर वह उत्सवमय हो सके। आम मुसलमान को समझाने के लिए कुरान में साफ वर्णित है—'तुममें जो एकाकी (अर्थात बे-जोड़े के अविवाहित अवस्था मे) हो और तुम्हारे गुलामों और तुम्हारी लौंडियों में जो नेक हों, उनका विवाह कर दो। यदि वे गरीब होगे तो अल्लाह उन्हे अपने अनुग्रह से संपन्न कर देगा।' (पारा-18, सूरा-अलनूर, आयत-32) यही कारण है कि मुसलमान विधवाएं किसी शहर, कस्बे या गांव में घर निकाला झेलती नहीं देखी जातीं।

अपने देश में तकरीबन ढाई करोड़ विधवाएं हैं। ऐसा अंदाजा है। हो सकता है, इसकी दो गुनी हों। मगर विधवाओं के लिए कोई नीति, नियम या कानून कडाई से नहीं लागू होते। काशी, वृंदावन, मथुरा और हरिद्वार में हजारों की संख्या मे विधवाएं वर्षो से रह रही हैं। वे सुबह तीन घंटे भजन गाने के एवज में 250 ग्राम चावल व 50 ग्राम दाल पाती हैं। कुछ जगहों में केवल चावल मिलता है। दोपहर मे वे अपने दडबेनुमा कमरों मे इसे पकाती हैं। इस एक छोटी-सी, बिना खिड़की या झरोखे वाली कोठरी में 10 महिलाएं तक रहती हैं। शाम को तीन घंटे भजन गाकर कुछ जगहों पर दो रुपये हर औरत को पारिश्रमिक के तौर पर मिलता है। ये डरी, घबराई, सकुचाई विधवाएं महंतों, ठकेदारों और स्वामीजियों के खिलाफ एक लफ्ज भी नहीं बोल सकती। विद्रोही औरत के लिए यहां कोई कोना नही

है। उसे खदेड दिया जाएगा। घर-परिवार से पहले ही खदेडी जा चुकी, अकेली औरत एक और झटका सहने को तैयार नही होती, इसीलिए वह मूक रहती है मगर उसकी आंखे सब कुछ बोलती हैं।

महंतजी, स्वामीजी या गुरुजी इनके साथ देवियो जैसा बरताव तो करते नहीं होगे, यह तय है। सैकडों बार खबरें आ चुकी हैं कि इन औरतों का यौन शोषण होता है। इन्हें केसरियाधारी कामांधो को यौन सुख ही नहीं देना होता है, बल्कि अपना मुंह भी सिये रखना होता है। इनकी एक भी सिसकी मौत का पैगाम ले आती है। स्वामियों के मर्दपने को ढोती ये अकेली, बेबस औरते सफेद लिबास के नाम पर मैले-कुचैले चिथड़े लपेटे शून्य आंखों में जो खौफ समेटे फिरती है, उस पर केवल डाक्यूमेंट्री फिल्में बनाने से कुछ नहीं होगा।

इनमें से प्राय: वही सब औरतें है, जिनके परिवारवाले उन्हें यहा छुटकारा पाने के लिए छोड गए, या इसलिए छोड गए कि इनकी संपत्ति को हथिया सकें। भारत के संविधान के अनुच्छेद-15 में स्पष्ट लिखा है कि केवल धर्म, जाति, मूलवंश, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के साथ विभेद न किया जाए। मगर कोई माई का लाल संपत्ति के लालच में डरता है इससे? डके की चोट पर विधवाओं को धकेलकर ये ज्ञानी ऐश से अपना जीवन बिताते हैं। औरतो को पति या पिता की संपत्ति में कानूनन अधिकार देने वालों/दिलाने वालों ने कभी सपने मे भी नहीं सोचा होगा कि चतुर, भावशून्य, संवेदनहीन परिवारी इन विधवाओं को लालच मे ऐसे घर से निकाल फेंकेंगे।

युवा विधवाओं को यहां धकेल जाने वाले शायद नहीं जानते कि उनका शरीर नोचने को तैयार बैठे हजारों दरिंदे उनका जीवन कितना कष्टप्रद और भयावह बना देते हैं। ये अनपढ़, तिरस्कृत महिलाएं अपने अधिकारों से किस कदर अनजान है, यह इनसे मिलकर समझा जा सकता है। इन अशिक्षित, रूढ़िग्रस्त, डरी हुई महिलाओं को पता भी नही है कि संविधान के अनु 23-24 मे मानव के दुर्व्यवहार का निषेध है तथा अनु. 14 मे विधि के समक्ष समता और 'विधियों के समान संरक्षण' से वंचित नहीं किया जाएगा। इनके लिए इन अधिकारो के तहत आवाज क्यों नहीं उठती? क्यो नहीं हम आप चाहते कि विधवाओं का जीवन सुधरे?

हमारे महान हिंदू धर्म में विधुर के लिए कोई कानून नहीं बने। विधुर को घरनिकाला देने की कोई प्रथा क्यों नहीं जन्मी? विधुरो के लिए कोई स्थान क्यो नहीं तय किया गया, जहां वे भजन गाएं और मोक्ष का इंतजार करें? क्या विधुरो

को मोक्ष नहीं चाहिए? क्या विधुर अछूत नहीं? विधुर क्यों साज स्वतंत्र हैं? विधुर क्यों नहीं सिर घुटाकर रहें? विधुर सूखा खाएं?.. क्योंकि ये सारे नियम-पाबंदियां औरतों पर लादने वाले सुख, अपनी सुविधा के लिए सब कुछ रचा था। ऐसे कूढ़मग़ज़ करनी है हमें, इन पर दया कर औरतों के लिए जंग लड़नी है।

खुशनसीब मर्दों से पटा समाज

अपना समाज कितने खुशनसीब मर्दो से पटा पडा है, इसका अदाजा अंतरराष्ट्रीय जनसख्या संस्थान के एक अध्ययन से लगाया जा सकता है। इस संस्थान ने अपने इस अध्ययन में महिलावादियो और उदार विचारधारा वालो को हिला देने वाले आकडे दिए हैं। इस अध्ययन में पाया गया है कि 56 फीसदी भारतीय औरतें पति द्वारा की जाने वाली कुटाई को जायज मानती है। इस अविश्वसनीय-से लगने वाले सच को परखने के लिए तकरीबन एक लाख औरतों से बातचीत की गई थी। सस्थान से संबद्ध राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण ने पाया कि हर दस मे से 6 औरते मानती हैं कि पति का मार-पीट करना कोई अनहोनी बात नहीं है।

इन औरतों के अनुसार, उनसे जब कोई गलती होती है तभी उनका पति पिटाई करता है। इन औरतों ने स्वीकारा कि वफादारी पर संदेह होने, मायके से मनचाहा दहेज, धन-दौलत या जेवर न मिलने, बिना बताए कही आने-जाने, घर व बच्चों की देखभाल में कोताही करने या ढंग से खाना न बनाने पर ही वे पति से पिटाई खाती हैं। यह भी बड़ा सच है कि पढी-लिखी, कमाऊ, शहरी औरते भी आम ग्रामीण, अनपढ़ औरत की तरह मुंह सिये चुपचाप पिटती रहती हैं। उनमे से जो इसे जायज नही भी मानतीं, वे भी चुपचाप मजबूरन पिटाई बरदाश्त करती रहती हैं।

निश्चित रूप से ऐसे सर्वेक्षण को पढ़कर निहायत मर्दवादी प्रवृत्ति के लोगो के सीने चौड़े हो जाएंगे, जबकि उन्हें शर्म से डूब मरना चाहिए। औरत को कितना कमजोर बना लिया गया है कि वह अपनी अनुभूतियां भी पेट की खोहों में घुसा लेती है। वह सब कुछ बरदाश्त करती है।

इस क्रूर मर्दवादी समाज से और कितने निचले दर्जे के सोच की गुंजाइश की जा सकती है? यह औरत को मानसिक रूप से लगातार पीछे धकेलने का नतीजा है कि आधुनिक युग मे भी वह मानती है कि उसका 'ईश्वर' (महान पति) यदि उसे पीटे भी तो उसे न सिर्फ चुपचाप बरदाश्त करते रहना चाहिए, बल्कि उसके विरोध के बारे में सोचना भी नही चाहिए। देश की हर 10 औरतो मे से

6 का पिटना साबित करता है कि बची हुई 4 औरतें या तो बेहद जुझारू हैं या अकेली है या फिर आर्थिक रूप से इतनी सक्षम हैं कि ये मर्द चाहकर भी उन पर हाथ नहीं उठा सकते। औरत को मानसिक रूप से इतना पीटा गया है कि अब शायद उसे यह शारीरिक पिटाई बहुत बड़ी चीज नहीं लगती। एक पिटी हुई, बेसहारा अकेली औरत से पिटाई के विरोध की उम्मीद करना बेमानी हैं। थप्पड़ो, घूसो, लातो यहां तक कि धारदार चीजों से मार खाने वाली औरत जानती है कि विरोध का एक स्वर उसे सडक पर ला सकता है, बस इसी डर से वह अपनी जुबान को बत्तीसी के बीच जकड़े, घुटन-भरा जीवन काटती रहती है।

समाज मर्द को अजेय बताता है और औरत को जन्म से ही कमजोर होने की घुट्टी पिलाई जाती है। सारी सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक जिम्मेदारियां चूंकि औरत के हिस्से आती है, इसलिए वह समझ ही नही पाती कि उसे किस भूल के लिए कब-क्यों पीटा गया। अध्ययन में शामिल 40 प्रतिशत औरते यदि मानती हैं कि घर व बच्चों की देखभाल में कोताही करने की वजह से वे पिटती हैं तो क्या उन पर हाथ उठाने वाले मर्दो से घर व बच्चों की देखभाल की उम्मीद नही की जा सकती? जो मर्द कायदे से घर खर्च नहीं देता, घर-परिवार की समस्याओं, बीमारी, छोटी-मोटी जरूरतों, राशन-पानी के इंतजाम को तवज्जो नहीं देता, उसे कौन पीटे? घर औरत-मर्द को मिलाकर बनता है, उनकी जिम्मेदारियां भी समान ही होती है। सारी जिम्मेदारी औरत के कंधों पर उडेलकर उसे फेलियर साबित करना कहा की समझदारी है? औरत को नाजुक बताकर जिम्मेदारियो से दबा देना, क्या साजिश नहीं है? चरित्र पर संदेह करके उसे पीटने वाले मर्दो को पहले अपने गिरेबान तलाशने चाहिए। अपने दुर्विचारों, गंदी मानसिकता और छुछुआपन से बिंधी आंखों से वे औरत के अंदर चारित्रिक दोष ही खोज सकते हैं। क्या लालबत्ती जाने वाले 50 प्रतिशत मर्द भी अपनी इस बेहूदा आदत के लिए अपनी पत्नी के हाथों पिटने को तैयार हो सकते हैं? गाय-बैल जैसा बरताव औरत के साथ करने मे माहिर इन मर्दो की हथेलियां औरत को पीटने के लिए इसीलिए खुजलाती हैं कि इसे एक तरह की सामाजिक मान्यता प्राप्त है। आज भी औरतें पति के इस ऐब को अपनी गलती का कारण बताती हैं। वे न इस मुद्दे पर पडोसन से बतियाती हैं, न रिश्तेदारों के सामने पति की नाक नीची करती है।

अपनी मां-दादी-नानी को पिटते देखने या सुनने वाली औरत बचपन में ही समझ लेती है कि मर्द की कुंठाओं, उसकी अक्षमता के फलस्वरूप उसे ताउम्र पिटना ही है। शारीरिक रूप से पुष्ट औरत भी अपने मरियल-से पति के हाथों

इसलिए पिटती रहती है कि वह कभी स्वयं मुकाबला नहीं करना चाहती। जिस दिन वह बदले या हमले का मन बना लेगी, उस दिन हाथ उठाने से पहले ही मर्द खौफ खा जाएगा। उसे तो एहसानमंद होना चाहिए कि औरत अब तक सिर्फ बरदाश्त करती रही है।

इस घरेलू प्रताड़ना के थमने का कोई रास्ता नहीं है। साल-भर मे कुल 7,250 इस तरह के मामले रिकार्ड किए गए जबकि पति की कुटाई की शिकार औरतों की भारी भीड़ है। कोई मुह नही खोलना चाहता तो इसका एकमात्र कारण नैतिक-सामाजिक दबाव हैं। सबसे बड़ी है परिवार बचाए रहने की इच्छा। पति की इस मरम्मत से आजिज आई वही औरतें मुंह खोलतीं है, जो घर छोड़ने का फैसला ले चुकी होती हैं। ऐसा भी नहीं है कि इन सारी औरतों को कानून की समझ न हो मगर समझदार, पढ़ी-लिखी औरतें भी इन पचड़ों में पड़ने से बेहतर चारदीवारी के भीतर पिट लेना ही मानती है। अपनी पत्नी पर हाथ उठाकर मर्दानगी दिखाने वाले इन महानुभावों से ही यदि इस तरह के सवाल किए जाएं और उन पर इतना नैतिक दबाव डाला जाए कि वे अपनी इस करतूत को तुच्छता समझे, हैवानियत-भरा बरताव समझें तभी औरते इस गिच-गिच से निकल सकती है। दुनिया की कोई औरत जानवरों-सा जीवन तो कभी नहीं चाहती। अगर मर्दो की यह संवेदना नहीं जागती तो औरत के आक्रोश से भी वह ज्यादा दिन नहीं बच पाएगा। एक न एक दिन तो विस्फोट होगा ही।

औरतों की इस नासमझी, मजबूरी या विवशता को इसलिए भी नकारा नही जा सकता कि इस तरह की हैवानियत के खिलाफ हमारे यहां ठोस कानून अब तक नगण्य है। भारतीय दड संहिता की धारा-498 (ए) इस घरेलू हिंसा के खिलाफ सजा दिलवाने में सक्षम है, मगर इसका इस्तेमाल उतना आसान नही है। कानून विशेषज्ञो और समाजशास्त्रियो का मानना है कि कडे कानून तो बने ही, पर इसे औरत को मानसिक रूप से दृढ बनाकर ही रोका जा सकता है। औरत फ्रिज या ए.सी. नही हो सकती यह मर्दो को समझना होगा कि जब चाहा ऑन कर लिया, जब चाहा ऑफ कर दिया।

उनकी मौत की खबर

किसी भी दिन का अखबार उठाइए, संक्षिप्त खबरो में औरतों के मरने की खबरें जरूर मिल जाएंगी, जिन्हें प्रायः पत्रकार बडी टालू और पुलिसिया भाषा मे निबटाकर समाज का भला कर देते हैं। थानो और कंट्रोल रूम से इकट्ठा की गई इस मोटी जानकारी को केवल खबर बनाकर परोसने की यह प्रक्रिया निहायत रूखी और असंवेदनशील होती है। 'विवाहिता जल मरी' या 'महिला ने आत्महत्या की' या 'महिला फांसी पर लटकी' जैसी वाहियात हेडिंग्स लगाकर अपनी ड्यूटी पूरी करने वाले अखबारी नुमाइंदों के लिए इससे ज्यादा महत्त्व की खबरें लूट-बलात्कार या दुर्घटनाओं की होती हैं। ढर्रे पर लिखी जाने के बावजूद बलात्कार की (शर्मनाक) घटना 'डीसी' (दो कॉलम) छापी जाती है, जबकि औरत द्वारा तंग होकर की गई आत्महत्या केवल चार पंक्तियों में दी जाती है।

कहने का मतलब यह बिलकुल नहीं है कि बलात्कार की घटना संक्षिप्त छापी जाए, बल्कि होना तो यह चाहिए कि बलात्कारी की धज्जियां उड़ाती भाषा में असलियत लिखने का प्रयास किया जाए, न कि औरत ने क्या कपडे पहने थे, यह छापा जाए। खैर, मुद्दे पर आते हैं, कुछ समय पहले एक ही दिन दो औरतों के मरने की खबरें छपीं। एक अशोक नगर की विवाहिता द्वारा फांसी लगाए जाने की। दूसरी संगम विहार में जहर खाकर मरी चार बच्चों की मां थी। चार-चार पंक्तियों में छपी इन खबरों में पत्रकारों ने यह तक जोड़ा कि फांसी लगाने वाली युवती जिद्दी थी। निश्चित रूप से ऐसा कहने वाला व्यक्ति निराशावादी होगा और उसमें मरने वाली औरत के प्रति तनिक भी संवेदना नहीं रही होगी।

गोल मार्केट की अनीता ने फांसी लगा ली, न्यू रोशनपुरा की निर्मला ने आग लगा ली और दिचाऊंकला की सुचिता ने जहर खा लिया। अति साधारण बल्कि कहें तो टालू रवैये से लिखी इन खबरों में केवल सतही जानकारी होती है। कोई औरत क्यो मरी-- इससे किसी को मतलब नहीं होता। अखबारी पन्ने काले करने और सूचना देने की रस्म निभाने के नाम पर छपने वाली इन खबरों का न कोई

सामाजिक विश्लेषण होता है, न खोजबीन या पूछताछ करने का जोखिम उठाने की जरूरत। टेलीविजन द्वारा समाचार परोसने का स्वांग करने वालों के लिए तो यह समाचार भी नहीं होता। उन्हें तो केवल राजनीतिक पार्टियों और उज्ज्वल वस्त्रों में ढके-मुंदे मोटी चमड़ी वालो के पीछे फिरने से फुरसत नहीं मिलती।

कोई कुंवारी लडकी, नवविवाहिता या चार बच्चों की मा यूं ही तो नही मर जाती। रोज दो-चार खबरें, वह भी स्थानीय, छापने को क्या माना जाए?

यदि रोजाना देश-भर से इस तरह मरने वाली औरतों की सूची छापी जाए तो और भी खौफनाक समाचार तैयार होगा। हालाकि ये सारी सूचना पुलिस रिकार्ड द्वारा तैयार होंगी। यह किसी से छुपा नही है कि झमेलों से बचने के लिए प्रायः लोग खुदकुशी के मामलात को छिपाने का प्रयास करते हैं, इसलिए बमुश्किल 50 प्रतिशत मामले ही थानों-चौकियो तक जा पाते हैं। मरने वाली ये औरते निश्चिय रूप से शौकिया नहीं मरती। सैकडों कारण-दुःख उन्हे बरसो कोसते हं, कोई हल न ढूंढ पाने की झल्लाहट में अंततः वे अपना जीवन समाप्त कर डालती है। विषम होती जा रही सामाजिक परिस्थितियों की सबसे ज्यादा मार औरतो पर पडी, खासकर महानगरीय मध्यवर्गीय औरतें इसके निशाने पर है। आधुनिकता-बदलाव और नएपन के झमेले औरतों के गले इस कदर पड़े हैं कि उनसे पारपरिक रहकर पाश्चात्य ढांचे में समाने की उम्मीद की जानी ही अव्यवहारिक है। अंग्रेजी बोलने वाली, खूबसूरत, गोरी, छरहरी, प्रोफेशनल बीवी तो सबको चाहिए, मगर साथ ही वह घरेलू हो और गृह कार्य में दक्ष भी। यानी टू-इन-वन मॉडल चाहिए, जब जैसा मरजी उपयोग किया। यदि औरत आपके बनाए ढांचे मे फिट नहीं हो पायी तो मर जाना ही उसकी नियति हो जाती है।

लडकियां दहेज या रूप के कारण कुंवारी रह जाएं, कम दहेज लाएं या बेटा न जन पाएं तो उन्हे रोज-ब-रोज ताने-उलाहने दिए जाते हं। किसी कारण पति छोड दे या वह विधवा हो जाए तो पूरा परिवार उसे ही दोषी ठहराता है। पुरुष अपनी शिकायतें, दुख-गम, गाली-गलौच करके, झगडकर, मारकूटकर, नशे से, दारू चढाकर कैसे भी कुछ समय के लिए भुला लेता है पर औरतों को यह सुविधा भी नहीं है। वे घर की कलह से ऊबकर अकेली पार्क या सुनसान में घटो नहीं बैठ सकतीं। वे हर शाम दारू चढाकर रंभाने को स्वतंत्र नहीं है, वे चिडचिडाहट में आकर पति को चाटें नहीं लगा सकतीं, अपनी मरजी परिवार पर जबरन नही थोप सकतीं, संकीर्णताओं और रेडीमेड साचों में यदि वे जरा कसमसाई तो असंतोष और कुठाओं का शिकार हो जाती है।

दु:खद तो यह भी है हमारे यहां इस तरह के न तो सामाजिक विश्लेषण होते हैं, न ही सर्वेक्षण। जिनके आधार पर इसका कारण ढूंढ़ा जा सके। 'औरत/युवती या लडकी मरी' खबर यह नही होती, दरअसल तो असली खबर होती है कि वह क्यो मरी? उन स्थितियों की पडताल जरूरी है कि कोई औरत मरने को क्यों मजबूर हुई? समाज कल्याण मंत्रालय, महिला व बाल विकास प्रभारी व महिला आयोगो की यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि समाज द्वारा मौत की तरफ धकियाई गई इन औरतो की मानसिक टूटन को समझें। उनके सहयोग के लिए विशेष अनुभाग आदि बनाएं। औरतो के सबलीकरण को केवल कागजी न बना रहने दे। केवल मीडिया द्वारा उछाले गए बडे-बड़े मामलात पर मुंह खोलने वाले संगठनों का यह नैतिक दायित्व होना चाहिए कि वे औरतों को मजबूरन मरने देने की बजाय उनमें नई हिम्मत जोश और उत्साह भरे। लेकिन औरतों के मरने के इन सामाजिक कारणों पर केवल खेद जताने या सिर झुकाने की बजाए नई ऊर्जा के साथ जूझना होगा, वरना ये मरेंगी और बस, चार बेहूदा पंक्तियां ही छपेगी, फिर सब खत्म।

महामारी बनती घरेलू हिंसा

अति संपन्न, विकसित, समृद्ध और लगभग 98 प्रतिशत साक्षरता वाले राष्ट्र अमेरिका की औरतों को भी आम भारतीय औरतों की तरह घरेलू हिंसा का जबरदस्त शिकार बनाया जाता है। दुनिया की 30 प्रतिशत औरतें इस घरेलू हिसा का शिकार होती हैं। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा हाल ही में करवाये गये एक अध्ययन के नतीजे इतने चौंकाने वाले है कि सारी दुनिया की औरतें इनसे घबरा जाए। इस रपट ने माना कि वहां होने वाले अपराधों में सबसे अधिक यौन हमले हैं। जिनकी हर 45 सेकंड में एक औरत शिकार हो रही है। दुःखद तो यह है कि वहां भी इस तरह के अपराधों का कोई रिकार्ड मौजूद नहीं है, न ही इसकी शिकार औरतें पुलिस के पास जाती है।

इन यौन हमलों को वहां बहुत गंभीरता से लिया जा रहा है और इसे मूक आक्रामक महामारी का नाम दिया गया है। अमेरिका के राष्ट्रीय पीड़िता केंद्र के अनुसार प्रतिवर्ष सात लाख से ज्यादा औरतों के साथ बलात्कार किया जा रहा है या उन पर विभिन्न तरह के यौन हमले हो रहे हैं। इससे भी भयानक तथ्य यह है कि शिकार की गई औरतों में 61 प्रतिशत 18 वर्ष से भी कम उम्र की बच्चियां है। 1991 की एक रपट के अनुसार, यौन हमलों की शिकार बच्चियों में से 32 प्रतिशत केवल 11 से 17 वर्ष की उम्र की थीं। हालाकि इन यौन हमलो के मनोविज्ञान को परखते हुए विशेषज्ञों ने यह भी माना कि अन्य पुरुषों की बजाय पतियो से यह खतरा तीनगुना ज्यादा है। अमेरिकी समाज मे भी औरतें तमाम समृद्धि, उच्च शिक्षा व आर्थिक रूप से संपन्न होने के बावजूद घरेलू हिंसा का जबरदस्त शिकार हो रही है। राष्ट्रीय रोग नियंत्रण व निदान केंद्र द्वारा कराए गए एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण में पाया गया कि 25 प्रतिशत औरतें अपने पति, होने वाले पति या सहजीवी द्वारा शारीरिक रूप से लगातार प्रताड़ित की जाती हैं।

अपने देश मे औरतों के साथ इस तरह की हिंसा आम होने के बावजूद कोई पुख्ता आंकड़े उपलब्ध नही हैं, फिर भी माना जाता है कि 70 प्रतिशत औरते कभी न कभी पति द्वारा मारी-पीटी जाती हैं। हालाकि अपने देश में औरतों के प्रति

उनक पति क्रूरतम व्यवहार करने के इतने आदी हो गए है कि व इसे अपना मौलिक अधिकार समझते हैं। पतियों द्वारा की जाने वाली मार पिटाई, गाली-गलौज, हाथापाई और नोचने-खसोटने की आदत के खिलाफ न तो हमारी औरते मुह खोलना जानती हैं और न इसके विरोध के लिए उनके पास कोई पुख्ता जमीन ही है। और हमारी सरकार को कभी औरतो की दुर्दशा या उनकी समस्याओ से कुछ लेना-देना होता नही है, वह तो इसे घरेलू विवाद कहकर हाथ झाड़ लेती है। है तो दहेज हत्या भी घरेलू विवाद ही, लेकिन जब तक बात हत्या तक न पहुच जाए, सरकार कान में रुई ठूंसे बैठी रहती है। प्रायः प्रगतिशील विचारकों द्वारा यही माना जाता है कि औरते यदि पर्याप्त शिक्षित और आर्थिक रूप से संपन्न हो जाएं तो घरेलू हिंसा से मुकाबला किया जा सकता है। स्वयंसेवी संस्थाएं भी यही दावा करती हैं कि औरतों को अधिकार दिलाए जाने की जरूरत ज्यादा है। इन लोगो को अमेरिकी औरतो के प्रति जारी इस मूक आक्रामक महामारी से सीख लेनी चाहिए। अमेरिकी औरतें प्रायः पढ़ी-लिखी, उच्च शिक्षाप्राप्त, कैरियरिस्ट, खासा पैसा कमाने वाली ही हैं। मगर इन्हे घर-बाहर उसी माहौल से जूझना पड रहा है जिससे हमारी अनपढ़ या अल्पशिक्षित, पति पर निर्भर औरते जूझ रही हैं। उनसे जबरन यौन सबध बनाए जाते है और उन्हे प्रताड़ित करने के लिए मारपीट के अलावा तिरस्कार, अपमान और धमकियों का भी सामना करना पड़ता है।

अमेरिका में हुए अध्ययन में पाया गया कि 6.9 प्रतिशत औरतों को पति/प्रेमी या सहजीवी जबरन यौन संबंध बनाने के लिए बाध्य करते हैं। उन्हें बेइज्जत किया जाता है और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। इसके अनुसार औरतों को अतरंग जोडीदार द्वारा जातीय व क्षेत्रीय आधार पर भी हिंसा का शिकार बनना होता है। यह अध्ययन दावा करता है कि एशियाइयों में निचले वर्ग की औरते पति की हिंसा का शिकार अधिक होती है, जबकि अफ्रीकी, अमेरिकी व अमेरिकन इंडियन औरतों के प्रति हिंसा बढती जा रही है। हालांकि अपने देश मे घरेलू हिंसा की शिकार औरतो को किसी विशेष क्षेत्र, जाति या वर्ग के आधार पर बांटना मुश्किल है, क्योंकि यहां हर वर्ग की औरत इस हिंसा की जबरदस्त शिकार है। पत्नी की पिटाई करना या उसे धमकाना-गालियां देना, उसके साथ बदसलूकी से पेश आना, उसे दुत्कारना, अपमान करना मर्दवादी, दंभी और खुद को श्रेष्ठ समझने वालो के लिए गुरूर की बात भले ही हो, पर यह निहायत घटिया और अमानवीय तरीका है।

उचित कानूनों के अभाव और नैतिकता के दबाव में औरतें चुपचाप मुंह

सिए यह हिसा बरदाश्त करती रहती हैं। हालांकि पति-पत्नी के सबंध को ही लडाई की जड़ मानने वालों को आश्चर्य भले ही हो मगर लेस्बियन और गे जोडिया भी इस घरेलू हिंसा की शिकार हैं। औरत के साथ रहने वाली 11 प्रतिशत औरतें भी बलात्कार, मार-पीट और बदतमीजी की शिकार होती हैं। ठीक यही स्थिति मर्दो की भी है। लगभग 23 प्रतिशत मर्द अपने मर्द साथी की पिटाई करते हैं, उससे जोर-जबरदस्ती और बदसलूकी तक करते है।

कुल मिलाकर पूरी दुनिया आज घरेलू हिंसा की चपेट मे है। जब तक मर्द औरतो को अपनी निजी संपत्ति के तौर पर इस्तेमाल करता रहेगा और मानसिक रूप से उसे बराबरी का ओहदा देने से कतराएगा, तब तक यह हिंसा बढती ही रहेगी। यौन आक्रमणों द्वारा अपने अंतरंग जोड़ीदार को काबू करना मर्दाना प्रयास तो हो सकता है, मगर यह कभी भी औरतों द्वारा स्वीकार्य न होगा। कानून में खामियां होने के बावजूद औरतें इसके प्रति विरोध जताना तो जान ही जाएंगी।

भेड़ें नहीं हैं औरतें

कुछ पुरुषों की नजर में औरत बस देह-भर ही क्यों रह जाती है? यह शोध का विषय हो सकता है। औरत को देह मानने वाले ही, कोमा में पड़ी पत्नी को गर्भवती कर डालते हैं, चलती बस मे उसके साथ बलात्कार कर लेते हैं, उसे बेच डालते हैं या कर्ज लेने के लिए बंधक बनवा देते हैं। मध्यम वर्ग या निचले तबके में औरतों के साथ घटने वाली इन वीभत्स घटनाओ का जब तक समाजशास्त्रीय अध्ययन नहीं किया जाएगा, तब तक यह गुत्थी सुलझने वाली नही। रोज-ब-रोज औरतों पर तरह-तरह के वीभत्स अत्याचार किए जा रहे हैं, जिनमे से इनी-गिनी घटनाएं अखबारों तक पहुंच पाती हैं।

सबसे वीभत्स घटना पटना की है, जहां दो साल से कोमा मे पडी कंचन के साथ शारीरिक संबध बनाने वाला उसका पति (तारकेश्वर) ही अपराधी है। उसे अपराधी इसलिए कहा जाएगा कि उसने अपने सुख की खातिर एक बेबस-लाचार और मौत से जूझ रही औरत को अपनी मर्दानगी का शिकार बनाया। विवाह द्वारा पत्नी को सामाजिक रूप से शारीरिक संबंध बनाने की मान्यता प्राप्त होने का अर्थ यह तो नहीं कि उसे किसी भी विषम परिस्थिति में अपनी मरजी से इस्तेमाल किया जाता रहे।

यह वही कंचन है जो डॉक्टरों की लापरवाही के चलते दो साल पहले कोमा में चली गई थी। पैसों के अभाव में घरवालों ने उस वापस घर लाने का निर्णय लिया था। डॉक्टरों द्वारा कंचन के स्वस्थ न होने की आशंका के बाद तारकेश्वर ने पटना उच्च न्यायालय में मर्सी किलिंग (ऐच्छिक मृत्यु) के लिए अनुरोध किया था। वह चाहता था कि चूंकि उसकी पत्नी पुनः स्वस्थ नही हो सकती, इसलिए उसे मर जाने दिया जाए, क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। पर न्यायालय ने इसे असंवैधानिक करार देते हुए पटना मेडिकल कॉलेज को कचन की जिम्मेदारी सौप दी थी। अब अचानक तारकेश्वर ने यह कहकर सनसनी फैला दी है कि कंचन पेट से है। अपनी मरणासन्न पत्नी से शारीरिक संबध बनाकर इस हैवान रूपी पति ने भले ही अपने वैवाहिक अधिकारों का

इस्तेमाल किया हो परंतु इसे अनैतिकता, जघन्य अपराध, असंवेदनशीलता और पाशविकता-भरा बरताव कहना अतिशयोक्ति तो नहीं ही होगा। ऐसे पति को क्या सजा नहीं दी जानी चाहिए? यदि यह कहा जाए कि तारकेश्वर अपनी पत्नी को इसलिए 'ऐच्छिक मृत्यु' दिलाना चाहता था कि वह उसके भार से मुक्त हो नया विवाह रचाए और मौज से रहे, तो कोई गंभीर आरोप नहीं होगा।

दूसरी घटना में एक औरत के पति और नन्दोई ने मिलकर उसे करोली (जिला दौसा) मे एक लाख रुपये मे बेच दिया। औरत को बेचकर धन उगाहने वाले इन मर्दो की ठोस बुद्धि की दाद देनी होगी। यदि इसका दांपत्य जीवन मधुर नही था, पत्नी से पट नहीं रही थी, वह उससे बंधन मुक्त होना चाहता था तो वैधानिक रूप से तलाक आदि के द्वारा उससे मुक्ति पा सकता था। मगर इन व्यावहारिक तरीकों को छोडकर उसने पाशविक तरीका ईजाद किया और असामाजिक रवैया अपनाते हुए उसे बेच डाला।

उधर उड़ीसा से आ रही खबरों के मुताबिक गरीबी की चपेट मे आए तमाम मजदूर ऋणों का भुगतान न कर पाने के कारण अपनी पत्नियो को बंधक रख दे रहे हैं। यही है इस समाज का असली चरित्र। जहा औरत की स्थिति पालतू जानवरो से भी गई-गुजरी मानी जाती है। अपने अर्थ-सुख के लिए औरत को बेच देना कितना आसान है, इसके लिए न अतिरिक्त प्रयास की जरूरत पड़ती है, न ही किसी मंडी की। औरतों को खरीदने या बंधक रखने वाली मानसिकता वाले पुरुषों से यह समाज पटा पडा है। यहां औरत की कोई हैसियत नहीं मानी जाती। गाय-बैल की तरह उसका इस्तेमाल किया जाता है और जरूरत पड़ने पर उसे बेच दिया जाता है। आपसी रंजिश-निकालने के लिए उसे नंगा करके गांव-भर में घुमाया जाता है, किसी पुरुष से बदला लेने के लिए उसकी पत्नी का बलात्कार कर डाला जाता है। अपने समाज में औरतो की तो कोई इज्जत है नहीं, हां पुरुष उन्हें अपनी मान-मर्यादा से जोड़कर जरूर देखते हैं। औरत की बेइज्जती उन्हे परेशान नहीं करती, जबकि अपने अपमान का बदला लेने के लिए वे कुछ भी कर गुजरने को फुफकारते दिख जाते हैं। लाचारी-बेबसी और निरीहता का चोला ओढे औरतें जबान दबाए ये अत्याचार सहती आ रही है। औरतें, मुर्गियां और बकरियो की तरह बिक रही हैं, उनका शारीरिक-मानसिक-भावनात्मक दोहन हो रहा है पर सरकार और सरकारी सगठन मौन हैं। कही कोई विरोध का स्वर नहीं गूंजता, संसद या विधानसभाओं में इस अत्याचार के खिलाफ एक लफ्ज नही बोला जाता।

दुर्गा, सरस्वती और संतोषी माता की जय करने वाला यह समाज भीतर से कितना क्रूर और वीभत्स है।

विकास और वैश्वीकरण के झंडे हम कितने ही फहरा लें, जब तक इस तरह की सामाजिक कुरीतियां व औरत–मर्द के दरम्यान मौजूद विषमता खत्म नहीं की जाती, तब तक औरत और भेड़ में कोई फर्क नहीं समझा जाएगा।

मर्दवादी विचारधारा पर कुठाराघात करने के लिए सख्त और भय पैदा करने वाले नियम जब तक नहीं बनाए जाते, तब तक मर्दों द्वारा ये वाहियात कारनामे दोहराए जाते रहेंगे। कंप्यूटर क्रांति के इस दौर में आदिम प्रवृत्तियों का दोहराया जाना किसी समाज की निकृष्ट सोच का परदाफाश करता है। एक बेजान औरत में गर्भ रोपने वाला पति किसी बलात्कारी से कमतर तो नहीं आंका जा सकता। चलती बस में औरत के साथ किया जाने वाला बलात्कार हो या उसे मंडी में बेच दिए जाने की प्रवृत्ति, जब तक ऐसा करने वाले अपराधियों को कठोर दंड नहीं दिए जाते, तब तक औरतें भय और असुरक्षा तले जिंदा रहने को अभिशप्त रहेंगी।

मर्द बनने का स्वांग

केवल पढी-लिखी या आधुनिक औरतें ही आजादी व स्वच्छदता की दीवानी नही होतीं। प्राय: यह आरोप लगाया जाता है कि आधुनिक औरतें चूंकि परपराओ के विरोध में उतर आती हैं, इसलिए वे सामाजिक मान्यताओ को झुठलाना अपना शगल समझती हैं। ठीक इसके विपरीत, यदि भारतीय परंपराओ का बारीक परीक्षण करे तो यहां कई दफा हिम्मत को दाद देने वाली रूढियां प्रचलित पाई जाती है। राजस्थान के जोधपुर जिले के कुछ गांवों मे एक ऐसी ही प्रथा प्रचलित है।

एक हिंदी पत्रिका में रोहित परिहार की छपी रपट के अनुसार, होली के एक महीने बाद 'धींगा गवर' नाम से एक त्योहार मनाए जाने का चलन है। औरतो द्वारा मनाया जाने वाला यह त्योहार दरअसल 'औरतों की रात' नाम से भी जाना जाता है। इस दिन सैकडों की संख्या में औरतें बन-संवरकर सडकों पर उतर आती है। इनमे से अधिकतर औरतें पुरुषों के वेश रखे होती हैं। कुछ औरतें तिरुपति बालाजी, शिवाजी या महाराज जोधपुर की तरह तैयार होती हैं, तो कुछ मोटी-मोटी मूछे लगवाकर पुरुषवेश मे होती है। ये औरतें समूह में सडकों पर घूमती है और मौका पाते ही छेड़छाड करने वाले या रोड़े अटकाने का प्रयास करने वाले लडको को पीट डालती हैं। इस दिन के अंत में वे भांग मिला प्रसाद खाती हैं और उम्मीद जताती हैं कि पूरा साल उन्हें इसी हैसियत से जीने को मिले।

किसी समाज में दबी-पिछड़ी और सताई गई औरतों को इससे अच्छे प्रदर्शन की छूट कहां मिलेगी। बिना किसी प्रतिरोध के, परंपरा के नाम पर वे अपने दबे हुए सपनो व कुठाओं को बखूबी प्रदर्शित कर लेती है। सामाजिक स्वीकृति-प्राप्त यह त्योहार मर्दो को लाख बुरा लगने के बावजूद, किसी आंदोलन का सिरा नही माना जाता। भाग खाकर, उसके नशे में झूमना या बौरायेपन का मजा चखना उनके लिए यूं तो अनैतिक है, पर इस बहाने से वे इसका मजा लेने से चूकना नही चाहतीं। समाज में औरतों को इतने नियम-कायदों मे जकड दिया जाता है कि उनके भीतर धीरे-धीरे कुठाएं पनपने लगती है और वे एक अजीब तरह की संकीर्णता में जकड़ जाती हैं। उत्तर प्रदेश के कुछ ऐसे इलाकों से मेरा परिचय है

जहां ठीक इसी परंपरा को औरतें जीती हैं। बस फर्क इतना है कि वहा सालाना कोई त्योहार नही होता। लड़के की शादी वाले घर मे औरतें इसे मनाती हैं। जब वर पक्ष बारात के रूप मे वधू पक्ष के घर/शहर चला जाता है, उस रात लडके के घर में बची हुई औरते एक छद्म जीवन जीती हैं। 'नकटौरा' के नाम पर घर की तमाम वयस्क औरते शादी के मंडप के नीचे जमा होती हैं। इनमें से एक औरत शादी वाले लडके के पुराने कपड़े पहनकर, मूंछ आदि बनाकर पगड़ी बांधती है। कुछ अन्य औरते बाकायटा उक्त (छद्म) वर के परिजन यानी बाबा, मामा, चाचा, पिता, भाई आदि की मर्दाना भूमिका में आ जाती हैं। इनमें से एक औरत वधू के रूप में तैयार की जाती है। रात-भर चलने वाली इस नौटंकी मे बाकायदा विवाह संपन्न किया जाता है। उक्त वर-वधू एक कोने में जाकर सुहाग रात का भी स्वांग करते हैं, जिसमें वर रूपी औरत वधू को जी भरकर सताती है।

यह मजेदार तथ्य है कि दोनों ही परंपराओं में मर्दो की उपस्थिति पर कड़ाई से रोक लगाई जाती है। स्वतंत्रता और आजादी या स्त्रीविमर्श जैसे मोटे-मोटे लफ्जो को जाने या समझे बिना ही, वर्षो से पीढ़ी दर पीढ़ी वे इस तरह का स्वांग करती आ रही है। यही वह दिन होता है जब वे अपने औरतपने पर मर्द को हावी कर लेती है और वही सब जीने की कोशिश करती हैं, जो मर्द रोजाना करते हैं। मर्दो का चोला ओढकर ये उनकी अच्छाइयां जीने की कोशिश नहीं करतीं, बल्कि वही सब करती हैं, जिसके जरिये इन्हें सताया जाता है।

दरअसल औरतो के भीतर आज से नहीं, बल्कि सैकड़ों सालों से घर के मर्दो का जो हौव्वा बैठा होता है उसका वे जोरदार विरोध नहीं दर्ज करा सकतीं। उन्हे परिवार नामक इकाई में वह सब कुछ मुंह सिए जीना होता है जो मर्द कर रहा है। वह जोर-जबरदस्ती करे या मार-पिटाई, औरत उसे झेलने को अभिशप्त है। वह जानती है कि इसके विरोध का अर्थ है, सड़क पर आ जाना। दूसरे सामाजिक-पारिवारिक बधनों में वह इतनी उलझी होती है कि प्रतिरोध का खयाल भी उसके लिए बेमानी होता है। मगर ये दबी हुई इच्छाएं उसे कुछ ऐसा करने के प्रति प्रेरित करती हैं, जिनके मार्फत वह सब कर सके जिसका मजा मर्द लूटता है। आज भी समाज मे ऐसी गिनती की औरते होंगी जो अपनी मरजी चला सकती हैं या अपने दिल की बात खुलकर कर सकती है। औरतों के लिए रची गई वर्जनाएं इतनी सख्त और बेसिरी हैं कि उनका विरोध उसके बस की बात नही रह जाती। सामाजिक रूप से औरत को एक ऐसे पूर्वनियोजित सांचे में कसना शुरू कर दिया जाता है, जिसके अभाव मे वह खुद को अपूर्ण व असुरक्षित

महसूसने लगती है।

अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं जबकि सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय में कहा था कि मर्द मुखिया के अभाव में परिवार को संयुक्त नहीं माना जा सकता। यानी जिस घर में केवल औरतें होंगी उसे संयुक्त परिवार का दर्जा नहीं दिया जाएगा। मान लीजिए, किसी छत के नीचे बूढ़ी दादी, विधवा मां और परित्यक्ता युवती या बहू व उसकी बेटी रहती हैं तो उन्हें संयुक्त परिवार नहीं माना जाएगा। ऐसा इसलिए होगा कि इस इकाई के सिर पर एक मर्दाना हाथ नहीं है। दूसरा अहम सवाल है— मान लीजिए, किसी परिवार में औरत घर के मर्दों से ज्यादा पैसा कमाती है और घर का आर्थिक भार उसके कंधों पर है तो भी उसे घर का मुखिया नहीं माना जाएगा। मुखिया दरअसल एक मान्यताप्राप्त ओहदा है, जिसे यह समाज पुरुषों को ही देता है। यह हम औरतो का दुर्भाग्य है कि माननीय न्यायालय भी पुरुषों के इस ओहदे को सुरक्षित रखना चाहता है, वह भी तब जबकि औरतें अपनी अहमियत, अपनी मौजूदगी और अपने वजूद की लड़ाई जोरदार तरीके से लड रही हैं। इस सबसे ज्यादा मान लिया जाए कि औरत केवल स्वांग रचकर ही मर्द बनने/होने की संतुष्टि पा सकती है। क्या उन्हे कभी भी, कैसे भी वे अधिकार नहीं दिए जा सकते, जो मर्दो ने अपने लिए सुरक्षित रखे है?

मर्दों के पक्ष में जाता फैसला

परंपरावादियों और संस्कृति का रोना रोने वालो को माननीय इलाहाबाद हाई कोर्ट ने अपने एक फैसले से करारा झटका दिया है। कोर्ट ने एक मामले की सुनवाई के दौरान स्वीकारा कि कानून और नैतिकता में बहुत फर्क है। कोर्ट ने कहा है कि कोई भी मर्द और औरत आपसी सहमति से, बिना शादी किए एक साथ रह सकते हैं। दो सदस्यीय खंडपीठ ने स्पष्ट किया कि समाज द्वारा इसे भले ही अनैतिक माना जाए, पर यह गैरकानूनी नहीं है।

यह फैसला एक शादीशुदा मर्द और एक लड़की के साथ रहने पर दिया गया। लडकी के पिता ने आरोप लगाया था कि उस आदमी ने उसकी लड़की का अपहरण किया है। चूंकि लड़की 21 वर्ष की है, इसलिए कोर्ट उसे स्वनिर्णय की इजाजत देता है। उक्त फैसले के बाद ऐसा माना जा रहा है कि कानून की नजर मे बिना शादी किए सहजीवन काटने वालों को हरी झंडी मिल गई। विवाह संस्था को ढोंग बताने वाले तथा इसे अपने तर्कों से कंडम करने वाले हजारो जोड़े अब अपने देश में भी पाए जाते हैं। हालांकि अभी तक इन्होने न तो कोई गंभीर लडाई लडी है और न ही अपने संबंधों को सामजिक स्वीकृति दिलाने के प्रति विशेष बल ही दिया। यह सच है कि स्वेच्छा से अपना जीवनसाथी चुनकर बिना (विवाह) आडंबर किए, आपसी सहमति के आधार पर अपना जीवन काटने को हर वयस्क स्वतत्र होना चाहिए। सात फेरे लगाने या एक दफ्तरी रजिस्टर में दस्तखत करने का अर्थ ताउम्र संबंधों को ढोने के लिए मजबूर (त्रस्त) होना नही है, क्योंकि सबंध-विच्छेद या तलाक का अधिकार आपके पास हमेशा सुरक्षित रहता है। जीवन को अपने ढंग से जीने के लिए स्वतत्र होना एक बात है और सामाजिक व्यवस्था को ठेंगा दिखाना दूसरी।

यहां विवाह संस्था का महिमा-मंडन नहीं किया जा रहा, क्योंकि यह एक तरह का मानसिक छलावा ही है। चूकि कोर्ट द्वारा दिया गया यह फैसला एक विवाहित मर्द और अविवाहित औरत के साथ रहने पर है, इसलिए औरतो के हक के कुछ जायज सवाल उठ रहे हैं। हिंदू विवाह कानून की नजर में एक से अधिक

शादियां गैरकानूनी है, लेकिन इस फैसले के बाद तो उन पुरुषों की बल्ले-बल्ले हो जाएगी, जिन्हें कई औरतें रखने का सामती शौक है। अपनी (कानूनी) पत्नी के अलावा वे अलग-अलग कई औरतो के साथ सहजीवन बिताने को स्वतंत्र हो जाएगे।

हालांकि माननीय अदालत ने अपने इस फैसले में यह नही स्पष्ट किया है कि कोई विवाहित औरत अगर अपने पति के अलावा दूसरे मर्द के साथ जीवन काटना चाहे तो वह इसके लिए स्वतंत्र होगी या नहीं। क्योंकि अब तक कानून विवाहेतर संबंध रखने वाली औरत के साथ संबध-विच्छेद का अधिकार देता है। यदि इलाहाबाद हाईकोर्ट का निर्णय आधार बनाया जाए तो अनैतिक होने के बावजूद कोई भी शादीशुदा औरत दूसरे मर्द से सबध रखने को स्वतंत्र मानी जाएगी यानी उस पर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं होगी। यह फैसला एक औरत के पक्ष में होने के बावजूद मर्द के पक्ष में ज्यादा दिखता है। क्योंकि इसमे मर्द साफ बच गया जबकि औरत के ऊपर अनैतिकता का ठप्पा लग गया। चूंकि अब तक विवाहेतर सबंधों को अनैतिक ही नहीं माना जाता था, बल्कि यह गैरकानूनी भी थे, इसलिए दूसरी औरत के साथ रहने वाले मर्दो को कानून का खासा खौफ था, मगर इस निर्णय से यह जाता रहेगा। विवाहेतर संबंध को कानूनी नजर में वैध करार देने के बाद संपत्ति और अधिकारो की बात भी उठनी लाजमी है। अच्छा होता कि इस अभूतपूर्व फैसले पर निर्णय देते समय अदालत द्वारा यह भी साफ कर दिया जाता है कि एक शादीशुदा मर्द के साथ रहने वाली औरत को क्या पत्नी को प्रदत्त सारे अधिकार दिए जाएंगे?

विद्वान न्यायाधीश-द्वय द्वारा दिए गए इस फैसले से एक गुत्थी और भी उलझ गई है कि समाज की नजर में जो अनैतिक है क्या उसे ठेंगा दिखाकर कोई भी पुरुष कानून का संरक्षण प्राप्त कर सकता है? कोई बाप जब अपनी बच्ची के साथ बलात्कार करता है तो क्या उसे केवल अवयस्क के साथ यौन सबध बनाने का दोषी माना जाना चहिए? क्योंकि अपनी जायी बच्ची से यौन संबंध बनाना गैर-कानूनी से ज्यादा अनैतिक ही है, जिसे घृणित और तिरस्कृत माना जाता है। नैतिकता और अनैतिकता में विभेद यदि मानव दिमाग की उपज है तो कानूनी और गैरकानूनी के बीच की रेखा भी विद्वानों द्वारा तर्कों के आधार पर ही खींची गई है।

कानून की नजर में औरत और मर्द में भेद करने की सख्त मनाही है, इसके बावजूद दोनों को मिले अधिकारों मे जमीन-आसमान का फर्क है। यह सच है

कि समाज की नजर में औरत और मर्द के लिए नैतिकता की परिभाषाए बिलकुल अलग-अलग हैं। जरूरी नहीं है कि जो औरत के लिए अनैतिक हो, वह पुरुष के लिए भी अनैतिक माना जाए। मसलन लालबत्ती इलाके में जाना अनैतिकता के दायरे में आने के बावजूद लगभग स्वीकार्य है, ढेरों मर्द बिना रोक-टोक यौन सुख के लिए पैसों के बूते वहां जाते है। लेकिन इन मर्दो का न तो सामाजिक रूप से बहिष्कार किया जाता है और न ही अनैतिकता का आरोप लगाकर किसी प्रकार मानसिक या शारीरिक रूप से दंड दिया जाता है। मगर यही समाज किसी औरत द्वारा पर पुरुष से सबंध रखने को हेय दृष्टि से देखता है। उसे कुलटा, कुलच्छनी, चरित्रहीन और बदचलन जैसे विशेषणों से संवार देता है। सामाजिक रूप से अनैतिक होने के बावजूद यदि कानून उसे यूं ही आश्रय देता रहा तो अफरा-तफरी का जो माहौल पैदा होगा, उससे निपट पाना मुश्किल हो जाएगा। औरतों के प्रति होने वाले अपराधों की बढती संख्या इस बात की गवाह है कि सामाजिक रूप से अनैतिक होने के बावजूद, आम आदमी के मन में भय जैसा कुछ नही होता। वह केवल कानून से ही आतकित रहता है। यदि कानून भी उसे यूं प्रश्रय देता रहेगा तो औरतों की स्थिति का फायदा उठाने वाले मर्दो को रोक पाने का साहस कौन कर पाएगा?

ऊबे हुए पतियों की मस्ती

जून का महीना औरतों के लिए इतनी तपन और झुलसती गरमी के बावजूद बेहद सुकून देने वाला होता है। साल-भर घर गृहस्थी में खटने के बाद वे बच्चो की छुट्टियों का भरपूर आनद अपनी मां के घर जाकर उठाती है। कमोबेश इधर कई ऐसे पतियो का दिमाग टटोलने का मौका मुझे मिला, जिनकी पत्नियां बोरिया-बिस्तर समेटकर मायके जा चुकी थीं। इन सभी पतियों की खुशी का ठिकाना नहीं था, सभी ने पूरे उल्लास के साथ स्वीकारा— आजकल तो बहुत मजा है.. हम स्वतंत्र हैं. .घर बहुत अच्छा लग रहा है...काफी शांति है...या मैं अपने बहुत सारे पेंडिंग काम निपटा रहा हूं..

इन अकेले छूटे पतियों की प्रतिक्रिया ने मुझे मानसिक रूप से झकझोर दिया और दिमाग मे यह विचार मंथन शुरू हो गया कि ये मर्द क्या वाकई ऊबे हुए पतियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं? क्या इसीलिए शादी को बंधन माना जाता है? औरत द्वारा सजा-संवारकर तैयार किया गया घरौंदा (घर) उसकी गैरहाजिरी मे इस्तेमाल करते वक्त इन्हें उसकी मौजूदगी का अहसास तो कराता ही होगा परंतु यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि पत्नियों का अभाव उनमें एक नई चुस्ती-उत्साह और रोमांच पैदा कर देता है। मन मसोसकर मायके मे रहने वाली औरतें बिना पति की सहमति के वहां जाना भी पसंद नहीं करतीं।

ऐसी कुछ आम और ठोस वजहों को झुठलाया नहीं जा सकता, जिनके दबाव पुरुषों को लगभग अस्वीकार होते हैं। स्वतत्र जीवन जीने के आदी पुरुष कोई भी बंधन, सीमाएं व नियम स्वीकार करने की मानसिकता में कभी नहीं आ पाते, इसलिए एक समय के बाद वे शादी को ढोने की स्थिति में आ जाते हैं। यूं भी अपने समाज में शायद गिने-चुने दंपतियों के जीवन में रोमांस का खुलापन होता है। चूंकि वे पति-पत्नी हैं, इसलिए एक-दूसरे पर इच्छाएं कम अनिच्छा ज्यादा लादते रहते हैं। औरतों को भी कई दफा पति का घर (खासकर वह सयुक्त परिवार में है तो) पिंजड़ा या बंधनों का जंजाल लगता है। वे साल के कुछ दिन सिर्फ अपने लिए जीना चाहती है। हालांकि यह मायके मे भी संभव नहीं

हो पाता। माना तो यह जाता है कि शादी दो (समझदार) लोगों का संयोग होना चाहिए, जिसमें दोनों का अपना-अपना अस्तित्व बचा रह सके। जबकि होता बिलकुल उलटा है, शादी होते ही पत्नी के ऊपर पति हावी हो जाता है और जताता है कि यही उसका धर्म है।

औरतों के अभाव मे जीना हालाकि पुरुष की प्रकृति नहीं है, वह हर सभव उत्पादन, लैंगिकता व प्रजनन के लिए औरत नामक जीव की तलाश मे रहता है। चार्ल्स हैंबलेट व जेन डेबर्सन ने एक जगह कहा है—'मेरी एक पत्नी और एक घर हो—यह मै सोच ही नहीं सकता। मैं आजाद महसूस करना, जहां चाहूं रहना और चिंता न करना पसंद करता हूं।' यह कितना दुःखद है कि अपने सुखो के लिए बीवी का इस्तेमाल कर अघाए ये तमाम पति कुछ देर (दिन) के लिए लंबी तान सोना, उन्मुक्त जीवन जीना चाहते हैं। रोजमर्रा के जीवन से ऊबे ये लोग अपनी मरजी से, बिना किसी की ना-नू सुने स्वतत्रता का मजा लूटना चाहते है। जितनी देर से मरजी सोकर उठना, देर रात सड़कों पर आवारा-बेघरों की तरह फिरना, नशे में मदहोश हो लड़खडाते घूमना, यारबाजी करना, ज्यादा दिल किया तो लडकियों/औरतों को (भाड़े पर) लाकर इस्तेमाल करना उनके चरम सुखो की लिस्ट में आता है। पत्नी के रहते वे इन सुखों, कहें तो, लिप्साओं से वंचित रह जाते है। पर क्या वे कभी औरत के चश्मे से अपनी दुनिया देखने का साहस जुटा सकते हैं? क्या वे कुछ क्षण औरत को अपनी जैसी स्वतंत्रता देने की कुव्वत अपने भीतर पैदा कर सकते हैं? क्या स्वतत्रता का आनंद औरतों के निए निषिद्ध है?

पीढ़ियों से औरतों को उंगलियों में नचाते चले आए मर्दों का अहम् उस वक्त चूर-चूर हो जाता है जब उन्हें पत्नी रूपी औरत के निर्देशों के आगे झुकना पडता है। झुकना-सुनना-पालन करना, खासकर जब वह औरत के पक्ष से हो, पुरुष के लिए नागवार हो जाता है। पुरुष अपनी छवि प्रायः छोटे-मोटे सामंत सरीखी पेश करता है। घर की छत को वह राज्य सरीखा मान लेता है और मासिक घरखर्च के रूप में वह रियाया रूपी पत्नी को एक निश्चित रकम थमाता है। इस वक्त उसका सीना चौड़ा होता है और नथुने फैले। वह दाता होता है, दानी होता है और औरत 'मंगतिन'! सीमित बजट में घर बनाने से लेकर, खाने-पहनने, बच्चो की शिक्षा, दवाएं, रिश्तेदारी सबकी व्यवस्था वह एक कुशल वित्तमंत्री की तरह करती है, खींचतानकर इस सबके बीच वह कुछ बचत भी कर लेती है। मौका पडने पर पति द्वारा ही उसका उपयोग किया जाता है।

अकसर देखने मे आता है कि पति का विछोह पत्नियों को रास नही आता है जबकि इसके उलट, पति अकेले में आनंद अनुभव करते है। कुछ ऐसे भी पुरुष है जो घर के इस खालीपन का खूबसूरत इस्तेमाल खुद तो करते ही हैं, उनके वे मित्र, जो विवाह के झंझट के चलते बाजारू औरतों का आनंद नहीं ले पा रहे होते, उनको अपना खाली घर मुहैया कराते हैं। पत्नी का जाना खलता तभी है जब बाहर के खाने से अपच, कै या मरोड़ उठने लगती है, कपड़े धोने-सुखाने पडते हैं, धूल-धक्कड से सना घर चिढ़ाने लगता है या अपने ही जूठे बरतनो से सडाध उठने लगती है। स्टेकलर ने कहा है— विवाह एक कॉमेडी है। यह दो साथियों के बीच की नाटकीयता है, जिसमें बहुधा वास्तविकता और कल्पना के बीच की दीवार ढह जाती है।

सहजीवन में भी दुःखी औरतें

सहजीवन यानी बंधनमुक्त साहचर्य। सरल शब्दो में कहें तो दो विपरीत लिंगियों का बिना विवाह एक साथ रहना। इसे आज कई नामों से जाना जाता है, जैसे लिविंग टुगेदर, शेकिंग अप, कोहैबिटेशन, सीरियल मोनोगेमी, लिविंग इन सिन आदि-आदि। यह उन जोडों को पसंद है जो विवाह के निजी व सामाजिक बधन से खुद को मुक्त रखना चाहते हैं। विवाह नामक संस्था को चुनौती देने वाली यह प्रवृत्ति पश्चिमी समाज में अपनी जडें जमाने के बाद भारतीय समाज मे भी दस्तक देने लगी है। हालांकि अभी यह प्रचलन एक वर्ग-विशेष तक ही सीमित है।

अमेरिका में ऐसे जोड़ों की संख्या (1998 मे) बढ़कर 42,86,000 के करीब पहुंच गई थी, जो 60 के दौर मे केवल 4,39,000 से शुरू हुई थी। हमारे समाज में हालांकि परंपराएं और आस्था, तमाम आधुनिकता का लबादा ओढ़ने के बावजूद अब तक धुंधले रूप में ही सही, पर मान्य हैं। लेकिन रूढियों और मान्यताओं से बदला लेने पर उतारू एक ऐसा वर्ग भी पनप रहा है जो विवाह संस्था को ठुकराकर उसके समानांतर एक नई धारा चलाने को उत्सुक है। यह जबरदस्त सांस्कृतिक बदलाव है, जहां रोमांस और अनुनय-विनय को दरकिनार किया जा रहा है। पिछले 40 सालों के दरम्यान तकरीबन 50 लाख जोडों ने विवाह संस्था को ठोकर मारकर लिविंग टुगेदर पद्धति अपनाई है।

अमेरिकी समाज में विवाह-बंधन के पहले सहजीवन द्वारा एक-दूसरे को परखने का प्रचलन खूब है। यह एक तरह का ट्रायल होता है। हालांकि ताजा सर्वेक्षणों से जाहिर हो चुका है कि बिना सहजीवन के विवाह करने वालों की तुलना में सहजीवन के बाद विवाह करने वालों में 50 प्रतिशत अधिक तलाक या संबंध-विच्छेद होते हैं। शुरू के दौर में वहां भी यह पारंपरिक शादी के खिलाफ उठाया गया एक क्रांतिकारी कदम था, जैसा कि अब अपने समाज में भी दिख रहा है। वे तमाम जोडे जो विवाह को मात्र दिखावा, आडंबर और सामाजिक दकियानूस मानते हैं, परंपराओ को ठेंगा दिखाकर, आपसी सहमति के आधार पर

सहजीवन मजे से चला रहे है। इनके लिए विवाह सस्था अप्रसांगिक और दमनकारी हो चुकी है। ये खुद को विवाह-विरोधी कहने के बजाय तलाक-विरोधी कहना ज्यादा पसद करते हैं। आज के युवाओं में रिश्तों के प्रति प्रतिबद्धता और अपनत्व की जगह मौज-मस्ती और धनलिप्सा लेती जा रही है। वे जिम्मेदारियो से खुद को अछूता रखना चाहते हैं। दांपत्य जीवन में बढते बिखराव और तलाक के झंझटों से डरकर सहजीवन बिताना ज्यादा सुविधाजनक लगता है। जॉन होपकिंग यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्री एंड्रयू चर्लिन का कहना है कि पश्चिमी इतिहास में बिना विवाह के एक साथ रहना भी स्वीकार नहीं था। बस, कुछ ही दशकों पहले इसे मान्यता दी जाने लगी है। पूर्वी यूरोपीय देशों में खुले यौन संबंधो और नैतिक उदारता की चाहत में सहजीवन के प्रति आकर्षण बढा है। तीस से नीचे वाली आयु के युवाओ में विवाह के प्रति अरुचि तेजी से बढी है। अमेरिकी समाज में तीस-साला जोडों में केवल 60 प्रतिशत ब्याहता हैं, शेष 20 प्रतिशत सहजीवन बिता रहे हैं। जबकि 20 प्रतिशत एकाकी जीवन पर विश्वास करते हैं।

यूरोप मे 1990 के दौरान जन्मे बच्चों में से आधे इन्हीं अनब्याही मांओं की कोख से पैदा हुए। असमानता के खात्मे व समाज-सुधार के लिए माहौल तैयार करने के लिहाज से इन अकेली मांओं को खूब बढ़ावा मिला। यही नहीं, उत्तरी नार्वे मे (35 वर्ष से कम उम्र वाले) 70 प्रतिशत जोडे बिना विवाह के रह रहे हैं। नीदरलैंड में भी पिछले तीन दशकों से विवाहपूर्व तात्कालिक तौर पर सहजीवन बिताने की प्रथा चल पड़ी है। स्वीडन में घरेलू जीवन बिता रहे दंपतियों में 30 प्रतिशत अविवाहित हैं और उन्होने शादी को बिलकुल नकार दिया है। इंग्लैंड में 70 प्रतिशत औरतें शादी के बधन में पडने से पहले जीवनसाथी के साथ कुछ दिन रह लेना ज्यादा पसंद कर रही हैं। अमेरिका मे इस समय हर दूसरी शादी टूट रही है। शादीशुदा की बजाय बच्चों वाले बिनब्याहे दंपती आसानी से अलग हो जाते है। पश्चिमी समाज में चूकि इन्ही बंधनों से बचने के लिए विवाह को ठोकर मारी जाती है, इसलिए प्राय: जोडे बच्चे पैदा करने का जोखिम उठाने से कतराते हैं। आस्ट्रेलिया में करीब 60 प्रतिशत जोड़े शादी से पहले एक-दूसरे के साथ रह लेते है, वहां पैदा होने वाला हर चौथा बच्चा बिनब्याहे दंपतियों का होता है। ब्रिटेन में शादीशुदाओं से सहजीवन काटने वाले नौ गुना ज्यादा बताए जाते है, लेकिन वहा विवाह से पहले साथ न रहने वाले संबंध बिखरते भी खूब देखे जाते हैं। वहा आफिस फॉर नेशनल स्टेटिस्टिक्स द्वारा किए गए अध्ययन में पाया गया कि विवाह पूर्व साथ रहने के प्रति वे काफी गंभीर होते हैं। शायद यही कारण है कि

शादी के बाद उनमें मतभेद बहुत कम होते हैं। पाच मे से एक ब्रितानी बच्चों की खातिर शादी करता है। पश्चिमी यूरोप में एकाकी जीवन काटने वालों की संख्या में भारी इजाफा हो रहा है।

'सिविल लिबर्टीज यूनियन ऑफ हार्वर्ड यूनिवर्सिटी' के एक अध्ययन में पाया गया कि अंडरग्रेजुएट 91 प्रतिशत विद्यार्थी यूनिवर्सिटी छात्रावास मे सह-शिक्षा प्रणाली के आधार पर एक साथ रहने को तैयार थे। हाल ही मे हार्वर्ड प्रबंधन ने विद्यार्थियों को कभी भी किसी के साथ सोने की इजाजत दे दी, बस इससे आपका रूममेट सहमत हो। खुले समाजों में दांपत्य जीवन के दरम्यान इतने विरोध पनप रहे है कि विवाह संस्था को बचाए रखने के लिए वे कोई भी प्रयोग करने को तैयार है। संयुक्त राष्ट्र ब्यूरो द्वारा की गई जनगणना के अनुसार 1990 के दौरान 9 8 शादियां हुई जिनमें से 4.7 टूट गईं। तलाक और इसकी कानूनी प्रक्रिया के झंझट से जूझने से युवा वर्ग इतना घबराता है कि वह इस तरह का कोई रिस्क लेने को तैयार नहीं है। विवाह-बंधन में बंधने से पहले वह पूरी तरह सतुष्ट हो जाना चाहता है। तलाक के मामले बढने से बच्चों का भविष्य असुरक्षित हो जाता है। 1960 की तुलना में 1990 में तलाकशुदा दपतियों के साथ रहने वाले बच्चो में 352 प्रतिशत का इजाफा हुआ। तलाक या संबंध टूटने का सीधा असर विवाह पर पडा और लोग इससे घबराने लगे। 1995 के दरम्यान 44 लाख अमेरिकी मर्द-औरतो ने कभी न शादी करने का निर्णय अटल रखा। बिनब्याहे दंपतियों की सबसे ज्यादा सख्या अलास्का में है, इसके बाद वमोट, कैलीफोर्निया, वाशिंगटन आदि आते हैं।

पश्चिमी देशों की तरह अपने यहा भी बिनब्याहे जोड़ों में इजाफा हुआ है। विकसित देशों में ऐसा जीवन काटने के पुख्ता कारण भी हैं। किशोर व युवा वर्ग का मानना है कि खर्चो को आपस मे सुविधानुसार बांटने, अपनी-अपनी निजी बचत करने, पारंपरिक उत्तरदायित्वों के प्रति गैरजिम्मेदाराना रवैया अपनाने, मतभेद होने पर फटाफट छुटकारा पाने यानी तलाक जैसी संवैधानिक अव्यवस्था में न उलझने, निजी वक्त बचाने, परिवार-रिश्तेदार, मां-बाप के झझट से बचने, शारीरिक संबंधों की सीमा तोड़ने, दूसरों में दिलचस्पी लेने के लिए हमेशा स्वतंत्र रहने, जब मरजी प्रेम किया, जब मरजी छोड दिया, सुरक्षित और स्वतंत्र सेक्स जैसी तमाम सुविधाओं का आनंद उठाने के लिए बिनब्याहे साथ रहना ज्यादा फायदेमद है। रिश्तों को 'यूज एंड थ्रो' की तरह इस्तेमाल करने वाली मानसिकता ने विवाह-बंधन को और गैरजरूरी करार दिया है।

हालांकि पश्चिमी समाज का तानाबाना हमारे यहां से बिलकुल भिन्न है, मगर उनकी संस्कृति से प्रभावित एक बडा वर्ग अपने देश में भी मौजूद है। उन्मुक्त सेक्स और एक साथी के साथ पूरा जीवन बिताना दूसरी बात है। ब्याह को आडबर मानकर दिखावों-रूढियों और परंपरा को तोडकर सहजीवन काटना एक बात है और केवल शारीरिक सुख के लिए समय-समय पर साथी बदलना दूसरी।

अध्ययन बताते हैं एक जीवनसाथी की बजाय कई पुरुषों या औरतो के साथ शारीरिक संबंध रखने वालों में डिप्रेशन व व्यावहारिक समस्याएं ज्यादा होती हैं। ऐसे लोगों मे आत्महत्या की प्रवृत्ति भी ज्यादा पाई जाती है। ऐसा देखा गया है कि सहजीवन काटने वाले अपने प्रेम के बदले सेक्स की जबरदस्त मांग रखते हैं। इच्छा पूरी होने के बाद वे एक विशेष तरह के डिप्रेशन का शिकार हो जाते हे। अधिकतर विश्लेषकों का मानना है कि विवाहितों की बजाय सहजीवियों में मारकूट की प्रवृत्ति बहुत तेज होती है। अध्ययन के अनुसार, सहजीवन काट रही 40 प्रतिशत औरतों के साथ असभ्य तरीके से सेक्स किया जाता है। यू.एस. जस्टिस डिपार्टमेंट ने पाया कि पति की बजाय पुरुष मित्र द्वारा औरतें 62 गुना ज्यादा बार बेइज्जत की जाती हैं। शादीशुदा औरतों से दुगुनी बार इनके साथ हिंसा व शारीरिक प्रताडना होती है। नार्दर्न स्टेट यूनिवर्सिटी ने एक अध्ययन मे पाया कि सहजीवनचारी युवक बलात्कार को स्वीकृति देते हैं। इसमें यह भी पाया गया है कि ऐसे पुरुष 'संबंधों' से सहमत हो चुके होते हैं। जबकि ये औरतें वैवाहिक जीवन की उम्मीद में जीती हैं।

शादीशुदाओं की बजाय बिनब्याहे साथी दोगुने उन्मादी और अतृप्त पाए जाते है। चूंकि सामाजिक मान्यताओं को ये ठेंगा दिखा चुके होते है, इसलिए इनमे उन्मुक्त सेक्स के प्रति अधिक रुचि पाई जाती है। प्रतिवर्ष 100 मे से 35 दपती शारीरिक संबंधों के दरम्यान उन्मादी हो जाते हैं, जबकि विवाहितो में यह औसत केवल 15 है। एक दूसरे को मारना, प्रताड़ित करना, चीजें फेंककर मारना, गाली-गलौच करना बिनब्याहों में 14 प्रतिशत होता है, जबकि विवाहितो में कवेल 5 प्रतिशत। पेन स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन के अनुसार सहजीवन जीने वाले विवाहितों से कही ज्यादा बहस करते हैं, चिल्लाते है और मारकूट पर आमादा हो जाते हैं।

न्यूहैंपशर यूनिवर्सिटी के फैमिली वायलेंस रिसर्च प्रोग्राम ने माना है कि सहजीवी विवाहितो की अपेक्षा अधिक आक्रामक होते हैं। ये सताने के पाच गुना

ज्यादा भयानक तरीके इस्तमाल करत हे। अमरिका के नशनल क्राइम विक्टमाइज सर्वे' के अनुसार औरतों के खिलाफ क्रूरतम अपराध करने वालो में 65 प्रतिशत सहजीवी पुरुष या पूर्वपति होते है। जबकि केवल 9 प्रतिशत पति ऐसा करते पाए गए। एक ब्रितानी अध्ययन ने बताया कि बिनब्याहे पुरुष के साथ रहने वाली औरतों के बच्चे 20 गुना ज्यादा प्रताडित किए जाते हैं। विशेषज्ञो का मानना है कि बिनब्याही औरतें यदि योन संबंध रखती हैं तो उन्हे मनोवैज्ञानिक के सलाह की चार गुना ज्यादा जरूरत पड़ती है। मानसिक स्वास्थ्य केंद्र के अनुसार उन्हे तीन गुना ज्यादा डिप्रेशन होता है और वे 25 प्रतिशत ज्यादा मानसिक गड़बडियों की शिकार हो जाती है।

बिनब्याही औरतों में चिडचिड़ाहट, चिंता, दुःख और असंतुष्टि की भावना ज्यादा होती है। वे ज्यादा बीमार रहती हैं और दीर्घायु नहीं होतीं। विभिन्न अध्ययनों के मुताबिक, शादीशुदा लोगों में मानसिक व संवेदनात्मक संतुष्टि बहुत ज्यादा होती है। वे दीर्घायु भी होते हैं और बीमारियों से जूझने की उनमें ज्यादा क्षमता होती है।

बिनब्याहे, तलाकशुदा, एकाकी विधवा/विधुर लोग दिल की बीमारियो, हृदयाघात, कैंसर, लीवरफेल, सड़क दुर्घटना, हत्या व आत्महत्या का शिकार बहुतायत मे होते है। 'जर्नल ऑफ मैरिज ऑफ' फीमेल का दावा है कि शादी वास्तव मे जीवन को सुरक्षा देती है। विवाहितों की अपेक्षा बिनब्याही औरतों की मृत्युदर 50 प्रतिशत और पुरुषों की 25 प्रतिशत ज्यादा है। अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हुई कि विवाहित जोडे रहन-सहन का जीवन पर्यत पुख्ताइतजाम करते हैं। जबकि इसके ठीक विपरीत, बिनब्याहों का सब कुछ कामचलाऊ ही चलता रहता है। असुरक्षा की भावना के चलते ही ये लोग धूम्रपान, शराब और अन्य प्रतिबंधित नशो के आदी हो जाते हैं। ऐसे लोग शराब पीकर गाड़ी चलाने और बात-बात पर मारामारी पर जल्दी ही उतारू हो जाते है, जबकि दूसरी तरफ वैवाहिक जीवन जीने वालों को मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा, संवेदनात्मक व भावनात्मक अपनत्व, आर्थिक मदद उन्हें बहुत-सी समस्याओं से बचाए रखती हैं।

बिनब्याहे जोड़ों के लिए सबसे बड़ी समस्या बच्चों और उनके भविष्य को लेकर होती है। अमेरिकी स्वास्थ्य केंद्र के अनुसार वहा बिनब्याही अवयस्क बच्चियों के गर्भवती होने के मामलों की बाढ़ आ चुकी है। केवल एक साल के दरम्यान वहां 10 लाख किशोरियों ने गर्भधारण किया, जिनमे से आधी को गर्भपात कराना पड़ा। बाकी जो बच्चे जन्मते हैं, उनको कभी भी मौलिक सुविधाए नही

मिलता और व अनाथालयों म भीड़ बन जाते हैं। यही नहीं, 'सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल' ने माना कि पिछले 6 वर्षों के दरम्यान वहां सेक्स-संबंधी संक्रमण तीन गुना बढ़े हैं। केवल अमेरिका में ही 15 लाख से ज्यादा ऐसे मरीज प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहे हैं। इनमें भी हर चौथा मरीज 20 वर्ष से भी कम है और तकरीबन 5,000 औरतें प्रतिवर्ष इससे मर रही हैं। इसी के चलते 10,000 किशोर प्रतिवर्ष एड्स के शिकार हो रहे हैं और तीन (या ज्यादा) व्यक्तियों से यौन संबंध रखने वालों को 15 प्रतिशत ज्यादा घातक कैंसर हो रहा है।

क्यों कुमारी देवी अछूत हो जाती है?

समय के हिसाब से लगभग अव्यावहारिक हो चुकी परंपराएं ढोने में केवल भारतीय समाज ही अव्वल नही है, बल्कि इसके पडोस मे बसे नेपाल में कुछ बेहद बचकानी और औरतों का मजाक उडाने वाली परपराएं कायम हैं। एक परपरा के अनुसार, एक पाच वर्ष की बच्ची खोजकर उसे कुमारी देवी की पदवी दिए जाने का रिवाज है। जरा ठहरिए! यह पदवी बच्ची को उम्रभर के लिए नही दी जाती है, बल्कि ज्यों ही वह 11 वर्ष की होती है, उससे यह छीन ली जाती है और देवी को आम औरतों के साथ रहने को छोड़ दिया जाता है। काठमांडू में कुमारी देवी का भव्य मंदिर भी है, जहा सभी उसकी पूजा-अर्चना करते हैं। इस कुमारी देवी का चित्र तक खीचना मना है। बस, त्योहारों आदि के मौके पर इनकी झाकी निकाली जाती है, ताकि ये दूर से श्रद्धालुओं को आशीर्वाद दें।

नेपाल चूंकि हिंदू देश है, इसलिए उसकी-हमारी परंपराएं काफी मिलती हैं। अपने यहां भी धर्मग्रंथो में लड़की को रजस्वला होने से पहले देवी का रूप माना जाता है। पर यह भी उतना ही सच है कि इन्हीं देवियों पर बलात्कारो की सख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। प्रतिवर्ष होने वाले नवरात्रों मे लोग कन्यापूजन भी इसी लिहाज से करते हैं। इसमे कुमारी कन्या के नाम पर वही 11-12 वर्ष तक की बच्चियां जिमाई जाती है, जिनकी घर के बुजुर्ग आदि पांव छूकर पूजा भी करते हैं।

लेकिन नेपाली परंपरा हो या भारतीय, क्या रजस्वला लडकी अपवित्र होती है? क्या देविया कभी रजस्वला नहीं होतीं? इसे धर्म का मजाक न समझकर गभीरता से सोचा जाए। क्या औरत का रजस्वला होना इतना घृणित है कि उसके भीतर की देवी तुरत छू-मतर हो जाती है। हिंदू धर्म में कुमारी कन्या का अर्थ ही है बच्ची के रजोदर्शन से पूर्व का समय। रजोदर्शन के उपरांत बच्ची को अपवित्र मान लिया जाता है। मगर कितना अतार्किक है कि रजोनिवृत्ति के बाद फिर औरत को देवी क्यों नही स्वीकार लिया जाता?

मेरी समझ में इसका कारण है कि 45-50 के बाद की इस उम्र मे औरत

एक तरह से यूज्ड हो जाती है तो धर्म उसे कैसे स्वीकारे। दरअसल यहां बात बच्ची के केवल कुंआरेपन की न होकर उसके कोरेपन की है। बडी चालाकी और धूर्तता के साथ पंडों-पुराहितों ने कॉमन आदमी को फुसलाकर कुछ और समझा दिया है। नही तो क्या कारण है कि तांत्रिकों को अपनी सिद्धि के लिए इन्हीं कुमारी देवियों की आवश्यकता होती है। कौमार्य या यही कोरापन इन सिद्धियों के साथ ही पूजाओं-पाखंडों के नाम पर खूब चर्चित होता रहा है। धर्म के नाम पर भगवान के साथ विवाह करने वाली बच्चिया जो वेकटेश्वरी या देवदासी के नाम से जानी जाती है, भी इसी कुमारी उम्र की बालाए होती है। ठीक इसके विपरीत बच्ची का रजोदर्शन कुछ समाजों मे स्वागतेय होता है। दक्षिण की कुछ जातियों में बच्ची के प्रथम रजोदर्शन पर परिवार में जश्न मनाया जाता है और बच्ची को तोहफे आदि दिए जाते हैं।

खासकर केरल के हिंदुओं मे बच्ची के प्रथम रजोदर्शन को पारंपरिक रूप मे मनाया जाता है। बच्ची को घर के किसी सुरक्षित स्थान में आठ-नो दिन तक रखा जाता है और रोजाना सुबह-सुबह बाल आदि धोकर नहलाया जाता है। जमकर मालिश की जाती है। इन दिनों वहां के कुछ पारपरिक पौष्टिक खाने भी, जो चावल, गुड व नारियल से बनते हैं, उसे खूब खिलाए जाते हैं। लोगों का मानना है कि इन दिनों बच्ची की अच्छी खिलाई करने से वह पुष्ट होती है। नौ दिन बाद घर की गोबर से लिपाई करने के बाद धोबी द्वारा धुले कपड़े उस बच्ची को दिए जाते हैं और उसके द्वारा इस्तेमाल कपड़े धोबी धोने के लिए ले जाता है। हालांकि स्कूली पढ़ाई और आधुनिकता के दबाव में अब यह परपरा धूमिल हो चली है। खासकर शहरों में इसका रिवाज सांकेतिक रह गया है।

केरल के हिंदुओं की देखा-देखी अन्य धर्मावलबी भी ऐसे ही मिलती-जुलते रिवाज मनाते हैं। परंतु उत्तरी इलाकों में इसका उलटा है, ज्यो ही बच्ची रजस्वला होती है, उसे लगभग अपवित्र मान लिया जाता है। घर के किसी बदबूदार कोने में उसे कम से कम तीन दिन के लिए कैद कर दिया जाता है। मैले-कुचैले कपडों में तीन दिन नहाने-शृंगार करने, कंघी आदि करने की सख्त मनाही होती है। कुछ परिवारों में इन दिनो सोने के लिए बिछावन आदि भी नहीं दिया जाता और पुरुषों पर अपनी छाया तक नहीं पड़ने देने के आदेश होते हैं। पडितो का मानना है कि जनेऊधारी पुरुष पर रजस्वला स्त्री की छाया-भर पडने से वह अपवित्र हो जाता है और उसे तत्काल नहा-धोकर, पूजन-अर्चन के साथ अपना यज्ञोपवीत बदलने के आदेश होते हैं। जबकि विशेषज्ञों का मानना है कि

इस वक्त होने वाला स्राव गंदा नहीं होता, यह एकदम शुद्ध खून होता है जो किसी भी औरत के मातृत्व के प्रति अहम भूमिका निभाता है।

किशोरवय बच्चियों मे इन्हीं भ्रमों के चलते रजोदर्शन के प्रति एक प्रकार की घृणा भर जाती है। चिकित्सा-विज्ञानियो के अनुसार, इन्हीं भ्रमों के चलते बच्चिया ही नहीं, बड़ी उम्र की औरतों में भी कुंठाएं और डर पैदा हो जाता है इसीलिए इन दिनो वे असामान्य-सी दिखने लगती हैं। कुछ औरतों मे तो यह कुठा इतने भीतर तक घुम जाती हैं कि मासिक चक्र शुरू होने के पहले ही वे जबरदस्त डिप्रेशन की शिकार हो जाती हैं। बेहद निराश करने वाली बात है कि अति आधुनिक लडकियां भी इस समय को स्वाभाविक ढंग से नही ले पातीं। समय के साथ ही यह बहुत जरूरी है कि बच्चियो को किशोरावस्था में पांव रखते ही रजस्वला होने के पॉजेटिव कारण समझाए जाएं और उनके औरत होने को गर्व अनुभव करने की शिक्षा दी जाए। जब तक हम इसे सजा की तरह वर्णित करते रहेगे, तब तक इस डर से निकल पाना मुश्किल होगा।

तमाम प्रबुद्ध औरतों और संगठनों को चाहिए कि वे इस कुमारी के धब्बे को धोने का सामूहिक प्रयास करें। औरत औरत होती है, कोई सामान नही कि जरा-से धब्बे से मैली हो गई। संवेदनशील और व्यावहारिक बनकर हमें प्राकृतिक रूप से रची गई इस व्यवस्था को मन से स्वीकारना चाहिए, भागने-घिनाने या डरने से हम अपना ही नुकसान कर रहे है। क्यो न हम अब अपनी बच्चियो को इस कुदृष्टि से बचाए और उन्हे समझाएं— औरत कुमारी या अकुमारी होकर पवित्र या अपवित्र नहीं होती, बल्कि वह धरती की तरह विशाल हृदय होती है। उसे रजस्वला होते ही रचने का गौरव प्राप्त होता है।

तालों में बंद डिग्रियां

दसवीं और बारहवीं के नतीजो में अब तो हर साल लड़कियां लडको से बाजी मारकर, एक दिन के लिए ही सही, मीडिया में छा जाती है। अव्वल आने के पीछे हालांकि उनकी हाड-तोड मेहनत, लगन और प्रतिबद्धता ही होती है पर उसे सप्रयास किनारे सरका दिया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि अव्वल आने वाली ये बच्चियां संपन्न, समृद्ध और सुविधा-संपन्न परिवारों से ही आती हैं। इनमें कुछ मध्यवर्गी सामान्य परिवारों की दृढ़विश्वासी बच्चियां भी होती हैं, जो तमाम प्रतिकूल स्थितियों से जूझकर, ढेर सारे सपनों के साथ किताबी जग से जूझती हैं। पसदीदा स्कूल से लेकर ट्यूटर और विषयों तक के चुनाव मे लडकियों को प्राय: मन मसोसकर रह जाना पडता है। प्रगतिशीलता का लबादा ओढ़े घूमने वाले मां-बाप भी कई दफा लडकियो का वैसा ही मानसिक दोहन करते है जैसा साधारण-कस्बाई मानसिकता वाले मा-बाप आदतन करते हैं।

'बेटा-बेटी एक समान' का ढोंग करने वाला यह समाज दरअसल लडकियों को शिक्षा देने में कोताही तो बरतना चाहता है, मगर विवाह बाजार मे पढी-लिखी लड़कियों की बढ़ती मांग उन्हे ऐसा करने नहीं देती। अब केवल चिट्ठी लिखने या रामायण पढ़ने वाली पत्नी/बहू किसी को नही चाहिए, सभी हाइली एजूकेटेड या कैरियरिस्ट लडकी को प्राथमिकता देते हैं। थोडी भी जागरूकता जहा आ चुकी है, वहां अपढ़ लड़की को कोई नही रखता। दरअसल यह बाजारवाद का दौर है। यहां सब कुछ बाजार तय करता है। लिहाजा बाजार की मांग है कि लडकी डिग्रीधारी हो, प्रोफेशनल हो तो और अच्छा। कमाऊ लडकियों का बाजार खूब गरम है। महानगरीय जीवन की इच्छा रखने वाले नवेले दूल्हों की प्रमुख माग इस समय केवल कमाऊ लड़की है। सुविधाजनक और समृद्धि-भरा जीवन काटने को उत्सुक आम मध्यवर्गीय युवक एक कमाती हुई औरत की इच्छा मे विज्ञापनबाजी करते खूब पाए जा रहे है।

एक बेटा-एक बेटी और न्यूक्लियर फैमिली का फायदा बच्चियों को ठीकठाक पढ़ाई के रूप में खासा मिला है। चूंकि छोटे परिवारो में निर्णायक

भूमिका निभाने मे मां की मजबूत स्थिति होती है, वह पति पर प्रभाव बनाकर बेटी को अच्छी शिक्षा देने के लिए दबाव डालती रहती है। खुद कम पढी-लिखी होने या कैरियरिस्ट न हो पाने की जो कमी उसे सालती है, उससे वह अपनी बच्ची को वंचित नहीं रखना चाहती। दूसरे, कामकाजी औरतों की समाज मे स्थिति, धीरे-धीरे ही सही, अपेक्षाकृत मजबूत होती जा रही है। बिखरते दांपत्य-संबंधों से भयभीत मा-बाप भी बेटी को इतनी शिक्षा दिलवाने के पक्ष मे दिखने लगे हैं कि लड़की आवश्यकता पड़ने पर खा-कमा सके। कुल मिलाकर सामाजिक ताने-बाने में अब पढ़ी-लिखी लड़कियां ही फिट बैठ पाती है, हालांकि अब तक इतना बदलाव नहीं हो आया है कि ये पढ़ी-लिखी लड़कियां अपनी जबरदस्त उपस्थिति दर्ज करा सकें।

बचपन में जी-तोड़ मेहनत कर अव्वल आने वाली तमाम औरतें जब घर-गृहस्थी में उलझकर रह जाती हैं तो उन्हें अपनी डिग्रियों और किताबी पढाई के बारे में सोच-सोचकर बेहद कोफ्त होती है। साधारण पढ़ाई कर घरेलू औरत के रूप में संतुष्ट जीवन काटना एक बात है, पर किसी प्रोफेशन के प्रति रुझान हो, इसलिए कड़ी मेहनत कर पढ़ाई करने के प्रति अति गभीर रहने वाली औरत के ऊपर यदि बच्चों और घर संभालने का बोझ पड़ जाए तो वह एक अलग तरह की घुटन महसूस करती है। अपने समय में पढ़ाई में अव्वल रही तमाम घरेलू औरतें कई दफा अपने पति की सहयोगी औरतो या परिचित कामकाजी औरतों से अपनी तुलना कर कुंठा-सी पाल लेती हैं। वे अपनी और उनकी बात-बात में तुलना करती रहती हैं और यह महसूस करने लगती हैं कि अपनी लापरवाही या पारिवारिक दबावों के चलते वे वह सब नहीं कर पाईं, जिसकी उनमें क्षमता थी।

चूंकि हमने अपने परिवेश में हमेशा से ही औरतें चूल्हा-चौके और बच्चों के लालन-पालन में जुटी रही देखी हैं, इसलिए पुरुषों ने इस तरफ कभी अपना कोई दायित्व नही समझा। पीढ़ियों से यही व्यवस्था चली आ रही है, अब हम इसके अभ्यस्त हो चुके हैं कि पुरुष का बच्चा खिलाना, उसकी नैपी बदलना, पॉटी धोना या रसोई में काम करना प्राय: खटकता है। इन स्थितियों में औरतों का खासा पढ़े-लिखे होने के बावजूद कैरियर को प्रमुखता दे पाना एक हद तक मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन हो जाता है। यदि वे कैरियरिस्टिक हैं तो परिवार हाशिये मे चला जाता है और यदि परिवार के प्रति जिम्मेदाराना भाव अपनाती हैं तो कैरियर चौपट हो जाता है। दोनों के बीच तालमेल बिठा पाना, वह भी बिना मर्द की मदद के गैरमुमकिन है। जहां मर्द खुद को इन नई परिस्थितियों मे ढालने

के प्रति मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं, वहीं औरतो की प्रतिभा निखरती है। हालाकि ऐसे शायद चुनिंदा परिवार ही होंगे। वरना तो हमेशा ही औरतों को परिवार और पति, बच्चों के अनुरूप ढलना पड़ता है, कोई न उसके अनुकूल ढलने को तैयार होता है और न ही परंपराएं तोडने को।

अपने इर्द-गिर्द ऐसी तमाम औरतें आपको दिख जाएंगी जिन्होने डॉक्टरी या इजीनियरिंग जैसे गंभीर और कठिन पेशे को चुना और सफलता के लिए, जितनी कोई मर्द साथी करता है उससे कहीं ज्यादा कडी मेहनत भी की हैं, पर शादी और बच्चों के पालने-पोसने के झंझट में उनहें इतना उलझना पडा कि उकताकर वे घर बैठना ही ठीक समझती है। हिंदी सिनेमा मे ऐसी अधिकतर हीरोइनें हैं, जिन्होंने अपने उम्दा अभिनय को बिसराकर घर-बच्चो मे साधारण-सा जीवन काट दिया। लेकिन इस घर बैठने से पहले उन्हे कितनी पीड़ा, कितनी आत्मग्लानि और कितनी कुंठा का शिकार होना पडता है, इसका अंदाजा लगा पाना बहुत मुश्किल है। एक सफल प्रोफेशनल औरत जब आटा और झाड़ू के झंझट से नहीं निकल पाती तो वह चिडचिडी, झगड़ालू, झक्की या उदासीन—कुछ भी हो सकती है। उसका मानसिक इलाज कराने की बजाय इस बीमार, जाहिल और रूढिवादी समाज को बदलने और समय के अनुसार परंपराओं को ढालने के प्रयास होने चाहिए।

यात्रा के खतरों से जूझती औरतें

अकेले यात्रा करने से घबराने वाली औरतों को डरपोक, गंवारू या ऐसे ही दोयम दर्जे के अल्फाजों में पुकारा जाना आम है। खासतौर से घरेलू औरतों पर यह छींटाकशी खूब होती है। उनके लिए घर की देहरी अकेले लांघना बहुत भारी होता है। सब्जी, तेल-मसाले लाने या छोटी-मोटी खरीददारी करने, ज्यादा से ज्यादा बच्चे के स्कूल आदि चले जाने के अलावा वे प्रायः किसी भी काम के लिए बाहर निकलने से कतराती हैं। दूसरी तरफ है कामकाजी दफ्तरी, औरतें, जो शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक रोजगार के लिए भागती फिरती हैं।

इस यात्रा के दौरान उन्हें लगभग रोज ही अनेक तरह की विपरीत स्थितियो से जूझना पडता है। प्रौढ औरते हों या फैक्टिरियों में पुरजे जोड़ने वाली दसवी पास/फेल लडकियां, स्कूल टीचरें हो या घरेलू कामवालियां, रोजमर्रा की यात्रा के लिए इन्हें बस, रेल, रिक्शा या ऑटो जैसे वाहनों पर निर्भर रहना पडता है। इस यात्रा के कई दफा बहुत दुःखद, दिल दहला देने वाले ऐसे वाकये भी होते है, जिन्हें औरतें अपमान के घूंट की तरह पीने के अलावा कुछ नहीं कर सकती। सडक किनारे, पान की दुकान या खोमचे वालों के इर्द-गिर्द सिरफिरे शोहदों-लोफरो की छेडछाड और बदजुबानी के अलावा इन्हें और भी बहुत कुछ सुनना-बर्दाश्त करना पड़ता है।

बसो या लोकल ट्रेन में यात्रा करने वाली हजारों औरते धीरे-धीरे डिप्रेशन, निराशा व एक तरह की फोबिया का शिकार हो जाती हैं और वर्षो बिना यह सब जाने चुपचाप अपनी दिनचर्या में जुटी रहती हैं। कभी ऑटोवाला कोई फिकरा कस देता है तो कभी रिक्शावाला कामुक नजर से घूरता है। बस या ट्रेन में दफ्तर के समय ठूंस-ठूंसकर लोग भरे जाते हैं। घिनौनी हरकतें करने वाले मर्दो की तो ऐसे मे किस्मत ही चमक उठती है। औरतों से रगड़कर निकलना, चुटकी काट लेना, छू लेना, उन पर ढह पड़ने का नाटक करना, कामुक नजरों से उनके अंगों को घूरना—ऐसी तमाम ओछी हरकते करने से तमाम पुरुष बाज नहीं आते। थकी-मांदी घर लौटती औरत यात्रा के दौरान लगभग रोजाना इन्हीं स्थितियों से जूझती

है। जाहिर है ऐसे में उसका मानसिक दोहन किस कदर होता है—यह कोई भी संवेदनशील व्यक्ति समझ सकता है, यदि वह चाहे तो। औरत यह पीड़ा घर जाकर न पिता या भाई को बता सकती है, न पति के साथ बांट सकती है। और तो और, उपहास का केंद्र बनने से बचने के लिए वह अपनी सहयोगी मित्रों से भी इसका जिक्र करने से बचती है। दिल्ली में एक बीमार औरत को बस ड्राइवर और कंडक्टर ने बलात्कार करने के बाद चलती बस से फेंक दिया था। यह घटना आधी रात को नहीं हुई थी कि पुलिस और प्रशासन यह कहकर बच निकलता कि आधी रात को औरतों के साथ बलात्कार नहीं तो क्या होगा? उस वक्त रात का नौ बजा था, वह भी गरमियों का।

महानगरों में ऑटो-टैक्सी को हाथ देती औरत हो या छोटे शहरों-कस्बों में रिक्शा बुलाती औरतें/लड़कियां, यात्राजन्य तनाव से गुजरने की वे इतनी आदी हो चुकती हैं कि उन्हें स्वयं इस विषय पर गंभीरता से सोचने का वक्त ही नहीं मिलता। यह बात तो रोजमर्रा की यात्रा को लेकर है, जो औरतें लंबी दूरी की यात्राएं अकेली करती हैं, उन्हें जुझारू-हिम्मती या साहसी कहने की जरूरत कतई नहीं है। क्योंकि यह बेहद साधारण बात होते हुए भी असाधारण इसलिए है, क्योंकि हम एक संकीर्ण, बंद दिमाग वाले और बीमार समाज के अंग हैं। ऐसा इसलिए कहना पड़ता है कि अकेले रेल में यात्रा करने वाली औरतों में से (जनवरी 99 से जून 2000 तक) 53 का बलात्कार हुआ। इनमें से 7 औरतों को बाकायदा चलती ट्रेन में शिकार बनाया गया, बाकी 46 प्लेटफॉर्म वेटिंग रूम या आस-पास शिकार की गईं। इस दरम्यान 2,872 औरतों के साथ बदतमीजी की गई या उनका यौन शोषण किया गया। यह गिनती केवल उन औरतों की है, जिन्होंने मामला रेलवे पुलिस तक ले जाने की हिम्मत जुटाई। अपमान का घूंट पीने या जीवन-भर कभी भी अकेले सफर न करने का प्रण लेने वाली हजारों औरतों की पीड़ा कभी किसी तक नहीं पहुंच पाएगी।

यूं भी भारतीय रेलवे की लेट-लतीफी दुनिया-भर में चर्चित है। रेलगाड़ियों का बारह-बारह घंटे लेट होना किसी भी गर्भवती या छोटे बच्चे वाली औरत के लिए त्रासद हो सकता है। पीने के पानी के लिए लगी लंबी लाइनें, खाद्य-पदार्थों की ठेलियों पर मची लूट और केवल चार-पांच मिनट का हॉल्ट औरत को सूखे गले यात्रा करने को बाध्य करता है। न तो वह मर्दों की तरह बोगी में सिगरेट फूंकती हैं और न ही तंबाकू-जर्दा चबाती हैं।

प्रख्यात रचनाकार कृष्णा सोबती ने एक बातचीत के दौरान स्वीकारा था कि

अकेले किसी अनजान शहर में जाना वाकई खतरनाक होता है। चूंकि वह प्राय: अकेले ही आती-जाती हैं इसलिए उन्होंने एक सुरक्षित रास्ता खोज निकाला है—प्री-पेड टैक्सी के इस्तेमाल का। चूंकि यह महंगा साधन है, इसलिए तमाम औरतें चाहकर भी इसका इस्तेमाल नहीं कर सकती।

महिला आयोगों या तमाम सरकारी-गैर सरकारी संस्थानों के नाम पर पैसा कूटने वाली ए.सी. दफ्तरो मे बैठी, लंबी कारों या शताब्दी जैसी ट्रेनों, हवाई जहाजो में यात्रा करने वाली इन तमाम औरतों के दिमाग में इन अव्यवस्थाओ पर क्यों कुछ नहीं कौंधता, जिनसे आम औरत को रोज खीजना होता है। घर से बाहर निकलने वाली औरतों से पूछिए, जब उन्हें घंटो बाद भी निवृत्त होने का कोई ठौर नहीं सूझता तो वे किस स्थिति से जूझती हैं, क्योकि वे तो कुमगजों की तरह सड़क किनारे खड़ी होने से रहीं, चाहे कोई रोग ही क्यों न चपेट ले उन्हें। हिम्मती होना एक बात है और खतरों से खेलना दूसरी, मगर अकेली यात्रा पर निकलने वाली औरतें हर रोज खतरों से ही खेलती हैं।

औरतों को बधिया बनाने के लिए

औरत को औरत बनाने का जिम्मा समाज और परंपराएं परस्पर निभाती हैं। अपने देश मे ही नहीं, बल्कि दुनिया-भर की संस्कृतियों में परंपराएं औरत को काबू मे रखने के लिए ही बनाई गई थीं। उन्हें वह सदियों से थोडे परिवर्तन के साथ ढोती चली आ रही हैं। समय, समाज और जीने का अंदाज भले ही आधुनिक माहौल मे बदल गया, मगर परंपराएं लगभग वही हैं जो हमारी दादी-नानी और बडी-बूढियों के समय थीं। आधुनिकता ने भले ही उन्हें नया जामा पहना दिया हो, मगर उनके अंदर की असलियत किसी से छिपी नहीं है। समयानुसार उनमें परिवर्तन होते जाते है। विकास और क्रांति के बीच घिसटती औरत निःसंदेह परंपराओं को नही ढो सकती।

दरअसल, किसी भी समाज में परंपराएं इतनी जटिल और गूढ होती है कि इनके बंधन से विमुख होने के लिए औरत को ढेर सारे दुस्साहस और आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। चूंकि परंपराओं को तर्कों से तौला नही जा सकता, इसलिए आधुनिक औरत के लिए इन्हें अपने 'स्व' की बलि के बावजूद अपनी सुविधानुसार तोड़-मरोड कर प्रयोग किया जाता है। पीढ़ी-दर-पीढी महिलाए परपराओं को अपनी धरोहर, अपने विश्वासों (यानी अंधविश्वासो), अपने भ्रमों और अपने ही बुने एक जाल में समेटे रही हैं। एक से दूसरे में फैलती गईं ये परपराएं इतनी जटिल और अविवेकपूर्ण है कि उत्तर-आधुनिक महिला के समक्ष भी इनके खिलाफ कुछ उगलना उसे दुश्मन बनाना है।

जैसे बडी मछलियां छोटियों को अपना शिकार बनाकर जीवन चलाती हैं, ठीक वैसे ही बड़ी-बूढ़िया समाज में अनहोनी और खौफ का वातावरण बनाकर बच्चियों के दिमाग में परंपराओं का बीज बो देती हैं। यही बच्चियां जब प्रौढ या युवा होती है तो इनको परपराओ के खिलाफ एक भी शब्द समझाना निहायत बचकानापन साबित होता है। डॉक्टर, वकील, वैज्ञानिक से लेकर प्रोफेसर महिलाएं तक कहीं न कहीं परंपराओं को ढोती नजर आती हैं। तमाम वर्जनाओं को तिलांजलि दे चुकी है उच्चवर्गीय उतर-आधुनिकाएं भी परंपराओ को ओढे दिखती

है। फर्क केवल इतना है कि उन्होंने उन्हे अपने अनुरूप ढाल लिया होता है।

आज के दौर की महिला, जो महिला और पुरुष दोनों का दायित्व बखूबी निभाती है, आधुनिकता और परंपराओं के बीच पिस रही है। वह अपने सुहाग को, अपने पुत्र के लबे सुखमय जीवन को सींचने के लिए व्रत करती है, माथा टेकने जाती है, देवी का प्रसाद चढाती है, दान-दक्षिणा करती है। कहने का तात्पर्य यह कि 24 मे से 18 घटे की दौड-भाग, जिम्मेदारियों के साथ वह परंपराओ के बीच फसी सब कुछ स्वाभाविक ढंग से जी लेती है। परंपराओं मे शामिल रूढियां और जटिलताएं उसे तग करती हैं, दुविधा मे डालती हैं, मगर एक प्रकार के भय के कारण वह स्वयं को इनसे मुक्त करने मे असफल रहती है। दूसरी ओर, आधुनिक युग के सघर्षमय जीवन में परपराओं को दर-किनार करने वाली गिनी-चुनी महिलाएं एक प्रकार के अपराधबोध से ग्रस्त दिखती हैं। क्योंकि कोई भी परपरा तोड़ने का साफ मतलब है, अपने घर, पडोस, समाज में दुश्मन तैयार कर लेना। असुविधाओं और जिम्मेदारियों से मुक्त आरामपसंद महिलाओं की एक पूरी जमात आप पर उंगली उठाने को तैयार रहती है। वे परंपरा से परे हटने वाली औरत पर ताने कसेंगी, अपशब्द कहेंगी, उसे तरह-तरह के अपशकुनों से भयाक्रात करेगी। अपने ही परिवार के रूढिग्रस्त लोग परंपरातोडक को मानसिक रूप से ब्लैकमेल करने से भी नहीं चूकते। बस, यही तमाम कारण बन जाते है कि महिलाएं आधुनिकता के दौर में कई बार चाहकर भी इनका विरोध नहीं कर पाती।

कई पढ़ी-लिखी, प्रतिष्ठित महिलाओं को परंपराओं की खिलाफत करते अक्सर देखा जा सकता है, जबकि वास्तविक जीवन में ये महिलाएं भी कही न कहीं उनकी दास होती हैं। ऐसा प्रायः विचारों और व्यवहार में अनुरूपता के अभाव में होता है। हिंदू धर्म में विवाहित महिला के लिए सिंदूर लगाना अनिवार्य है, सूनी मांग अपशकुन मानी जाती है। अमूमन आधुनिकाएं विवाहोपरांत यदा-कदा ही सही, सिंदूर लगाने के मोह से बच नही पातीं। यही है उनके अंदर बैठा खौफ जो तमाम तर्कों-कुतर्कों के बावजूद अपना अस्तित्व जता ही देता है। ठीक यही स्थिति है कुल-नाम की। पति का कुल-नाम लगाना, औरत का जन्म--नाम बदला जाना हमारी प्राचीन परंपरा है। ऐसा वेद-पुराणों में भी संकेत है, यह कहा जाता है। पत्नी को पति मे पूर्ण समर्पित होने का यह प्रतीक है। आधुनिक दौर मे कुछ महिलावादी. जुझारू, अपने व्यक्तित्व पर गर्व कर सकने वाली महिलाए इन वर्जनाओं को तोडने का दुस्साहस करने लगी हैं। लेकिन उनके इस निर्णय से पति रूपी जीव के स्वाभिमान को ठेस लगती है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि अब

तक जो कवल भाग्या थी, घर रखे कलर टी वी और फ्रिज की तरह इस्तेमाल की एक वस्तु थी, उसका 'में' जागना पति और उसके परिवारवालों के लिए विरोध में किया गया प्रहार साबित होता है। सरकारी नियमानुसार, अब यदि मा चाहे तो बच्चे के नाम के साथ अपना नाम दर्ज करवा सकती है। यानी पिता की गारटी देना अब अनिवार्य नहीं है। पिता के नाम के बिना अब बच्चा अवैध या (सामाजिक भाषा में कहे) 'हरामी' नहीं होगा, उसका अस्तित्व उसकी मा से स्वीकार्य होगा। लेकिन कितनी मांओं ने बच्चे को अपना नाम दिया होगा? नाम बदलने या हटने से बाप की हैसियत या अधिकारों में फर्क तो नहीं आ जाएगा। मगर यह परपरा है—पिता का ही नाम लिखा जाएगा, मां के अस्तित्व की जरूरत ही कहां है? ऐसा करने वाली मां बदचलन, आवारा या कामोन्मादी जैसे विशेषणों से भी नवाजी का सकती है, क्योंकि समाज के ठेकेदार सरकारी मान्यता से संतुष्ट नहीं होते, उन्हे तो परपराओं का निर्वाह करवाना है न।

हिंदू समाज में एक बलशाली परंपरा है—दाह-संस्कार की। इसे पुत्र ही संपन्न करवाता है। पुत्र को जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अतिम संस्कार के वक्त पंडों की मदद से मां-बाप को मुखाग्नि दे और उनकी कपाल-क्रिया करे। बेटी और दामाद इस प्रक्रिया में कितने अछूत माने जाते हैं, इसे सिर्फ इतने से समझा जा सकता है कि दामाद के मृतक की अर्थी को हाथ लगाने-भर से वह नरक का भागी हो जाता है। जिन परिवारों में पुत्राभाव है, वहां रिश्ते-नातेदार से क्रिया करवाई जाती है। अब यह परंपरा इतनी गूढ़ और दबावों से भरी है कि अव्वल तो बेटी-दामाद इसे संपन्न करने की कल्पना ही नहीं कर सकते। मान लीजिए, कुछ अति विकासवादी दंपती तैयार भी हो जाएं, तो पडे, परिवार ओर रिश्तेदार इसे कैसे स्वीकार कर सकते हैं?

निःसंदेह, यह कहना लाजिमी है कि महिलाएं ही परंपराओं का निर्वाह करती हैं। सदियों से, पीढियों से वह लीक पीटती चली आ रही है। इसका एकमात्र कारण है कि दरअसल समाज ने औरत को इतना अकेला, बेबस, गैरजिम्मेदार और अछूत बना दिया कि वह अपने चारों तरफ आत्मरक्षा और आकर्षण का केंद्र बनाने के लिए एक चक्र बनाने लगी। परंपराएं वही चक्र हैं, जिन्होंने अन्ततः औरत को अपने में जकड़ लिया है। पुरुष को खुश करने के लिए औरत ने सिंदूर लगाया, चूड़ियां पहनीं और उसकी दीर्घायु के लिए व्रत-पूजन किया। इसका सीधा साफ कारण था— उसे सम्मोहित करना, यह जताना कि मैं सिर्फ तेरे लिए कामना करती हूं, मैं तुझमें हूं, तेरी समृद्धि के पीछे मे हूं, तेरी दीर्घायु, स्वास्थ्य और परिवार

के लिए मै ही उपाय कर सकती हू। पुरुष उसके छलावे में आ गया, उसके मोहपाश में बंध गया। परंपरा बनकर यही छल औरत के अतर्मन में उतरता गया और पीढ़ियों में उसने इसे बांटना शुरू कर दिया। आज की औरत जानती है कि चांद को पूजने से कुछ नहीं होगा, मगर पुरुष के अहं को सतुष्ट करने के लिए आसमान की तरफ अक्षत फेकती है। यह डरती है कि वैज्ञानिक बातो या तर्कों से यदि पुरुष को हरा दिया, तो कहीं वह स्वयं सब कुछ न हार जाए। यथास्थिति बनाए रखने की चाहत, डर और असुरक्षा की भावना उसे यह सब करने के लिए मजबूर करते हैं।

व्यावहारिक तौर पर यह कहना उचित ही होगा कि आधुनिक महिला में जहा अपनी देह के प्रति मोह बढ़ा है, वहीं उसकी जिम्मेदारियों मे भी इजाफा होता जा रहा है। सामाजिक, नैतिक, पारिवारिक और अब भौतिक दायित्वों के दबावों में उसे आत्मसुरक्षा को खोजना है। इस भीड में उसे अपने खुद के लिए तो वक्त निकालने में तमाम दिक्कतों को झेलना पड़ता है, ऐसे में कैसी परंपराएं— कैसी रूढ़ियां? ये सब तभी तक हावी हैं, जब तक औरत मानसिक रूप से स्वतंत्र नही हो जातीं। ज्यों ही उसे 'स्व' का एहसास हुआ, वैसे ही परंपराओं की जंजीरें छिन्न-भिन्न हो जाएंगी। यही अंत हो जाएगा उसके दिमागी बधियाकरण का वह अध्याय, जिसे वह भय और असुरक्षा के कारण सहती चली आ रही है। समय उसे उसकी ऊर्जा से जैसे-जैसे परिचित कराता जाएगा, वैसे ही वैसे वह अपनी शक्ति को पहचानने लगेगी। अंततः एक वक्त ऐसा आएगा, जब औरत पूर्णतः स्वतंत्र होगी— परंपराओं से, पुरुषवादी वर्चस्व से, सामाजिक बंधनों से और मानसिक दबावों से। स्पष्ट है कि यहां उच्छृंखलता और पश्चिमीकरण की तूती नहीं बजाई जा रही— गुलामी और दिमागी बंध्याकरण से छुटकारे की लालसा जताई जा रही है, जो दुनिया की हर औरत के लिए अनिवार्य है और जिसका उसे पूरा अधिकार है!





मनीषा

जन्म · सन् 1968 में उत्तर प्रदेश

विशेष : स्त्री विमर्श मे उल्लेख अकादमिक शिक्षा के आ का अखवारी अनुभव तो माद्दा भी मौजूद है जो स्त्रि प्रसार कर सके। महिल. नियमित स्तंभ तो आपके विविध वैचारिक पत्रिकाओ पुस्तकों मे प्रकाशित लेर रहे हैं।

संप्रति : 11 बरसों से 'राष्ट्रीय सह विभाग से संबद्ध।

कुछ कहानियां भी लिखे

संपर्क : संपादकीय विभाग, दैनिक